CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलकनन्दा-उपत्यका में प्रवास

भाग १

अलकनन्दा-उपत्यका

शिवप्रसाद डबराल
एम० ए०, पी-एच० डी० (भूगोल)

909.542
ड अ
I
3651

वीर - गाथा - प्रकाशन
दोगड्डा, गढ़वाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्री शिवप्रसाद डबराल एम० ए०, पी-एच० डी० की रचनाएं :—

अभिनय के योग्य वीर रस के नाटक :—

१.	गुहादित्य	॥)
२.	गोरा-बादल	॥।)
३.	महाराणा संग्रामसिंह	१)
४.	पन्ना धाय	१।)
५.	हिरोल, महाराणा अमरसिंह	।।)
६.	जुझारसिंह बुन्देला	॥।)
७.	वीर हम्मीर	॥।)
८.	बाल नाटक-माला	॥)

ओजस्वी कवितायें :—

१.	संघर्ष-संगीत	।=)
२.	अतीत-स्मृति	।=)

गद्य-रचनायें :—

१.	उपाख्यान-माला	।=)
२.	हुतात्मा-परिचय	।=)

उत्तराखंड सम्बन्धी खोजपूर्ण साहित्य :—

अलकनन्दा-उपत्यका में प्रवास

(पी-एच० डी० शोध-प्रबन्ध)

५ भागों में

१.	अलकनन्दा-उपत्यका	४)
२.	उत्तराखंड के भोटांतिक	४)
३.	राठप्रदेश के पशुचारक	४)
४.	प्रवाजी वणगूजर तथा गगर खंपा,	प्रेस में
५.	अलकनन्दा-उपत्यका में ऋतुकालीन प्रवास	

—०—

६.	उत्तराखंड-यात्रा-दर्शन, सजिल्द	१०)
७.	उत्तराखंड के मन्दिर	प्रेस में
८.	उत्तराखंड का इतिहास	,, ,,
९.	पुरातत्व-निबंधावली	,, ,,

वीर-गाथा-प्रकाशन, दोगडा, गढ़वाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

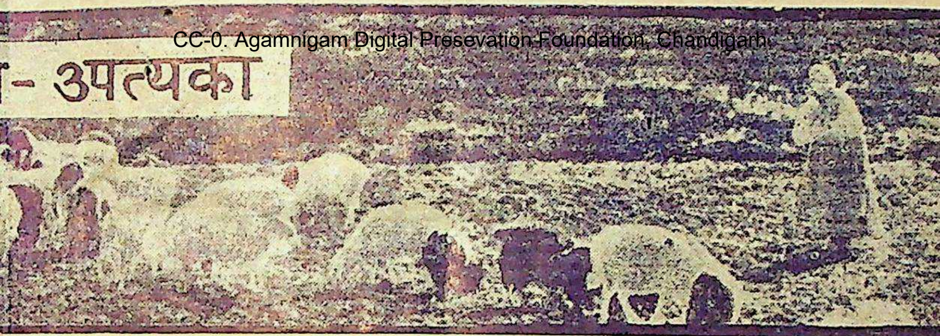

अलकनन्दा-उपत्यका में प्रवास

भाग १

अलकनन्दा-उपत्यका

शिवप्रसाद डबराल

एम० ए०, पी एच० डी० (भूगोल)

मूल्य ४ रुपए

वीर-गाथा-प्रकाशन दोगडा, गढ़वाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलकनन्दा–उपत्यका में प्रवास

भाग १

अलकनन्दा–उपत्यका

लेखक—

शिवप्रसाद डबराल

एम० ए०, पी० एच० डी० (भूगोल)

प्रिंसिपल

डी० ए० वी० इण्टर कालेज, दोगडा, गढ़वाल

प्रकाशक—

वीर-गाथा-प्रकाशन दोगडा, गढ़वाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ALAKANANDA-BASIN

A Study of

TRANSHUMANCE, NOMADISM & SEASONAL MIGRATIONS

Ph. D. Thesis

of

Dr. S. P. DABRAL

State Museum, Library,
3651
909.542
S
1

Part I- The Land, The People and The Life

Part II- Transhumance with Nomadism

Part III- Transhumance without Nomadism

Part IV- Nomadism

Part V- Seasonal Migrations

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनकी

पावन स्मृति में

जिन्होंने

मुझे कठोर श्रम करने योग्य शरीर दिया ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

909.542

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

Examiner's Report

ON

ALAKANANDA-BASIN
A Study of
TRANSHUMANCE, NOMADISM & SEASONAL MIGRATIONS

Ph. D. Thesis of S. P. DABRAL

"The candidate has laboured a lot in collecting material, in doing field work and in getting information from all possible sources.

The Thesis, on the whole, is of an outstanding value and is an attempt, first of it's kind in this region, rather in the country as a whole.

It is an original research work of a high standard. The approach is geographical and it undertakes a thorough critical examination of the topic. The judgement of the candidate is sound and he arrives at reasonable and useful conclusions which add to the geographical knowledge of this region.

Shri Dabral deserves commendatian for his fine research work, and for writing his Thesis in excellent Hindi."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषयानुक्रमणिका

सम्पर्क

परीक्षकों की सम्मति ३

विषयानुक्रमणिका ४

प्राक्कथन १३

प्रवास के आंकड़े-१३, प्रवास का सार्वभौम प्रचार-१३, विचारणीय प्रश्न-१४, पांच भागों में प्रकाशन-१५, भ्रम की संभावना-१५, उपत्यका का ऊबड़-खाबड़ स्वरूप-१५, उपत्यका का पावन स्वरूप-१५, अंधविश्वासों और मान्यताओं में परिवर्तन-१६

सहायक साहित्य-सूची

१- महत्वपूर्ण - १७, २- उपयोगी - २०,
३- सामान्य - २१, ४- मानचित्र - २५,

शब्दावली २६

शुद्धिपत्र ३१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलकनन्दा-उपत्यका में प्रवास

भूमिका ३३

जीवननिर्वाह की समस्या - अविकसित पर्वतीय क्षेत्रों में-३३, पर्वतीय द्वीपों में विशेष-३३।

अलकनन्दा-उपत्यका, पर्वतीय द्वीप का सुन्दर उदाहरण-३४, भूगोलिक परिस्थिति का निवासियों पर प्रभाव-३४, सीमित दृष्टिकोण-३४, अपने क्षेत्र से उत्कट प्रेम-३४, पृथकता की संकुचित भावना-३४, अपने ही क्षेत्र में निर्वाह का प्रयत्न-३४

अत्यन्त ऊबड़-खाबड़ धरातल-३४, कृषि-भूमि का सर्वथा अभाव-३५

प्राचीन काल में निर्वाह की समस्या-३५, जनसंख्या का नियन्त्रण, प्राकृतिक प्रकोपों द्वारा-३५, सामाजिक प्रथाओं द्वारा-३५

अंगरेजी राज्यकाल में- सुव्यवस्था-३६, जनसंख्या की वृद्धि-३६, कृषिभूमि में सीमित वृद्धि-३६, ऊबड़-खाबड़-भूमि से सीमित उत्पादन-३६, पूर्वजों की धरोहर पर श्रम, समय और धन का अपव्यय-३७

भोजनादि आवश्यक वस्तुओं का आयात-३७, सेवाओं का निर्यात-३७, आजीविका कमाने हेतु सुदूर तक प्रवास-३७

उपत्यका में रहकर आजीविका जुटानेवाले-३८, उनका इस शोधप्रबंध में अध्ययन-३८

उनकी सूझबूझ-३८, जीविका जुटाने के लिए प्रवास-३९, प्रकृति से लाभ उठाने में कुशल-४० विभिन्न प्राकृतिक भागों में मुख्य और सहायक व्यवसाय-४१, भोटप्रदेश में-४१, गिरिद्वारों और बुग्यालों का उपयोग-४१, राठप्रदेश में-४२, वनों और बुग्यालों का उपयोग-४३, वनस्पति द्वारा मनुष्य की आजीविका निर्धारित-४३, सलाणप्रदेश में-४४, जनसंख्या का भार-४४, मजूरी के लिए प्रवास-४४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीविका-उपार्जन - तीर्थयात्रा-मार्गों पर ४४, याचक जातियों का ४५, आमोदी-प्रमोदी जातियों का-४५, मेलों में-४५, प्रवाजी जातियों का-४५

जीन ब्रूंश के अनुसार प्रवासों का वर्गीकरण-४६

प्रवाजी घोषयात्रा Transhumance with Nomadism, व्याख्या-४६, भोटांतिकों में-४६, हुणियों में-४६

घोषयात्रा Transhumance without Nomadism, व्याख्या-४६, खड्वालों में ४७, गद्दियों में-४७, खशों में-४७, रामगंगा-उपत्यका के कुमाउनियों में-४७

प्रव्रजन Nomadism, व्याख्या-४७, बणगूजरों में-४७, डोलबों में-४७

ऋतुकालीन प्रवास Seasonal Migrations, व्याख्या-४७, तीर्थयात्रा-मार्गों पर मजूरी के लिए-४८, वन आदि में मजूरी के लिए-४८, भिक्षा के लिए-४८, मांग-खाने के लिए-४८

मजूरी के लिए पुरुषों का प्रवास-४८, नृत्य-गान के लिए युवतियों का प्रवास-४६

प्रवासों पर प्रभाव -४६, धरातल की ऊंचाई का-४६, हिमतूफानों का-४६, वनस्पति का-५०, शीतऋतु का-५१, ग्रीष्मऋतु का-५१, ऋतुपरिवर्तन का-५१

भूगोलिक परिस्थिति का प्रभाव - ५२, जीवन पद्धति पर-५२, रीतिनीतियों पर-५२

अध्ययन का महत्व ५३, मैदानी जीवन से भिन्नता-५४, शासकों के लिए अध्ययन का महत्व-५४, नए अपरिचित अधिकारियों द्वारा अनर्थ-५४, विशेष परिस्थिति न समझकर अधिनियम बनाने से हानि-५४, हित की भावना से बनाईगई योजनाओं से अहित-५४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलकनन्दा-उपत्यका में प्रवास-५५, अध्ययन के लिए लेखक का भ्रमण-५६ अध्ययन में सहायक साहित्य-५७, संस्कृत में-५७, पाली में-५७, यूरोपियन लेखक-५८, Pre-Mutiny English Record-५८, भारतीय लेखक-५८, कृतज्ञता-प्रकाशन-५६

'अलकनन्दा - उपत्यका में प्रवास', पांच भागों में प्रकाशन की योजना-६०

अलकनन्दा-उपत्यका

१–उपत्यका-परिचय

अलकनन्दा-उपत्यका का विस्तार-६१, सीमा-६२, क्षेत्रफल-६२, कृषिभूमि का-६३, कृषिबंजर का-६३, परती का-६३, वनक्षेत्रों का-६३, अप्राप्यक्षेत्र का-६३

पर्वत श्रेणियां-६३, जंस्करश्रेणी-६३, गिरिद्वार-६४, महत्व-६४

महाहिमालय-६४, शिखरपुंज-६४, नन्दादेवी शि० पुंज-६४, गन्धमादन शि०पुंज-६५, केदारहिमाल के शिखर-६५, बन्दरपूंछ शिखरपुंज-६५

शाश्वत हिमरेखा-६५, गोमुख-६६, पयारें-६६, बुग्यालें-६६, वन-६६, महाहिमालय का महत्व-६६

लघुहिमालय-६६, श्रेणियां-६६, वन-६७,

शिवालिक-६७, वन-६७

नदियां-६७, महानदियों के गर्त-६७, लघुहिमालय की नदियां-६८, शिवालिक की-६८

अलकनन्दा-६८, विष्णुप्रयाग-६८, महागर्त-६८, नन्दप्रयाग-६६, कर्णप्रयाग-६६, गौचर-६६, रुद्रप्रयाग-६६, श्रीनगर-६६, देवप्रयाग-६६

धौलीगंगा-६६, विरहीगंगा-७०, पिंडार-७०, नयार-७०, मूसागली-७०,सतपुली-७०, मरोड़ा डाम-क्षेत्र-७०, मन्दाकिनी-७०, अगस्तमुनि-७०,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भागीरथी-७०, गोमुख-७०, जाह्नवी (जाडगंगा)-७१, भिलंगना-७१, खर्टलिग बांक-७१, रामगंगा, ७१, यमुना-७२, टोंस-७२

ताल-गोनाताल - ७२, देवरीताल - ७२, अन्य सरोवर - ७२, रूपकुण्ड-७२,

तप्तकुण्ड-७२

हिमयुग का प्रभाव-७३, बुग्यालों पर-७३, सीम-७४,

हिमवगड़-७४

दून-७४, नदी-घाटियां-७४, तप्पड़-७४

मिट्टियां-७५, पांग-७५, डांग-७५

खनिज-७६, लोहे की खानें-७६, तांबे की-७६, परीक्षण-७६, अन्य-खनिज-७७

जलवायु-रूड़ी (ग्रीष्म)-७७, चलबसंत तूफान-७७, औड़ल तूफान-७८, तापमान-७८, भाबर में-७८ पठारों पर-७८, वर्षाऋतु-७८, ऊंचाई के अनुसार वर्षा की मात्रा में अन्तर-७९, शीतऋतु-७९, हिमपात-८०, निचले भागों का स्वास्थ्यवर्द्धक जलवायु-८०

वनस्पति-८०, प्राचीन काल में घने वन-८०, अंग्रेजी राज्य के आरंभ में वन-विनाश-८०, ट्रेल द्वारा वन - संरक्षण-८१, वनों का महत्व-८१, भाबर के वनों का-८१, बांज, मोड्रू और खर्सू के वनों का-८१

शीशम के वन-८१, खैर के-८१, तप्पड़ों पर गोठ-८२, बांस के वन-८२, साल के-८२, चीड़ के-८२, बांज के-८३, साइप्रेस, स्प्रूश, ब्लू पाइन के-८३, देवदारु के-८३, वनों से लाभ-८३

बुग्यालें-८४

वन्यजन्तु-८४, व्याघ्र-८४, हाथी-८४, बघेरा-८५, अन्य-८५, इनके उत्पात-८५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पक्षी - ८४, घरों के निकट रहनेवाले-८५, ऊंचे भागों के-८४, चकोर-८४, मोनाल-८४, लाभ-८५

क्षुद्रजन्तु-८५, सर्प-८५, अजगर-८५

मछली-८५, महाशीर-८४

आवागमन के साधन-८६, रेलमार्ग-८६, मोटरमार्ग-८६, डांडों पर मोटरमार्ग-८६, मोटर यातायात का प्रवास पर प्रभाव-८६

व्यवसाय-८७, कृषि-८७, पशुचारण-८७, स्थायी नौकरियों के प्रति आकर्षण-८७, जनसंख्या-८८

१—पर्वतीय द्वीप के निवासी

पर्वतीय द्वीप का स्वरूप-८९, नदी-घाटियों से प्रवेश-८९

मूल निवासी- ८९, पितृसमाधि-निर्माता Megalith Builders-८९, किरात-भिल्ल जाति-९०, विशेषताएं-९०, दरद-खश जाति-९१, विशेषताएं-९१, डोम जाति-९१, विशेषताएं-९२ पुरानी परम्पराएं आज भी सुरक्षित-९३

हूणदेश से पशुचारकों का प्रवेश-९४, गंगा के मैदान से शरणार्थियों का प्रवेश-९४, रक्तमिश्रण-९५

भूगोलिक परिस्थिति का प्रभाव-९५, अन्ध विश्वास-९५, महानदियों का प्रभाव-९६, पूज्य भावना, हिमानियों के प्रति-९६, गंगाजी के प्रति ९६, महातीर्थों की कल्पना-९७, ग्रामदेवताओं की कल्पना-९७, देवताओं का 'दोष'-९७, प्रथम उत्पादन अर्पित करने की प्रथा-९८, मन्दिरों में पुत्रियां चढ़ाने की प्रथा-९८, शुभ मुहूर्त की ढूंढ-९९, डल्या-९९, भूत-प्रकोप-९९, हत्या-१००

व्याघ्रों के आतंक-१००, नरसिंहदेवता के रूप में पूजा-१०१, सर्पों के आतंक-१०१, नागदेवता के रूप में पूजा-१०१

नदी-घाटियों में सम्पर्क - सुविधा- १ ३, शास्त्रीय हिन्दुधर्म का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रचार-१०३, पठारों पर सम्पर्कहीन जीवन - १०३, अन्धविश्वास और रूढ़िवाद-१०३

गढ़वालियों में सत्यप्रियता-१०३, चोरी का अभाव-१०४, कष्ट सहने का अभ्यास-१०५, युद्ध में पराक्रम-१०५, कर्त्तव्यपरायणता-१०६

संकरी सम्पर्कहीन घाटियों का प्रभाव-१०६, संकीर्ण भावनाएं-१०६, ईर्ष्या-१०७, कलह-१०७

प्राचीनकाल में जनसंख्या की समस्या-१०६, वेग से वृद्धि-१०६, प्रकृति के द्वारा नियन्त्रण-१०६, हिमानीपात-१०६, बाढ़-१०६, पर्वतपात-१०६, नरभक्षी व्याघ्र-१०६, सर्प-१०६, बिच्छू-१०६, महामारियां-१०६, अकालमृत्यु-११०

सामाजिक प्रथाओं द्वारा नियंत्रण-११०, द्रोपदी-विवाह-प्रथा-११०, ज्येष्ठ पुत्र सम्पत्ति का स्वामी-११०, सौतिया बांट-११०, जोगी-जोगिणी बनने की प्रथा-१११, मन्दिरों में पुत्र-पुत्रियां चढ़ाने की-१११, आत्महत्या की-१११, दासविक्रय की-११२, भिक्षा-याचन-११२

कत्यूरी-पंवार युग में - आजीविका के साधन-११२, हूणदेश से व्यापार-११२, तंगण - परतंगण-११२, मंदिरों में आजीविका-उपार्जन-११३

अंगरेज़ी राज्य में-सुव्यवस्था-११३, जनसंख्या में वेग से वृद्धि-११३, ग्राम और कृषि-विस्तार का युग-११४, वन-विनाश से कृषि-विस्तार का युग-११४, विक्रय वस्तुओं का उत्पादन-११५, वनों में मजूरी की सुविधा-११६, चराचरी (जाग्रति) का युग-११६, कुली-उतार-प्रथा का विरोध-११७, डोला-पालकी-आंदोलन-११७, कुटीर-उद्योगों का त्याग-११७, डोटियाल श्रमिकों का आगमन-११७, जनसंख्या में वेग से वृद्धि-११७, प्रवास में वेग से वृद्धि-११७

निराशा का युग-११८, प्रवास में वृद्धि-११६, बेकारी में वृद्धि-११६, प्रवास में दुखी जीवन-११६, पर्वतीय द्वीप की परम्परा का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रभाव-११६, घरों की खुद (तीव्र स्मृति)-१२०, उपत्यका से उत्कट प्रेम-१२१

३-भू-पुत्रों का जीवन

प्राकृतिक भाग-१२३, माल या भावर-१२३, पहाड़प्रदेश-१२३, भोटप्रदेश-१२४, गड्डी-१२४, सलाण-१२५, राठ-१२५, भावर की समस्याएं-१२५, पहाड़ की समस्याएं-१२५, भोट की समस्याएं-१२६

माल या भावरप्रदेश-१२७,

सींचाई की समस्या-१२७, जलवायु-१२८, भावर का बसना-१२८, रामजे और गसिन का कार्य-१२६

आरम्भिक कठिनाइयां-१२६, नहर-निर्माण-१३०, गांवों में वृद्धि-१३०, कृषिभूमि में वृद्धि-१३०, अन्नों का उत्पादन-१३०, हाली-१३२, तिहाड़ी-१३२, साझी-१३२, कृषक की कठिनाइयां-१३२, भावर का आकर्षण-१३२

कोटद्वार की उन्नति-१३३, भावर में गढ़वालियों द्वारा कृषि-१३४, चकबंदी-१३५, बिखरी बस्तियां-१३५, गांवों में मकान-१३६, पहाड़ से भावर की ओर जन-प्रवाह-१३६

भावर के जलवायु का प्रभाव-१३७, स्वास्थ्य-हानि-१३८ जनसंख्या का ह्रास-१३९, व्यसनों के प्रति आकर्षण-१४०, ऋण लेने का चसका-१४०, सुलभ ऋण के कुप्रभाव-१४१, बिखरी-बस्तियों का प्रभाव-१४१, चोरी-डाका, अनैतिकता-१४१, अपराधियों को आश्रय-१४२, संस्कृति-संक्रमण-१४३, भविष्य में उन्नति की आशा-१४३

पहाड़-प्रदेश-१४५

विस्तार-१४५, गड्डी-१४५, उपज-१४५, स्वास्थ्य-हानि-१४६, राठप्रदेश-१४६, सलाण-१४७, नामकरण-१४७

पहाड़प्रदेश में डांडे और रौलियां-१४८, गांवों की परिस्थिति-१४९ गांवों की स्थापना-१४९, खेतों का विस्तार-१५०, खेत - निर्माण-१५१, गांवों में मकान-१५१, व्यक्ति की अपेक्षा समाज का प्रभुत्व - १५२ सुरक्षा का प्रबन्ध-१५२, नए ढंग के मकान-१५३, मकानों के विभिन्न

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार-१५३, सवर्ण बस्ती-१५५, हरिजन बस्ती-१५५,

पशुओं को रखने का प्रबन्ध-१५६, मकान के आगे वृक्ष-१५६

कृषि-१५७, सींचाई-१५७, सेरा-१५७, धान-रोपाई-१५७, सहेल-१५८, गेहूं की खेती-१५८ मडुंवा, आदि अन्नों की-१५६, सारियां (फसलें)-१६०, फसलों का हेरफेर-१६०, निराई-गुडाई-१६०,

कृषक की कठिनाइयां-१६१, सींचाई की-१६१, बाढ़ द्वारा खेत-विनाश-१६३, खेतों का विभाजन-१६४, खाद-१६४, गोठ-१६४, कटील १६५, पशु-पक्षियों से खेती की रक्षा-१६६, टांड या ओड़ा-१६६, पशुओं को मार-भगाना-१६७, अहेड़ी-१६८, प्राकृतिक प्रकोप-१६८, अन्नों का अति अल्प उत्पादन-१६८

पशुचारण के कष्ट-१६६, वनैले पशुओं के उत्पात-१६६, सर्पं के उत्पात १७०, कृषिभूमि की कमी-१७०, जनसंख्या की वृद्धि-१७०, भूमि-विभाजन-१७१, भू०वि० से कठिनाइयां-१७१, उर्वरता का ह्रास-१७२, उत्पादन में ह्रास-१७३, प्रवास पर जाकर मजूरी कमाने में वृद्धि-१७३

पशुरोग-१७३, पशुओं का महत्व-१७४, पशुनाश से हानि-१७५, बिवाह आवश्यक-१७५, पत्नी-शुल्क-१७६. बिवाह में व्यय-१७७, आभूषणों पर-१७७, पुत्र आवश्यक-१७७, जनसंख्या में असीम वृद्धि-१७८, ऋण में वृद्धि-१७८, भूमि के झगड़े-१७६, रिकार्ड की गलतियों के कारण धन व्यय-१७६, न्यायालयों में धन व्यय-१८१, कृषिभूमि पर भार में वृद्धि-१८२, स्वयं न कमानेवाले आश्रितों (Non earning dependents) में वृद्धि-१८२, कुटीरउद्योगों का अभाव-१८३, फल-उत्पादन की कठिनाइयां-१८४, सहकारी भावना का अभाव-१८६, योजनाओं की असफलता-१८६, व्यापार में असफलता-१८७, अधिक वेतन वाली नौकरियां प्राप्त करने में कठिनाइयां-१८८

एक ही मार्ग, प्रवास पर आजीविका कमाना - १८८, सलाण में प्रवास-१८८, राठ में-१८८, भोट में-१८८

○

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राक्कथन

१९५१ की जनगणना में गढ़वाल और टिहरी जिलों में, प्रत्येक जिले के १०००० से अधिक परिवारों का विशेष अध्ययन कियागयाथा। गढ़वाल के उन परिवारों में ६४१८७ व्यक्ति थे और उनकी आयु का वर्गीकरण इस प्रकार था[1] :

आयु	पुरुष	नारी	आयु	पुरुष	नारी
० से १४ वर्ष तक कुल योग	१२७८०	१२०१८	२३	३०६	४२४
			२४	४८५	७१२
१५	५७५	७३७	२५	५१०	७३९
१६	५२९	७४९	२६	३६२	४८६
१७	४२०	५४२	२७	२९५	३४८
१८	६७५	८४४	२८	५०४	७४४
१९	३४५	५१२	२९	१५३	२२१
२०	४०९	५८९	३०	६२७	८८४
२१	४१०	५५८	३१	१७१	३१२...

टिहरी में भी आयु का वर्गीकरण लगभग इसी प्रकार का था[2]। १९६१ के आंकड़े, जो शीघ्र प्रकाशित होनेवाले हैं, इनसे भी अधिक चिन्तनीय हैं।

इन आंकड़ों से स्पष्ट है -- (१) इन जिलों में बालिकाओं की अपेक्षा बालक अधिक उत्पन्न होतेहैं।

१-देखिए, प्रसाद-गढ़वाल, टेबिल CV २-देखिए, प्रसाद-टिहरी, टेबिल CV

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(२) १४ वर्ष तक के बालकों की कुल संख्या इसी आयु तक की बालिकाओं की कुल संख्या से बहुत अधिक होतीहै।

(३) १५ वर्ष से युवा पुरुष भारी संख्या में प्रवास पर जानेलगतेहैं, किन्तु अधिकांश युवती नारियां गांवों में ही रहतीहैं।

उपरोक्त जिले, अब चमोली, गढ़वाल, उत्तरकाशी और टिहरी, इन चार जिलों में विभक्त हैं, और अलकनन्दा की पनढ़ाल में स्थित होने के कारण अलकनन्दा - उपत्यका के अन्तर्गत आतेहैं। इन जिलों के निवासी 'गढ़वाली' बोली बोलतेहैं और गढ़वाली कहलातेहैं।

१९६१ की जनगणना में इस सारे क्षेत्र में कुल १२०१७८१ व्यक्ति पाएगए। इनके अतिरिक्त लगभग दो लाख गढ़वाली गणना के अवसर पर उपत्यका से बाहर प्रवास पर रहने के कारण उपरोक्त संख्या में सम्मलित नहीं किएगए।

अलकनन्दा - उपत्यका की जनसंख्या का लगभग सातवां भाग उपत्यका से बाहर प्रवास पर रहताहै। ऋषिकेश, कोटद्वार और रामनगर, उपत्यका के इन तीनों द्वारों से प्रति-दिन सैकड़ों गढ़वाली 'अन्न - जल' की ढूंढ़ में निकलकर प्रवासियों की संख्या बढ़ातेरहतेहैं।

कक्षा ८ या १० की परीक्षा देते ही अधिकांश बालक, और बहुत से तो एक-दो कक्षायें पढ़कर ही, अन्न - जल की ढूंढ़ में प्रवास पर चलेजातेहैं। उपत्यका के गांवों में वर्ष भर, विशेषकर, शीतऋतु में केवल स्त्री, बच्चे और वृद्ध पुरुष ही घर पर मिलतेहैं। सभी गढ़वालियों की धारणा है—'घर पड़ीक कख छे गुजर'? [१]

अलकनन्दा-उपत्यका के अधिकांश निवासी अपने ही क्षेत्र में अपना निर्वाह क्यों नहीं करसकते? उन्हें क्यों निरन्तर प्रवास पर भटकना पड़ताहै? भूगोलिक परिस्थिति इसके लिए कहां तक उत्तरदायी है? उनमें प्रवास पर जाकर 'अन्न-जल' ढूंढने की परम्परा कब से चली?

१- अपने क्षेत्र से बाहर प्रवास पर गए बिना निर्वाह कैसे होसकताहै?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपत्यका में रहतेहुए वे किस प्रकार का जीवन व्यतीत करतेहैं ? प्रवास में उनका जीवन किस प्रकार बीतताहै ?

प्रवास का उनके परिवार पर क्या प्रभाव पड़ताहै ? अधिकांश युवा पुरुषों का प्रवास में चलेजाने और अधिकांश युवती नारियों का गांवों में रहने से समाज में कैसी उलझनें उत्पन्न होसकतीहैं[1] ? क्या प्रवासों को और उनके अवांछित प्रभावों को कम कियाजासकताहै ?

इन प्रश्नों पर जनता और सरकार, दोनों को गम्भीरता पूर्वक विचार करनाचाहिए ।

मैंने अपने शोध-प्रबन्ध 'Alakananda-Basin:--A Study of Transhumance, Nomadism & Seasonal Migrations' में, जिसे मैं 'अलकनन्दा-उपत्यका में प्रवास' नाम से प्रकाशित कर रहाहूं, उपत्यका के प्रवासों का विस्तृत अध्ययन करने का प्रयास कियाहै ।

प्रस्तुत पुस्तक मेरे शोध-प्रबंध का पहला भाग है। इसमें अलकनन्दा-उपत्यका का भूगोल, भूगोलिक परिस्थिति तथा अन्य कारणों से प्रवास की प्रेरणा, उपत्यका का ग्रामीण जीवन, कृषि और पशुचारण की कठिनाइयां, एवं ग्रामीण जीवन की अनेक उलझनों द्वारा प्रवास की प्रेरणा, आदि का विस्तृत अध्ययन कियागयाहै ।

आर्थिक कठिनाइयों के कारण सारा प्रबन्ध एक साथ प्रकाशित न करके पांच भागों में प्रकाशित कियाजारहाहै । सारे ग्रंथ को आद्योपांत न पढ़ने से पाठकों को कुछ भ्रम होसकताहै ।

इस भाग में उपत्यका के ऊबड़-खाबड़ धरातल का वही स्वरूप सामने आताहै, जो अपनी युवा संतान को अन्न-जल ढूंढने के लिए घर से बाहर निकालदेताहै । उपत्यका के धरातल का दूसरा पावन स्वरूप, जिसकी मृतिका को शिर पर चढ़ाने के लिए प्रति वर्ष भारत

१- उपरोक्त आंकड़ों पर एक बार फिर दृष्टि डालिए ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के विभिन्न भागों से एक लाख से अधिक व्यक्ति उपत्यका के महातीर्थों में पहुंचतेहैं, इस ग्रन्थ के पांचवें भाग में वर्णित है ।

उपत्यका-निवासियों को, भूगोलिक परिस्थिति किस प्रकार रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से उलझाए रखतीहै, इस भाग में, उसी का चित्रण है । पांचवें भाग में हम देखेंगे कि प्रवास के व्यापक प्रचार के कारण उपत्यका अपने 'पर्वतीय द्वीप' के स्वरूप को खोरहीहै । अन्धविश्वास वेग से मिटरहेहैं । तथा 'भिड़ने' (छुआछूत) की भावना और 'डोम', 'डोमाणा', 'बिठ' शब्द लुप्त होरहेहैं ।

इस ग्रन्थ का लक्ष्य अलकनन्दा-उपत्यका में प्रचलित प्रवासों का अध्ययन करना है । इसलिए इसमें उपत्यका के सम्बन्ध में, वे सभी सूचनाएं, जो किसी गजेटियर में मिलतीहैं, ढूंढना व्यर्थ है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहायक साहित्य-सूची[1]

BIBLOGRAPHY

Abbreviations and References

१—महत्वपूर्ण

1. Atkinson, E. T. - The Himalayan Districts of the N.W.P. of India, 3 Vols, Govt. Press, Allahabad, 1882, 1884, 1884

2. Batten - Official Report on the Province of Kumaun, Govt. Press Agra, 1841.

3. Beckett, J. B. O. - Report on the Settlement Operations in Garhwal District, Govt. Press, Allahabad, 1886.

4. Clay, J. M. - Note on the Bhotias of British Garhwal, Typed Sheets dated 22-4-1915, in the office of the D.C., Pauri-Garhwal.

---

१ — 'अलकनन्दा-उपत्यका' में उद्धृत ग्रन्थों की सूची। उन समस्त ग्रंथों की सूची के लिए, जिनकी सहायता इस शोधप्रबंध में ली गईहै, देखिए भाग ५, 'अलकनन्दा-उपत्यका में ऋतुकालीन प्रवास'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

5. Ibbotson-'Note' - Further Note on the Bhotias of British Garhwal, by Capt. A.W. Ibbotson, Typed sheets, dated 8-8-1930, in the office of the D.C., Garhwal.

6. Ibbotson A. W. - Final Report on the 11th Revenue Settlement of Garhwal District, Govt. Press, Allahabad, 1933

Ibbotson A. W. - Paragana Settlement Reports (Revenue Rate and Assessment Reports of the settled villages) of following paraganas, published by Govt. Press, Allahabad

7. Ibbotson-'Badhan' - Paragana Sett. Report Badhan, 1938

8. Ibbotson-'Bhabar' - Paragana Sett. Report Bhabar, 1930

9. Ibbotson-'Barahasiun' - Paragana Sett. Report Barahasiun, 1929

10. Ibbotson-'Chandpur' - Paragana Sett. Report Chandpur, 1931

11. Ibbotson-'Chaundakot' - Paragana Sett. Report Chaundkot, 1930

12. Ibbotson-'Dasauli' - Paragana Sett. Report Dasauli, 1931

13. Ibbotson-'Dewalgarh' - Paragana Sett. Report Dewalgarh, 1930

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

14. Ibbotson-'Ganga Salan' - Paragana Sett. Report Ganga Salan, 1928

15. Ibbotson-'Malla Salan' - Paragana Sett. Report Malla Salan, 1931

16. Ibbotson-'Painkhanda' - Paragana Sett. Report Painkhanda, 1931

17. Ibbotson-'Nagpur' - Paragana Sett. Report Nagpur, 1931

18. Ibbotson-'Talla Salan' - Paragana Sett. Report Talla Salan, 1929

19. Pauw, E. K. - Report on the Tenth Settlement of the Garhwal District, Govt. Press, Allahabad, 1896

20. Pant, S. D, - The Social Economy of the Himalayans, London, George Allen & Unwin Ltd., 1935.

21. Pranavanand - Exploration in Tibet, Calcutta University, 1950

22. Stowell, V. A. - A Manual of the Land Tenures of the Kumaun Division, (Hill Tracts), Govt. Press, Allahabad, 1953

23. Sherring, C. A. - Western Tibet and British Borderland, London, Edward Arnold, 1906.

24. Sherring-'Notes' - Notes on the Bhotias of Kumaun and British Garhwal, by C. A. Sherring, Asiatic Society, Calcutta, 1903

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२—उपयोगी

25. Atkinson-'Mineralogy' - Economic Mineralogy of the Hill Districts of N. W. P., by E. T. Atkinson, Govt. Press, Allahabad, 1882

26. डबराल, शिवप्रसाद - उत्तराखंड - यात्रा - दर्शन, विशाल कार्यालय, नारायणकोटि, गढ़वाल, १६६१

27. Dewar, D - A Hand Book to the English Pre-Mutiny Records, Govt. Press, Allahabad, (year not given)

28. Joshi, L. D. - The Khas Family Law in the Himalayan Districts of the U. P., India, Govt. Press, Allahabad, 1929

29. O'smaston - A Forest Flora for Kumaun, Govt. Press, Allahabad, 1935

30. Pate Ram - Garhwal, Ancient & Modern, Army Press, Simla, 1917.

31. Prasad-'Garhwal' - Census Hand Book Pauri Garhwal, 1951, by Rajeshvari Prasad, Govt. Press, Allahabad, 1953.

32. Prasad-'Tehri' - Census Hand Book Tehri, Garhwal, 1951, by Rajeshvari Prasad, Govt. Press, Allahabad, 1953

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

33. Panna Lall - Hindu Customary Law in Kumaun, Govt. Press, Allahabad, 1942

34. रतूड़ी, हरिकृष्ण - गढ़वाल का इतिहास, गढ़वाली प्रेस, देहरादून, १९२८

35. रतूड़ी-'लौ' - नरेन्द्र हिन्दू लौ, ले० हरिकृष्ण रतूड़ी, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, १९१८

36. राहुल, सांकृत्यायन - हिमालय-परिचय, भाग १, गढ़वाल, लौ जौरनल प्रेस, इलाहाबाद, १९५३

37. Report of Tarai Bhabar Development Committee, Govt. Press, Allahabad, 1947

38. Sapru, H. N. - Report of the Industrial Survey of Garhwal Distt. Govt. Press, Allahabad, 1914

39. Walton, A. - Gazetteer of Dehradun Distt. Govt. Press, Allahabad, 1911

40. Walton, A. - Gaztteeer of Garhwal Distt. Govt. Press, Allahabad, 1911

41. Webber, T. W. - The Forests of Upper India and Their Inhabitants. London, Edward Arnold, 1902

42. Williams, G. P. C. - Historical and Statistical Memoir of Dehradun, Govt. Press, Roorkee, 1874

३—सामान्य

अ

43. चातक, गोविन्द - गढ़वाली लोकगीत, देहरादून, १९५६

44. चातक, गोविन्द - गढ़वाली लोककथाएं, देहरादून, १९५८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

45. Darling, H. M. - The Punjab Peasant in Prosperity & Debt, Oxford, 1947

46. Majumdar, D. N. - Himalayan Polyandary, London, 1962

47. Malthus, T. R. - An Essay on the Principles of Population, Reeves & Turner, 9th Edition

48. O'akley E. S. - The Holy Himalaya, London, 1906

49. O'akley & Gairola - The Himalayan Folklore, Allahabad, 1935

50. Winick, Charles - The Dictionary of Anthropology, London, 1957

51. Pant-'Patra' - Answers to the Questionnaire on Land Reforms in Kumaun, by S. D. Pant, Dehradun, 1958.

आ

52. Encyclopedia of Social Sciences, Vols. II, III, New York, 1953

53. Plowden, W.C. - Report on the census of British India, 1881, vol. I, London, 1883

54. Rajeshvari Prasad - Village Directory, Garhwal, Allahabad, 1953

55. Rajeshvari Prasad - Village Directory, Tehri-Garhwal, Allahabad, 1953

56. Turner, A. C. - Census of India, 1931, U. P., Part I, Report, Allahabad, 1933

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

57. Watt, George - A Dictionary of Economic Products of India, 6 Vols. Calcatta, 1889-92

इ

58. Corbet, Jim - Man Eaters of Kumaun, Oxford, 1955

59. Corbet, Jim - Man Eating Leopard of Rudraprayag, Oxford, 1953

60. Ford Robertson - Our Forests, Allahabad, 1950

61. John - Working Plan, Garhwal Forest Division, Allahabad, 1955

ई

62. Auden, J. B. - The Structure of the Himalaya in Garhwal, Calcutta, 1937

63. Blache, Vidal de La - Principles of Human Geography, London, 1950

64. Brunhes, Jean - Human Geography, London, 1952

65. Griesbach, C. L. - Geology of Central Himalaya, Culcutta, M. G. S. Vol XXIII

66. Krishnan - Geology of India & Burma, Madras, 1956

67. मेहरोत्रा तथा सकसेना - मानव-भूगोल, आगरा, १९५०

68.. राव, S. R. नारायण - खनिज पदार्थों की खोज, इलाहाबाद १९४८

69. Semple, E. C. - Influences of Geographic Environment, NewYork, 1947

70. Tayler - Australia, London, 1940

71. Wadia - Geology of India, Macmillan

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उ

72. अग्रवाल, वासुदेवशरण - भारत की मौलिक एकता, इलाहाबाद, सं० २०११
73. Carnac, H. R. - Ancient Rock Sculpturing in Kumaun, Calcutta, 1887
74. चतुर्वेदी - ऐतिहासिक कहानियां, इलाहाबाद
75. मोतीचन्द्र - सार्थवाह, पटना, १९५३
76. Panikar, K. M. - Geographical Factors in Indian History, Bombay, 1959
77. पांडे, बद्रीदत्त - कुमांऊ का इतिहास, अलमोड़ा, १९२७

ऊ

78. राहुल, सांकृत्यायन - घुम्मक्कड़ स्वामी-इलाहाबाद, प्र०सं०
79. रावत, उमरावसिंह - उत्तरापथ की एक झांकी, लैन्सडौन, १९५६
80. Shipton, Eric - Upon that Mountain, London, 1956
81. Sleeman, Major Genral - Rambles & Recollections
82. Sven Hedin - Trans - Himalaya, 3 vols, Macmillan, 1910, 1913
83. केदारखंड - बम्बई, १९३५
84. वराहमिहिर - वृहत्संहिता, बम्बई, सं० २००९
85. महाभारत - गोरखपुर, १९५६

ए

86. कल्याण - तीर्थांक, गोरखपुर, जनवरी १९५७
87. नव भारत टाइम्स - दिल्ली २-५-१९६१
88. सत्यपथ - कोटद्वार १५-७-५८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४—मानचित्र

No.	Topo Sheet	Scale	Sheet No.	Edition
1.		One Inch	53 K / 9	II, 1943
2.		Half Inch	53 N. S. W. (Gridded)	I, 1953
3.		Half inch	53 N. N. W.	1940
4.		Quarter Inch	53 A	VI, 1952
5.		,, ,,	53 E	IV, 1951
6.		,, ,,	63 F	V, 1953
7.		,, ,,	53 J	VI, 1947
8.		,, ,,	53 K	III, 1951
9.		,, ,,	53 O	IV, 1946
10.	Forest Map	2 Inches to a mile	Dudhatoli Forests	
11.		,, ,,	Barkot-Harki Doon Forests	
12.		,, ,,	Bawar Forests	

१३. मानचित्र पौड़ी-गढ़वाल, निर्माता श्री नरेन्द्रसिंह वर्त्वाल, पौड़ी

१४. मानचित्र अलमोड़ा, प्रकाशक पंत - स्टोर, अलमोड़ा

१५. मानचित्र नेपाल, निर्माता श्री कुलमानसिंह, प्रकाशक - मल्हीपुर ब्रांच प्रेस, सहारनपुर

१६. मानचित्र उत्तराखण्ड-कैलास - निर्माता श्री शिवप्रसाद डबराल लेखक की पुस्तक 'उत्तराखण्ड-यात्रा-दर्शन' में प्रकाशित, प्रकाशक - विशाल कार्यालय, चमोली

17. Map of Kailas-Manasarobar-Pradesh - by Swami Pranavanand, published in his book -'Exploration in Tibet', Calcutta University

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शब्दावली

अ

अहेड़ी - आखेट

इखारा, इरवंडा - एक मंजिल

उखड़ - बिना सींचाई वाली भूमि

ओढ़ा - पेड़ या खम्भों पर झोंपड़ा.

ओगल - वक ह्वीट

ओबरी - निचली मंजिल

आंछरी - परी

उपरांऊं - बिना सींचाई वाली उपजाऊ भूमि

औडल - ओले का तूफान

औता - पुत्रहीन

क

कटील - भेल पर खेती

कूल - छोटी नाली, नहर

कुल्यांदा - सिंचाई वाला

कुई - गेहूं का कीड़ा

खड्वाल - गडरिया

खरसाऊ - ग्रीष्म ऋतु

खरक्या - खरक वाला

खालड़ू - चमड़े का थैला, मशक

खोल - बस्ती

गड्डी - नीची घाटी

ग्यगर-खम्-पा-गढ़वाली डोलबा

गाड, गधेरा - नाला

कुल - परिवार

कुल-देवता - परिवार का देवता

कुटला - कुदाल

खला - खलिहान में धान का ढेर

खरक - वन में गोशाला

खंभ - खम्भा

खसमखांदी - स्वामी-विनाशक

खुद - तीव्र स्मृति

खोली - फाटक

गथ्वाड़ा - गहथ उत्पन्न करने योग्य

गाती - चादर

ग्वार - अस्थायी गौशाला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुनसा - शीतकालीन आवास
गोठ - खेत में पशु बांधना
घर - कमरा
घड्याला - देव-कीर्तन
घाड़ - विकट चढ़ाई-उतार वाला क्षेत्र
ग्वैरा - ग्वाला
गंगलोड़ा - गोल पत्थर
घरबाड़ा - निकट के खेत
घास-पेड़ों के पत्ते

च

चलबसंत - वसंत के तूफान
चांठ - भेल, देखिए :-
राठ, घाड़, चंघाड़
चराचरी - जाग्रति
चौक - आंगन
छांतड़ी - पत्तों की छतरी
छिल्ला - तीली
जग्वाल्या - रक्षा करने वाला
जिम्मू - एक जंगली मसाला
जिवाल - रस्सी का जाल, ट्रैप
जोग्याणा-जोगियों का बसाया गांव
झूगा - दल
चंघाड़ - विकट चढ़ाई - उतार वाला क्षेत्र
चम्मड़ - सूखा गेहूं
चोरा - वन प्याज
छल - भूत का कोप
छानी - गौशाला
जग्वाली - खेतों की रक्षा
जात - तीर्थयात्रा
जेठाली - ज्येष्ठ भ्राता का भाग
जेठुंडा - ज्येष्ठ भ्राता की भूमि
झंपानी - पालकी ढोने वाला

ट

टपरू - झोंपड़ा
टांड - ओड़ा, पेड़ में झोंपड़ा
डंड्याला - बरामदा
डांडा - पर्वत श्रेणी
डिग्गी - पानी का हौज
डोमाणा - डोम-बस्ती
ढंगार - सीधी खड़ी चट्टान
टुकड़ा - खेत
डल्याणा - डल्या जाति का गांव
डांग - पथरीली भूमि
डुक्पा, डोक्पा-तिब्बती पशुचारक
डोलबा - खम्-पा
ढाकरी - भारवाहक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त

तलांऊ - सींचाई वाली भूमि
तप्पड़ - चौरस भूमि
तिवारी - डंडयाला
तिहाड़ी - भूस्वामी को एक तिहाई उपज देने वाला किसान
तैंली - धूपवाली
दाथी - दरांती
दाग - कुदृष्टि
दांदए - मुंडेरी
दुखंडा, दोपुरा - दो मंजिल
देशी - मैदानवासी, परदेशी
देवचेली - देवदासी
दोष - देवकोप
द्रोपदी-विवाह-भाइयों की साझी पत्नी
धौ-पुजाई - देव-पूजा
धड़ा - उपजाति
धारा - पानी की धार
धार - पहाड़ी
नाप खेत-नपी भूमि जो रिकार्ड में किसी व्यक्ति के नाम पर लिखी हो ।

प

पटाल - स्लेट
पल्ला, पल्ली-गोठ में बांस-घास का फड़का
पयार - महाहिमालय के घासक्षेत्र
पाखा - भेल, अधिक ढालवाली
पांग - गंगवार मिट्टी
पालसी - भेड़-बकरियां चराने वाला
पितृकूड़ी - पितरों की गुफा
फाफड़ - बक्र ह्वीट
फांस - फांसी
पुछेर - बाकी, देवताओं का रहस्य बताने वाला
बस्ता - पुस्तक रखने का झोला
बल्लगांव - बाल-गांव, देवमन्दिरों में चढ़ाएगए बालकों का गांव
बसकाल - वर्षात
बाड़ी - बिना मीठे का हलुवा
बाकी - पुछेर
बाबा - पिता
बारी - खिड़की
बिठाणा - गांव में सवर्णों का स्थान
बुग्याल-महाहिमालय के घास-क्षेत्र
बुग्गी-बुग्यालों की कोमल घास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बेनाप भूमि - बिना नपी भूमि, जो रिकार्ड में किसी व्यक्ति के नाम पर न लिखी हो
भंगेला - भांग का वस्त्र
भिड़ना - छूत लगना
भीमुंडा, भियारा - एक मंजिल
भेल् - सीधी खड़ी चट्टान
मकान - सलीपरों का झोंपड़ा
माल् - भाबर
मुल्क - देश
मोरेन - हिम के साथ बहा मलवा
रखवाली - भूत-प्रेत भगाने का मंत्र
रूड़ी - ग्रीष्म
रिंगाल - हिमालय का छोटा बांस
रौली - तंग घाटी
सहेल-साथ मिलकर काम करना
सारी - फसल
सीम - दलदली भूमि
सिलड़ी - कम धूप वाली भूमि
सौतिया-बांट - पत्नियों की संख्या के अनुसार सम्पत्ति-विभाजन
हंत्या - अतृप्त आत्माओं का कोप
हुणिया - तिब्बती
हूणदेश - तिब्बत में सतलुज-घाटी

बोई - माता
ब्योली - बधू
भितर-मंज्यूल - भीतरी मंज्यूल
भद्वाड़ - भादों में हल लगाना
भीड़ा - खेत की दीवार
भैरों झांप - महापंथ से कूदना
मंज्यूल - उपरली मंजिल
मगारा - पानी का धारा
माणा - ८ छटांक की नाप
मैत - मातृभूमि
राठ - ऊबड़-खाबड़ प्रदेश
रोट - मोटी मीठी रोटी
सलामी - थोड़ी ढ़ाल वाली
सलाण - थोड़ी ढ़ाल वाला क्षेत्र
साझी - भूस्वामी के साथ साझे में खेती करने वाला किसान
सेरा - सींचाई वाले खेत
हौंसा - जंगली कुत्ता
हल्या - हल लगाने वाला चाकर
हिमानी - ग्लेशियर
हिम-बगड़ - हिमनिर्मित चौरस तप्पड़

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोकोक्तियाँ

'आप घोड़ा न बाप घोड़ा। लात्यूं-लात्यूं न थुन्थरो फोड़ा।'--न मेरा घोड़ा है, न मेरे बाप का घोड़ा था, यदि मैं घोड़े पर चढ़ा तो घोड़े की लातों से मेरा शिर फूटेगा।

'ऊ भैंसी हौरि हुंदन जू पकोड़ी हगदन।'--पकोड़ी हगने वाली भैंसें ऐसी नहीं होतीं।

'कुछ खायो गाड क मोरू न। कुछ खायो डांड क चोरू न।'--कुछ नदी - घाटियों के मोर खागए, कुछ डांडों के चोर लेगए।

'खांद की जल्। उगटद की सेल्।'--किसी को खाते-पींते देखकर मेरी छाती जलतीहै, और किसी को नष्ट होते देखकर मुझे शांति मिलतीहै।

'गांव मां ब्याऊ। मेरा आंख मां डाऊ।'--गांव में किसी का सजधज से विवाह होते देखकर मेरी आंखों में पीड़ा होतीहैं।

'घर पड़ीक कख छे गुजर।'--घर पर पड़े-पड़े निर्वाह कैसे होसकताहै?

'मारी घुघती, मी जुगती। मारी तितरी, आपरि भितरी।'--जब सबने मिलकर घुघती मारी तो वह उसे स्वयं हड़प बैठा और जब सबने मिलकर तितरी मारी तो उसे भी वह अपने घर लेगया।

'जै का खेत, तै की खेती। डूम-जोगियों की क्या खेती?'--खेती के कार्य में वही कुशल होताहै जिसकी अपनी भूमि होतीहै। भूमि-हीन डोम और जोगियों में खेती का कौशल कहां से आसकताहै?

'देश मां कमायो। पहाड़ मां समायो।'--मैदान में जो कुछ कमाया उसे पहाड़ में आकर समाप्त करदिया।

'नेड़ो को डांगिलो। दूर को पांगिलो।'--निकट की कंकड़-पत्थर भरी भूमि दूर की उपजाऊ भूमि से अधिक लाभप्रद होतीहै।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'बावु की सहेल । पूत की मछौल ।'--बाप कूल निकालकर गांव वालों को अपने सेरे में धानरोपाई के लिए निमन्त्रण देताहै । पुत्र तुरंत कूल तोड़कर गांव वालों को मछली पकड़ने का निमन्त्रण देताहै ।

'भाई को सुसरास, दाथुड़ी की पीठ ।'--दराती की पीठ से घास नहीं कटती । भाई के सुसराल वाले अपने दामाद के भाइयों की सहायता नहीं करते ।

'मी लगांदू आंगड़ा की । रांड लगांद घाघरा की ।' मैं अंगिया की बात करताहूं, मेरी रांड घाघरे की बात करतीहै ।

'रूपसिंघ क खावन । भूपसिंघ क उस्यावन ।' रूपसिंह के पुत्रों को खाता-पीता देखकर उसके भाई भूपसिंह के पुत्रों को सूजन होतीहै ।

'स्वऽरो को स्वऽरो काल । लोह को लोह काल ।' लोहा लोहे को काटताहै, सगोत्रीय अपने सगोत्रीय को ।

'स्वऽरो पैलि त बांजी करो । निथर पछौ करो ।' सगोत्रीय को अपने खेतों में बीज बोने के लिए न बुलाओ । वह पहिले तो इस प्रकार बीज वोएगा कि खेतों में कुछ भी न उगे । नहीं तो इस प्रकार बोएगा कि उगने में बड़ी देर लगे, और खेती समय पर न पकसके ।

—※:०:※—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शुद्धि-पत्र

पृष्ट २४ पर १० वीं पंक्ति से आगे जोड़िए :-

77A. Haig, W. Cambridge History of India, Vol III, Cambridge, 1928

77B. A Collection of Papers Connected with an Inquiry into the Condition of the Lower Classes of the Population, specially in Agricultural Tracts of N.W. Province and Oudh, Instituted in 1887 - 1888, Govt, Press, Nainital, 1890

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४२	६	मसाग्री	सामग्री
४५	१८	खपम्।	खम्-पा
५१	टि०	भूमि	भूमिः
		पृथिव्या	पृथिव्याः
६४	टि० ६	पृ० १०४	पृ० १०
६८	टि० १	नए. एस. डब्लू.	एन. एस. डब्लू.
८१	४	क्षेत्रफत्र	क्षेत्रफल
८३	शीर्षक	अलकनन्दा-परिचय	उपत्यका-परिचय
८६	२१	Megalithic	Megalith
९०	१२	चिपकी	पिचकी
९२	टि०	जैकी खेती	जैका खेत
१७०	१५	स्वस्थ्य	स्वस्थ

—•—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलकनन्दा - उपत्यका में प्रवास

भूमिका

अविकसित पर्वतीय प्रदेशों में जीवन-निर्वाह की समस्या बड़ी जटिल होतीहै। इन प्रदेशों के निवासी चाहे कितने ही परिश्रमी और लगनशील हों, उन्हें अपने ही प्रदेश में अपना समुचित निर्वाह करना अति कठिन होताहै।[1] यह कठिनाई उन पर्वतीय प्रदेशों में और भी अधिक होतीहै, जो दुलंघ्य प्राकृतिक सीमाओं से घिरे होने के कारण जीन ब्रूंश के शब्दों में 'पर्वतीय द्वीप'[2] कहे जा सकतेहैं।

ऐसे पर्वतीय द्वीपों के निवासी शताब्दियों तक निश्चित पर्वतीय सीमाओं के अन्दर घिरे रहने के कारण अपना संसार अपने पर्वतीय क्षेत्र तक ही सीमित समझतेहैं। अपने क्षेत्र के प्रति उनके हृदय में उत्कट प्रेम होताहै। वे उसी की सीमा के अन्तर्गत अपना निर्वाह करने का प्रयत्न करतेहैं।

अपने क्षेत्र से बाहर के निवासियों के प्रति उनके हृदय में स्वाभाविक झिझक होतीहै। वे सहसा अपने क्षेत्र को छोड़ कर अन्यत्र जीविका ढूंढने को प्रस्तुत नहीं होते। यदि विवश होकर उन्हें आजीविका की ढूंढ में बाहर जाना ही पड़ताहै तो वे शीघ्र ही अपने क्षेत्र में लौटने के लिए छटपटाने लगतेहैं।[3]

१- मिलाइए--सेम्पल पृ० ५७६

२- ब्रूंश -पृ० १८७, 'Island in the Alps'

३- सेम्पल--पृ० ५८०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसे पर्वतीय द्वीप का सबसे सुन्दर उदाहरण गंगा जी की उपरली घाटी में स्थित अलकनन्दा-उपत्यका है, जिसके अन्तर्गत उत्तर प्रदेश के चार जिले, चमोली, गढ़वाल, उत्तरकाशी और टिहरी आतेहैं। पूर्व, उत्तर और पश्चिम में हिमालय की महोच्च श्रृंखलाओं ने तथा दक्षिण में शिवालिक की श्रेणियों और घने वनों ने इस उपत्यका को एक स्वतन्त्र पर्वतीय द्वीप का स्वरूप दे दियाहै।

शताब्दियों से इस पर्वतीय द्वीप की निश्चित सीमाओं के अन्दर घिरे रहने के कारण इस उपत्यका के अधिकांश निवासी अपना संसार इसी तक सीमित समझतेहैं। इस प्रदेश में निरंतर मिश्रण से उत्पन्न रक्त, भाषा और जीवन-यापन की पद्धतियों की समानता, धार्मिक और सामाजिक परम्पराओं की अभिन्नता तथा पांच-छै पीढ़ी पहले तक राजनीतिक एकता रहने के कारण यहां के निवासी उपत्यका को अपना पृथक् 'मुल्क' समझतेहैं[1] और उसे 'गढ़ देश' नाम देतेहैं।

वे अपने को अपने पड़ोसियों से भिन्न एक स्वतन्त्र 'गढ़वाली' जाति का समझतेहैं और मैदान के निवासियों को 'देशी' अर्थात् परदेशी नाम से पुकारतेहैं। उनका उपत्यका से अति उत्कट प्रेम होताहै और वे यथासम्भव उपत्यका की सीमाओं के अन्दर ही अपना निर्वाह करने का प्रयत्न करतेहैं।

दुर्भाग्य से उपत्यका के १०१५१ वर्गमील क्षेत्रफल में से ९९ प्रतिशत धरातल अति ऊबड़-खाबड़, पथरीला और पहाड़ी है। भाबर की ५८ मील लम्बी और अधिक से अधिक एक मील चौड़ी, संकरी मैदानी पट्टी को छोड़कर[2] कहीं एक वर्ग मील भी चौरस मैदानी भूमि नहीं मिलती।[3]

१- रतूड़ी - मानचित्र का शीर्षक तथा पृ० २, ८
२ इवटसन--भाबर- पृ० १ ३- पौ - पृ० १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपत्यका का तीन चौथाई से अधिक भाग ५००० फीट से अधिक ऊंचा और आधे से अधिक भाग ७५०० फीट से अधिक ऊंचा है। एक तिहाई से अधिक भाग ६ मास से ९ मास तक तथा एक चौथाई भाग निरन्तर हिम से ढ़का रहताहै।

उपत्यका में सदा से ही पशुचारण और कृषि जीवन-निर्वाह के मुख्य साधन रहेहैं। किन्तु इस प्रदेश का तीन चौथाई से अधिक धरातल वन, पर्वत और हिमानियों से ढ़का होने के कारण कृषि के लिए अप्राप्य है। आज भी केवल १४.७ प्रतिशत धरातल पर कृषि होतीहै। प्राचीन काल में उपत्यका का और भी अधिक भाग वनों और हिंसक पशुओं से भरा था जिससे कृषि के लिए दश प्रतिशत धरातल भी उपलब्ध न था।[1]

किन्तु उन दिनों इस पर्वतीय द्वीप में रहने वाले भोले पशुचारक-कृषकों की आवश्यकताएं बहुत कम थीं। वे अपने भोजन की कमी कन्द, मूल और जंगली फलों से पूरी कर लेतेथे।[2] तथा भांग की एक चादर अथवा एक काला कम्बल लपेट कर ही अपना सारा जीवन विता देतेथे।[3]

फिर भी यहां जन-संख्या के निर्वाह की समस्या सदा जटिल बनी रहतीथी। उन दिनों जनसंख्या की वृद्धि का नियन्त्रण प्राकृतिक प्रकोपों और सामाजिक नियमों के द्वारा होताथा। महामारी, हिमानीपात, बाढ़, भूचाल और नरभक्षी व्याघ्र आदि जनसंख्या की वृद्धि को रोकतेथे।[4]

द्रोपदी-विवाह (सगे भाइयों की साझी पत्नी) की प्रथा, सम्पति का अविभाजन, भैरों झांप से कूद कर आत्महत्या एवं साधुओं की झोली और मन्दिरों में पुत्र-पुत्रियां चढ़ाने की परम्परा तथा दास-दासी

१-विकेट - पृ० ५ २- कंडीशन आव लोअर क्लासेज - पृ० ३८
३-केदारखण्ड - २०६।४ ४- देखिए भाग २, परिच्छेद २

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूप में विक्रय की सार्वभौम प्रथाओं के द्वारा समाज जनसंख्या की वृद्धि को रोके रखताथा।[1]

अंग्रेजी राज्यकाल में सुरक्षा एवं सुव्यवस्था की स्थापना हुई। जनसंख्या की वृद्धि रोकने वाली सामाजिक प्रथाओं पर रोक लगा दी गई।[2] प्राकृतिक प्रकोपों से मनुष्य की रक्षा के लिए प्रत्येक सम्भव उपाय को अपनाया जानेलगा। फलतः जनसंख्या में वेग से वृद्धि हुई और १५०वर्षों में उपत्यका की जनसंख्या सात गुने से अधिक बढ़गई।[3]

अंग्रेज शासकों ने उपत्यका-वासियों को कृषिक्षेत्र की वृद्धि के लिए प्रोत्साहित किया।[4] उपत्यका-वासियों को पहाड़ी ढ़ालों को खोदकर अपने खेतों का विस्तार करने में कुछ सफलता भी मिली।[5] किन्तु ३०-३१ अक्षांश पर जहां धरातल का तीन चौथाई भाग ५००० फीट से अधिक ऊंचा और अत्यन्त ऊबड़-खाबड़ हो, वहां कृषिभूमि का विस्तार केवल सीमित रूप में ही हो सकताहै।[6]

पिछली डेढ़ शताब्दी में लगातार कृषिभूमि का विस्तार करते रहने पर भी उपत्यका में केवल १४.७ प्रतिशत क्षेत्र पर ही कृषिभूमि बन सकीहै। और उपत्यका के प्रत्येक व्यक्ति के पास औसत से केवल $\frac{3}{4}$ एकड़ अत्यन्त ऊबड़-खाबड़ एवं अनउपजाऊ भूमि है।

इस भूमि का भी लगभग आधा भाग उत्पादन की दृष्टि से सर्वथा व्यर्थ है। उसे उपत्यका-निवासियों ने केवल भूमि की भूख के कारण ही अपने अधिकार में रखाहै।[7] उस पर वे केवल परम्परा निभाने के लिए ही अपने श्रम, समय और धन का अपव्यय करतेहैं।[8]

१- देखिए भाग १, परिच्छेद २

२- देवर-पृ० ४५१,४५८,४६४,४८०

३-देखिए भाग १, परिच्छेद २

४- विकेट--पृ० ३

५-पातेराम -- पृ० २१२, २१३

६- देखिए मेहरोत्रा तथा सकसेना -- पृ० १०८. टिप्पणी

७-इवटसन -- पृ० ८

८-पंत -- पत्र, पृ० ४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन लाभहीन खेतों को वे अपने उन पूर्वजों की पवित्र धरोहर समझतेहैं, जिन्होंने पहाड़ी ढालों को खोदकर एवं अगणित चट्टानों को तोड़ कर उनके 'भीड़े' बनाएथे और उनमें सहस्रों टोकरियां मिट्टी भरकर उन्हें खेतों का रूप दियाथा।[1]

शताब्दियों तक इस पर्वतीय द्वीप की परम्परा में पले हुए ये उपत्यकावासी अपने इन संकरे और टेढ़े-मेढ़े, पथरीले एवं अनउपजाऊ खेतों से ही चिपका रहना चाहतेहैं और अन्यत्र जाकर स्थायी रूप से बसने के लिए प्रस्तुत नहीं होते।[2]

यद्यपि जनगणना में उपत्यका के निवासियों की संख्या केवल १२ लाख पाई गईहै किन्तु वास्तविक जनसंख्या १४ लाख से कम नहीं है। प्रत्येक परिवार के एक-दो पुरुष स्थायी या अस्थायी रूप से निरन्तर प्रवास में रहतेहैं। यद्यपि उनमें से अधिकांश जनगणना में उपत्यका के निवासियों में नहीं गिनेजाते किन्तु वास्तव में वे भी उपत्यका के निवासी हैं, और उपत्यका से अपना सम्बन्ध बनाए रखतेहैं।[3]

इतने अधिक व्यक्ति इस साधनहीन, अविकसित प्रदेश में किस प्रकार अपना निर्वाह करतेहैं, इस पहेली को बुझाने के लिए इबटसन ने लिखाहै :-

'गढ़वाल के निवासी अपने निर्वाह के लिए पूरा अन्न नहीं उगा सकते। वे अन्न तथा सारी आवश्यक एवं सुखप्रद सामग्री, गुड़, दाल, बरतन और वस्त्र, बाहर से खरीदतेहैं। इतनी अधिक वस्तुओं का आयात करने के लिए वे केवल अपनी सेवाओं का निर्यात करतेहैं।[4] . . . . .

'ब्रिटेन के निवासियों के समान यहां के निवासी भी आजीविका

१-पंत -- पत्र, पृ० ४

२- देखिए भाग १, परिच्छेद २

३-देखिए महीधर बड़थ्वाल- गढ़वाल में कौन कहां, पृ० १७६

४- इबटसन -- पृ० २

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की ढूंढ में व्यापक रूप से अन्यत्र जाने के अभ्यासी हैं। केवल परिवार की नारियां, बच्चे और वृद्ध पुरुष ही, तथा कभी-कभी, एक-दो तकड़े व्यक्ति गांव में नाममात्र की कृषि की देखरेख के लिए रह जातेहैं और प्रायः सभी युवक बाहर जाकर नौकरी करतेहैं।[१]. . . . .

'वे सेना में भरती होतेहैं। सरकारी नौकरियों पर लगतेहैं। अथवा बम्बई, कलकत्ता आदि नगरों की व्यापारिक कम्पनियों में नौकरी करतेहैं। वे वास्तव में, भारत-भर में, सर्वत्र, नाना प्रकार की नौकरी करते हुए, अथवा घरेलू सेवकों के रूप में आजीविका कमाते हुए मिलतेहैं।[२] . . . . .

'वे धन बचाकर अपने घर भेजतेहैं और छुट्टी होने पर या नौकरी की समाप्ति पर अपने गांव में चले आतेहैं'।[३]

इवटसन का कथन सत्य है। बाहर नौकरी करने वाले व्यक्तियों की कमाई के भरोसे ही, उपत्यका के सहस्रों परिवारों की कृषि, जो यहां वास्तव में घाटे का सौदा है[४], चलतीहै। किन्तु ऐसे व्यक्तियों की संख्या, जो स्थायी रूप से उपत्यका से बाहर रहकर आजीविका जुटातेहैं, दो लाख से अधिक नहीं हैं।

भारत में 'डी फ़ैक्टो' जनगणना[५] होने के कारण बाहर नौकरी करने वाले उपरोक्त गढ़वालियों में से अधिकांश, जनगणना में उन क्षेत्रों के निवासी माने जातेहैं, जहां वे नौकरी करतेहैं। वे लाखों व्यक्ति[६] जो स्थायी रूप से उपत्यका में रहतेहैं, और उपत्यका की जनसंख्या के अन्तर्गत गिने जातेहैं, अपने निर्वाह के लिए स्वयं क्या करतेहैं, इसका उल्लेख इवटसन ने नहीं कियाहै।

१-इवटसन--पृ० २ २- इवटसन--पृ० २ ३-- इवटसन--पृ० २

४- 'देश मां कमायो। पहाड़ मां समायो'। -- लोकोक्ति

५- टर्नर - पृ० १८६ .

६- १९६१ की गणना के अनुसार १२०१७८१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वास्तव में यही लाखों व्यक्ति, जो उपत्यका में रहकर अपनी आजीविका जुटातेहैं, अपने कठिन श्रम और सूझबूझ से सिद्ध करतेहैं कि वे अपने जीवन को भूगोलिक परिस्थितियों के अनुकूल ढाल कर उसका अधिक से अधिक लाभ उठाने में कितने कुशल हैं।

इस साधनहीन उपत्यका में भी वे किस प्रकार अपनी लगन और श्रम से अपने निर्वाह के साधन जुटातेहैं, और किस प्रकार निर्वाह के उन साधनों को जुटाने के लिए उन्हें निरन्तर उपत्यका में प्रवास पर इधर-उधर भटकना पड़ताहै, इसका अध्ययन इस प्रबन्ध में किया गयाहै।

जहां धरातल कठोर और अनुदार होताहै, तथा जहां जलवायु और मिट्टी भोजन के उत्पादन में बाधक बनतेहैं, वहां के निवासियों को परिश्रमी और अग्रशोची बनना पड़ताहै। जिस कमी की पूर्ति खेत नहीं कर सकते उसकी पूर्ति अपने श्रम और लगन से करनी पड़तीहै।[१]

आज भी उपत्यका में जीवन-निर्वाह के प्रमुख साधन कृषि और पशुचारण हैं। दक्षिण में भाबर की संकरी पट्टी में, जो १००० फीट से १५०० फीट तक ऊंची है, यदि सिंचाई की सुविधा हो तो गंगा जी के मैदान के समान खेती उत्पन्न हो सकतीहै। दुर्भाग्य से इस प्रदेश में अधिकांश नदियों का जल सूख जाताहै और केवल मालन और खोह नदियों के थोड़े से जल के सहारे ही कुछ खेती होतीहै।[२]

भाबर से उत्तर की ओर, पहाड़ प्रदेश में, महानदियों की अति संकीर्ण, प्रतप्त एवं अति आर्द्र घाटियों में, जो 'गड्डियां' कहलाती हैं, सिंचाई की सहायता से उत्तम खेती उत्पन्न होतीहै।[3]

केवल भाबर और गड्डी प्रदेशों में ही प्रायः अकेले कृषि से निर्वाह

१- सेम्पल -- पृ० ५७८

२- देखिए भाग १, परिच्छेद ३

३- देखिए भाग १, परिच्छेद ३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो सकताहै । शेष सारी उपत्यका में ज्यों-ज्यों धरातल ऊंचा होता जाताहै, कृषि का महत्व घटता जाताहै और उपत्यका-निवासियों को अपने निर्वाह के लिए असीम कठिनाइयां उठानी पड़तीहैं ।[1]

भूगोलिक परिस्थिति से उत्पन्न ये अगणित कठिनाइयां इन पर्वतवासियों की लगन और पौरुष को दमन करने में असमर्थ सिद्ध हुईहैं । वरन् विषम परिस्थिति-जन्य कठिनाइयों के कारण ही उन्हें असाधारण शारीरिक शक्ति और परिस्थिति के अनुकूल जीवन ढालने की सूझबूझ प्राप्त हुईहै ।[2]

ऊंचे पहाड़ी मार्गों पर बरसात में मिलने वाली जोंक के समान वे अपनी पथरीली भूमि से चिपके रहकर चारों ओर हाथ-पैर फैलाते हैं तथा निकट या दूर की किसी भी वस्तु से लाभ उठाने को प्रस्तुत रहतेहैं ।

नदी में बाढ़ आते ही वे उसके 'पांग' भरे जल को अपने खेतों में पहुंचा कर रेतीली मिट्टी को उपजाऊ बनाने के लिए तैयार रहते हैं । ओलों का तूफान आते ही वे नदी के शीतल जल में मरी हुई मछलियां पकड़ने दौड़ पड़तेहैं । आंधी समाप्त होते ही वे बांज या चीड़ के पेड़ों से गिरी हरी या सूखी पत्तियां बटोर कर खाद बनाने के लिए पशुओं के नीचे बिछातेहैं और भोटांतिकों के पड़ाव उठने की संभावना समझते ही उनकी भेड़-बकरियों की मेंगनी बटोरने को टोकरियां लेकर दौड़ पड़तेहैं ।

वे पत्थरों को फाड़कर मकान छाने के लिए 'पटाल' निकालतेहैं । मालू के पत्तों या भोजपत्र की छाल से अपने लिए 'छांतड़ी' (छतरी) बनातेहैं । 'वाइल्ड ह्यूर'[3] के समान दुर्गम चट्टानों से घास के तिनके बटोरतेहैं । बुग्यालों और बनों के सहारे पशुओं के गल्ले

१- देखिए भाग १, परिच्छेद ३   २-मिलाइए पंत -- पृ० ९-१०

३- देखिए, सेम्पल, पृ० ५७६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पालतेहैं। बनैली जड़ी-बूटियों से मनुष्य और पशुओं के आकस्मिक रोगों को दूर करतेहैं।

खेतों से पर्याप्त भाजन उगाने में असमर्थ होकर वे हिमालय के महोच्च गिरिद्वारों और बुग्यालों से, वनों और चराईक्षेत्रों से, पवित्र शिखरों और पवित्र नदियों से तथा हिमानियों और सरोवरों से लाभ उठाकर अपनी आजीविका जुटातेहैं। इतना ही नहीं, वे दूसरों की धार्मिक भावनाओं, दुर्वलताओं और अन्धविश्वासों से भी लाभ उठाकर अपना निर्वाह करतेहैं।

उपत्यका के विभिन्न प्राकृतिक भागों के तुलनात्मक अध्ययन से विदित होताहै कि प्रत्येक भाग में मुख्य और सहायक व्यवसाय भिन्न-भिन्न हैं, जिन्हें अपनाने की प्रेरणा प्रत्येक भाग के धरातल की ऊंचाई, दुर्गमता या सुगमता से, हिमपात या वर्षा आदि जलवायु के तत्वों से, बुग्यालों, घासों या विशेष प्रकार की वनस्पति से, मिट्टी की उर्वरता या अनुर्वरता से, मार्गों की सरलता या दुर्गमता से अथवा अन्य सुविधाओं या कठिनाइयों से मिली है।

धुर उत्तर में, भोटप्रदेश में, ९० प्रतिशत धरातल १२००० फीट से अधिक ऊंचा, घोर उजाड़ एवं सर्वथा दुर्गम और निर्जन है। इस प्रदेश की केवल तीन अति संकीर्ण घाटियों में, ७५०० फीट से ११५०० फीट की ऊंचाई तक मनुष्य बसा है।

इन घाटियों में भी ६ मास से लेकर ९ मास तक हिम छाया रहताहै। शीतकाल में यहां के निवासियों को अपार हिमपात से सारी घाटी ढक जाने और बाहर निकलने के मार्ग बन्द हो जाने से पहले ही अपने परिवार, पशु और सारी सामग्री को लेकर निचली घाटियों में भागना पड़ताहै। ग्रीष्म में हिम पिघलने के पश्चात ही वे अपने गांवों में लौटने का प्रयास कर सकतेहैं।

इस दुर्गम प्रदेश के निवासियों को भारत - तिब्बत - सीमांत के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोलह-सत्रह सहस्र फीट ऊंचे घाटों से, जो अन्न और गुड़ के भंडार भारत को, सुहागा और ऊन के भंडार तिब्बत से जोड़तेहैं, आह्वान मिलताहै। वे इन घाटों से होने वाले व्यापार पर बड़ी तत्परता से एकाधिपत्य जमा कर, अपनी दुर्गम एवं उजाड़ घाटियों की अनुर्वरता-जन्य कमी की पूर्ति करतेहैं।

ये साहसी भोटांतिक कार्तिक में अपने परिवार, पशु और सारी सामग्री को लेकर 'गुनसा'[1] में चलेआतेहैं तथा निचली घाटियों और भाबर के वनों में पशुचारण करतेहैं।

ज्येष्ठ मास में वे अपने परिवार, पशु और सारी मसाग्री को लेकर अपने 'मैत'[2] लौट जातेहैं। शीघ्र ही भारत के अन्न और गुड़ से लदी हुई इनके मेंढ़े-बकरों की लम्बी पंक्तियां धीरे-धीरे रेंकती हुई हिमालय के महोच्च घाटों को पार करके हूणदेश पहुंचतीहैं तथा हूणदेश और हिमालय की बुग्यालों पर चराई जातीहैं।

भोट के दक्षिण में, राठप्रदेश में, ६००० फीट से ७५०० फाट तक ऊंचे खुले पठारों पर शीतकाल में अत्यधिक हिमपात होने पर भी घाटियां बन्द होने से मर जाने का इतना अधिक भय नहीं है। इसलिए इस प्रदेश के निवासियों को शीतकाल में अपने गांवों को खाली करके तथा अपना परिवार, पशु और सामग्री लेकर निचली घाटियों में नहीं उतरना पड़ता।

इस प्रदेश के अति विषम जलवायु में तथा अभ्रक मिली ग्रेनाइट-चट्टानों से बनी अति रूखी तथा सर्वथा अनुर्वर मिट्टी में मुट्ठी-भर जौ और फाफड़ भी बड़ी कठिनाई से उत्पन्न होतेहैं, इसलिए जीवननिर्वाह के साधन के रूप में कृषि का महत्व सर्वथा नगण्य है।

अस्तु राठप्रदेश में बसे हुए खड्वाल और गद्दी हिमरेखा तक

१- शीतकालीन आवास

२- ग्रीष्मकालीन आवास, मातृभूमि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फैली हुई पयारों और बुग्यालों की छोटी, कोमल एवं पौष्टिक बुग्गी घास से लाभ उठातेहैं। वे भेड़-बकरियों के बड़े-बड़े गल्ले पालकर अपनी मुख्य आजीविका जुटातेहैं।

वे अपने गल्लों को ग्रीष्मकाल में महाहिमालय की बुग्यालों पर तथा शीतकाल में निचली घाटियों के चराईक्षेत्रों या भावर के वनों में चरातेहैं।

राठप्रदेश के निचले भागों में, लघुहिमालय के पठारों पर, ५००० फीट से ६००० फीट तक कृषि की अपेक्षाकृत अधिक सुविधा है। वहां कहीं-कहीं थोड़ा-सा गेहूं, जौ, चीणा, मंडुवा और झंगोरा आदि अन्न उत्पन्न होजातेहैं। किन्तु मुख्य व्यवसाय के रूप में इन पठारों के निवासियों को भी पशुचारण करना आवश्यक है।

इन पठारों के निवासी अपने निकट की पर्वत-श्रेणियों के वनों से लाभ उठाकर गाय-भैंसों के गल्ले पालतेहैं। उन क्षेत्रों में, जहां बांज, खर्सू और मोडू के उत्तम वन हैं, खरक बनाकर गाय-भैंस चराने की प्रथा का व्यापक प्रचार है। पश्चिम में राड़ी-बड़कोट के वनों के, मध्य में भिलंग-भरदार के वनों के, तथा पूर्व में दूधातोली क्षेत्र के वनों के निकट बसे हुए खश और कुमाउनियों की मुख्य आजीविका खरक बनाकर पशुचारण से ही चलतीहै। ये पशुचारक मुख्यत: घी और पशु-विक्रय से अपना निर्वाह करतेहैं।

रोमसागरीय प्रांतों के समान राठप्रदेश में भी मनुष्य की आजीविका वनस्पति के द्वारा निर्धारित होतीहै। महाहिमालय की दक्षिणी ढालों पर फैली बुग्यालों के कारण उनके निकट-प्रदेश के निवासी, खड्वाल और गद्दी भेड़-बकरियां चराने वाले गडरिए हैं। लघुहिमालय की उपरली सीमा पर बांज, खर्सू और मोडू के वन होने के कारण उनके निकट-प्रदेश के निवासी खश और कुमाउनी गाय-भैंस चराने वाले ग्वाले हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राठप्रदेश के दक्षिण में, २५०० फीट से लेकर ५००० फीट की ऊंचाई तक फैले सलाणप्रदेश में कृषि की अपेक्षाकृत अधिक सुविधा है। यहां पर्वत-श्रेणियां धीरे-धीरे ढलुवां होती गईहैं, और नदियों की घाटियां अधिक चौड़ी हैं। इन पर्वतीय ढालों पर और नदियों की घाटियों में खेत बनाना अपेक्षाकृत अधिक सरल है।

सलाणप्रदेश में वर्ष में दो फसलें होजातीहैं। इसलिए मुख्य व्यवसाय कृषि है। किन्तु सारी उपत्यका की जनसंख्या का ८० प्रतिशत अकेले सलाणप्रदेश में बसा होने के कारण प्रत्येक परिवार के पास औसत से इतनी कम भूमि है कि उससे निर्वाह होना असम्भव है।

सलाणप्रदेश में शताब्दियों से मुख्य व्यवसाय कृषि होने के कारण समस्त पर्वत-श्रेणियों के अधिकांश वनों को नष्ट कर दिया गयाहै। अस्तु सहायक व्यवसाय के रूप में पशुचारण की सुविधा बहुत कम है।

सलाण में जनसंख्या वेग से बढ़ रहीहै और जीवनस्तर में परिवर्तन आ जाने से निरन्तर बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति अकेले कृषि से नहीं होसकती। इसलिए शीतऋतु में कृषि का कार्य समाप्त होते ही, अथवा वर्ष में किसी भी समय, अवसर पाते ही, सलाण के निवासी सरकारी वनों में, निर्माण-कार्यों में या भाबर के खेतों में मजदूरी करने निकल पड़तेहैं।

प्रति वर्ष ग्रीष्मकाल में लगभग एक लाख तीर्थयात्री भारत के कोने-कोने से उपत्यका के तीर्थों में पहुंचतेहैं। इस सुविधा से लाभ उठाने के लिए सहस्रों व्यक्ति दुर्गम तीर्थयात्रा - मार्गों पर भारवहन, पंडाचारी या पथ-प्रदर्शन से अथवा तीर्थयात्रियों के पास भोजनादि सामग्री वेचकर अपनी आजीविका चलातेहैं।

अनेक व्यक्ति, विशेषकर सीम-मुखीम के फिक्वाल और डल्या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रोसियान के निवासियों के समान[1] धर्म या देवता-विशेष के नाम पर भिक्षा मांग कर अपना निर्वाह करतेहैं। भाट, बादी, मिरासी, पजांई, पातर आदि जातियां विगियानों के घुमन्तू गवैयों के समान[2] गांवों-नगरों में गीत, नृत्य और मनोरंजन से अपना निर्वाह करतीहैं।

अनेक व्यक्ति जूरा, आल्पस और कैंटाब्रियन आदि पर्वतों के निवासियों के समान[3] शीतकाल में 'पीर - बवर्ची-भिश्ती-खर' बनकर अपनी आजीविका जुटातेहैं और प्रवास-ऋतु की समाप्ति पर अपनी कृषि और पशुचारण के कार्यक्रम को निभाने के लिए अपने घरों में लौट आतेहैं।

मेलों के अवसर पर दो-चार छोटी-मोटी वस्तुएं बेचने या भार-वहन करके कुछ कमाने के लिए अनेक व्यक्ति प्रस्तुत रहतेहैं।

घुमन्तू बणगूजर, जिनकी कोई निश्चित भूमि नहीं है, ग्रीष्मकाल में उपत्यका की बुग्यालों में और शीतकाल में भावर के वनों में भैंसें चरातेहैं। इन प्रव्राजियों को नित्य अपना परिवार, पशु और सारी सामग्री अपने साथ ले जानी पड़तीहै। ये मुख्यतः वनप्रदेशों में ही विचरण करतेहैं। केवल चराईक्षेत्रों को बदलते समय ही ये मार्ग में पड़ने वाले गांवों या नगरों में दिखाईदेतेहैं।

इनके अतिरिक्त उपत्यका में प्रव्राजी डोलबा या ग्यगर-खपम्‌ा भी रहतेहैं जो तिब्बत से आकर इस प्रदेश में रहनेलगेहैं। ये ग्रीष्मकाल में तीर्थयात्रा-मार्गों पर भारवहन करके तथा शीतकाल में उपत्यका के गांवों में हींग, चोरा, जिम्मू और बिसातखाने की वस्तुएं बेचकर अपना निर्वाह करतेहैं। बणगूजरों के समान डोलबा भी अपना परिवार, पशु और सामग्री सदा अपने साथ लिए फिरतेहैं। फेरी वाले होने के कारण ये सदा गांवों के निकट-प्रदेश में प्रव्रजन करतेहैं।

१- ब्रुंश -- पृ० १४५

२- सेम्पल -- पृ० ५८०

३- सेम्पल--पृ० ५८०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपत्यका के विभिन्न प्राकृतिक भागों की भोटांतिक, खड्वाल, गद्दी, खश, कुमाउनी, बणगूजर, डोलबा आदि जनजातियों और सलाण के निवासियों में जो विभिन्न प्रकार के रोचक प्रवास प्रचलित हैं, उनका जीन ब्रूंश के अनुसार निम्न वर्गीकरण किया जा सकताहै :-

(१) प्रव्राजी घोषयात्रा Transhumance with Nomadism

इस वर्ग के अन्तर्गत उन पशुचारकों की जीवनचर्या आतीहै, जो एक ऋतु में, प्राय: शीतकाल में, अपने गांवों को खाली करके, तथा अपने परिवार, पशु और सामग्री को लेकर अन्यत्र पशुचारण करतेहैं और दूसरी ऋतु में, प्राय: ग्रीष्मकाल में, पुन: अपने परिवार, पशु और सामग्री सहित अपने प्रदेश में लौट कर पशुचारण करतेहैं ।[१]

उपत्यका के भोटप्रदेश की तीन अति संकीर्ण और दुर्गम घाटियों में बसे हुए जाड, मारछा, तोलछा और जौहारी भोटांतिक इसी प्रकार के प्रव्राजी घोषयात्री हैं ।

इन भोटांतिकों के व्यापारिक मित्र हुणिया या डोक्-पा पशुचारक भी, जो तिब्बत में सतलुज की उपत्यका में रहतेहैं, और ग्रीष्मकाल में अलकनन्दा-उपत्यका की भोटांतिक घाटियों में आकर पशुचारण और व्यापार करतेहैं, इसी वर्ग के अन्तर्गत आतेहैं ।

(२) घोषयात्रा Transhumance without Nomadism

इस वर्ग के अन्तर्गत उन पशुचारकों की जीवनचर्या आतीहै, जो विभिन्न ऋतुओं में विभिन्न चराईक्षेत्रों में पशुचारण करतेहैं । किन्तु जिन्हें इसके लिए प्रव्राजी घोषयात्रियों के समान विभिन्न ऋतुओं में अपने गांवों को खाली करके एवं अपने परिवार और सामग्री को लेकर अन्यत्र नहीं जानापड़ता ।[२]

उपत्यका के राठप्रदेश में, महाहिमालय की ढालों पर बसे हुए

१ - ब्रूंश -- पृ० १४२

२ - ब्रूंश -- पृ० १४२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खड्वाल, जिनकी मुख्य आजीविका भेड़-बकरियों के गल्ले पालने से चलती है, घोषयात्री गड़रिए हैं।

इसी प्रदेश में चम्बा-कांगड़ा से आकर कुछ गद्दी - परिवार बस गएहैं जो विशिष्ट प्रकार के मेंढ़े-बकरों को चरातेहैं। गद्दी भी खड्वालों के समान घोषयात्री गड़रिए हैं। वे ग्रीष्मकाल में अपने मेंढ़े-बकरों को हिमालय की बुग्यालों पर और शीतकाल में भाबर के बनों में चरातेहैं।

राठप्रदेश के निचले भागों में, लघुहिमालय के पठारों पर बांज, खसूं और मोहू के वनों में, ग्रीष्मकाल में खरक बनाकर गाय-भैंसें चराने वाले खश, जो शीतकाल में अपने पशुओं को निचली घाटियों में चरातेहैं, घोषयात्री ग्वाले हैं।

रामगंगा - उपत्यका के कुमाउनी, जो ग्रीष्मकाल में दूधातोली के वनों में खरक बनाकर गाय-भैंसें चरातेहैं और शीतकाल में रामगंगा की घाटी में ही पशुचारण करतेहैं, खशों के समान घोषयात्री ग्वाले हैं।

(३) प्रव्रजन (Nomadism) -- इस वर्गके अन्तर्गत उन पशुचारकों की जीवनचर्या आतीहैं जिनकी निश्चित भूमि और घर नहीं होते।[1] बिना निश्चित भूमि और बिना घर वाले वे व्यक्ति भी जो अपनी सम्पत्ति अपने साथ लेकर इधर-उधर फिरते रहतेहैं, चाहे वे पशुचारक न हों, प्रव्राजी या नोमाद कहलातेहैं।

उपत्यका के बणगूजर जो अपनी भैंसें और सामग्री लेकर वनप्रदेशों में फिरतेहैं, तथा डोलवा या ग्यगर खम्पा जो अपनी सामग्री लेकर गांव-गांव में फिरतेहैं, इसी वर्ग के अन्तर्गत आतेहैं।

(४) ऋतुकालीन प्रवास(Seasonal Migrations)--इस वर्ग के अन्तर्गत उन व्यक्तियों की जीवनचर्या आतीहै जो विभिन्न ऋतुओं में अस्थायी रूप से अन्यत्र जाकर अपनी आजीविका जुटातेहैं और

१. विनिक -- पृ० ३८४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रमऋतु की समाप्ति[१] पर अपने गांवों में लौट आतेहैं ।[२]

ग्रीष्मकाल में तीर्थयात्रा - मार्गों पर भारवाहन करने वाले गढ़वाली और डोटियाल, चट्टी-निर्माण करके यात्रियों के पास सामग्री बेचने वाले चट्टी-चौधरी तथा यात्रियों का मार्ग प्रदर्शन करने वाले और उनसे तीर्थकृत्य कराने वाले पंडों की आजीविका यात्रा-मार्गों पर ऋतुकालीन प्रवास से चलतीहै ।

ग्रीष्मकाल में देवदारु के वनों में तथा शीतकाल में साल, बांज, बावड़ और खैर के वनों में तथा निर्माण कार्यों में और भावर के खेतों में मजदूरी से निर्वाह करने वाले गढ़वाली, कुमाउनी और डोटियाल आदि जातियों को ऋतुकालीन प्रवास से ही आजीविका मिलतीहै ।

ऋतु विशेष में धार्मिक भिक्षा मांगने वाली, पाखण्ड रचने वाली तथा दूसरों का मनोरंजन करके मांग खाने वाली फिक्वाल, डल्या,बादी आदि जातियों की आजीविका ऋतुकालीन प्रवास से ही चलतीहै ।

उपत्यका में प्रव्राजी घोषयात्रा और घोषयात्रा में विभिन्न बुग्यालों और चराईक्षेत्रों में पशुचारण के लिए केवल पुरुष ही जातेहैं । भोटांतिकों की नारियां अपने मंत या गुनसा में और खड्वाल, खश आदि घोषयात्रियों की नारियां अपने गांवों में ही रहतीहैं ।

प्रव्राजी वणगूजर और डोलबा अपने प्रव्रजन में अपनी नारियां साथ रखतेहैं ।

ऋतुकालीन प्रवासों पर आजीविका कमाने वाली सभी जातियां अपनी नारियों को अपने गांवों में ही रखतीहैं । केवल पुरुष ही प्रवास पर जातेहैं । दरिद्र से दरिद्र व्यक्ति और शिल्पकार-डोम भी अपनी नारियों को प्रवास में मजदूरी करने नहीं भेजते ।

१- ब्रूश -- पृ० २२१, सेम्पल- पृ० ५८०

२- प्रवास के वर्गीकरणों के लिए देखिए टर्नर - पृ० १८६ तथा इन० सोशल साइनसेज जि० १, पृ० ५४७; जि० २, पृ० ४६३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

केवल नायक-वर्ग की युवतियां और उनकी देखा-देखी नर्तक-डोम वर्ग की युवतियां भी, नृत्य, गान और वेश्यावृत्ति से आजीविका कमाने के लिए ऋतुकालीन प्रवास पर जातीहैं।

भूगोलिक वातावरण का इस उपत्यका के विभिन्न भागों में प्रचलित विभिन्न प्रकार के प्रवासों के साथ अति रोचक सामंजस्य पायाजाताहै।

धरातल की ऊंचाई ज्यों-ज्यों बढ़तीहै त्यों-त्यों प्रवास के नए-नए रूप सन्मुख आतेहैं। १००० फीट से २५०० फीट तक ऊंचे भाबर और गड्डियों में केवल प्रचंड ग्रीष्म में ही वहां के कुछ निवासी पहाड़ी डांडों पर स्थित गांवों की शरण लेतेहैं।

२५०० फीट से ५००० फीट तक ऊंचे सलाणप्रदेश में शीतकाल आरम्भ होते ही ऋतुकालीन प्रवास पर मजदूरी कमाने के लिए वनों और निर्माणकार्यों की ओर दौड़ने की प्रवृत्ति देखीजातीहै।

५००० फीट से ६००० फीट तक ऊंचे राठप्रदेश में ग्रीष्म में बांज खर्सू और मोड़ू के वनों में खरक बनाकर पशु चराने तथा शीतकाल में निचली घाटियों में पशु चरानेवाली घोषयात्रा का प्रचार है। राठ के ६००० से ७५०० फीट तक ऊंचे भागों में ग्रीष्मकाल में महाहिमालय की बुग्यालों पर और शीतकाल में निचली घाटियों में भेड़-बकरियां चराने वाली घोषयात्रा प्रचलित है।

७५०० फीट से ११५०० फीट तक ऊंचे भोटप्रदेश में ग्रीष्मकाल में महाहिमालय और हूणदेश की बुग्यालों पर तथा शीतकाल में भाबर के वनों में पशुचारण वाली घोषयात्रा के साथ दोनों ऋतुओं में अपने मैत और गुनसा को खाली करके, अपने परिवार, पशुओं और सारी सामग्री लेकर भटकनेवाला प्रव्रजन (Nomadism) भी संलग्न है।

शिवालिक श्रेणियों और लघुहिमालय के बीच के प्रदेश में मुख्यतः ऋतुकालीन प्रवास है। लघुहिमालय के पठारों और महाहिमालय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की दक्षिणी ढालों पर गाय-भैंस और भेड़-बकरियां चरानेवाली दोनों प्रकार की घोषयात्रा प्रचलित हैं। महाहिमालय और जंस्कर श्रेणी के बीच की दुर्गम घाटियों में प्रव्राजी घोषयात्रा मिलतीहै।

सलाण में, जहां यदाकदा हिमतूफानों से थोड़ा-सा हिमपात हो जाताहै, ऋतुकालीन प्रवास मिलताहै। राठ में, जहां एक मास से तीन मास तक हिमपात होताहै, भेड़-बकरियां चरानेवाली घोषयात्रा मिलतीहै। भोट में, जहां ६ मास से ६ मास तक धरती हिमाच्छादित रहतीहै, प्रव्राजी घोषयात्रा प्रचलित है।

बांज, बाबड़, खैर और साल के वन शीतकाल में तथा देवदारु के वन ग्रीष्मकाल में ऋतुकालीन प्रवास की प्रेरणा देतेहैं। बांज, खरसू और मोरू के वन 'खरक्या' बनकर घोषयात्रा की तथा बुग्यालें और पयारें 'पालसी' बनकर घोषयात्रा की प्रेरणा देतीहैं।

ऋतुकालीन-परिवर्तन होते ही उपत्यका के सारे भागों में विचित्र हलचल दिखाईदेतीहै। शीतऋतु आरम्भ होते ही भोटप्रदेश के निवासी हूणदेश से अपनी घाटियों में उतरतेहैं और अपनी सामग्री, पशु और परिवार को लेकर गुनसा में चलेजातेहैं। राठ के निवासी अपनी भेड़-बकरियों और गाय-भैंसों को ऊंची बुग्यालों और वनों से निचली घाटियों में हांक लातेहैं। सलाण के निवासी शीघ्रतापूर्वक गेहूं-जौ बोकर वनों और निर्माणकार्यों में मजदूरी कमाने दौड़पड़तेहैं।

ग्रीष्मऋतु आरम्भ होने पर भोट के निवासी भावर के वनों और गुनसा से अपनी घाटियों में होतेहुए हूणदेश तक पहुंचतेहैं। राठ के निवासी निचली घाटियों से पशुओं को हांककर ऊंची बुग्यालों और वनों में चलेजातेहैं। सलाण के निवासी देवदारु के वनों में और तीर्थयात्रा-मार्गों पर आजीविका कमाने चलपड़तेहैं। प्रचण्ड ग्रीष्म में गड्ढी तथा भावर-वासियों में भी हलचल मचजातीहै और वे भी ऊंचे डांडों पर स्थित पहाड़ी गांवों में पहुंचने का प्रयत्न करतेहैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शीतऋतु भोट, राठ और सलाण के निवासियों को अपने-अपने क्षेत्र से नीचे उतरने की और ग्रीष्मऋतु उन्हें अपने-अपने क्षेत्र में ऊंचाई की ओर चढ़ने की प्रेरणा देतीहैं। इससे उपत्यका में रहनेवाले अन्नाजी दणगूजर और ग्यगर खम्-पा भी, जो किसी क्षेत्र-विशेष से सम्बन्ध नहीं रखते ग्रीष्मकाल में ऊंचे वनों और बुग्यालों में पहुंचतेहैं और शीतकाल में भाबर के वनों और घाटियों में उतर आतेहैं।

ग्रीष्मकाल में उपत्यका के पर्वतशिखर और महानदियां जब सारे भारत के हिन्दुओं को अपने पादप्रदेश में तीर्थयात्रा के लिए खींच लातेहैं तो नेपाल के डोटियाल तक उपत्यका के तीर्थयात्रा-मार्गों पर आजीविका कमाने चलेआतेहैं।

इसी प्रकार ग्रीष्मकाल में उपत्यका की पयारों में भेड़-बकरियां चराने के लिए हूणदेश के डोक्-पा पशुचारक और दूधातोली के वनों में चौकोट के कुमाउनी अपनी गाय-भैंसें चराने चलेआतेहैं। शीतकाल में भाबर के वन कुमाउनी बंसकट्टों, डोटियाल श्रमिकों, तराई के चाई और चकरा मजूरों तथा बढ़ापुर के झोझा भारवाहकों को अपनी ओर आकर्षित करतेहैं। ग्रीष्मकाल में देवदारु के वन कांगड़ा और हिमाचलप्रदेश के कनेतों, धोगरियों और बघानियों को भी उपत्यका में खींच लातेहैं।

प्रकृति अपना रूप बदलते ही किस प्रकार किसी क्षेत्र के जीवन में एक नई हलचल उत्पन्न करके कार्यकलापों की एक नई श्रृंखला आरंभ करदेतीहै, इसका सुन्दर और रोचक उदाहरण हमें उस क्षेत्र में मिलताहै, जिसका हम अध्ययन कररहेहैं।

मनुष्य धरती का पुत्र,[१] धरती का अभिन्न अंग है।[२] धरती केवल

१- 'माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्या,' अथर्व, पृथिवी सूक्त

२- 'The dominant idea in all geographical progress is that of terrestrial unity'.--ब्लाश -- पृ० ६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपनी उपरली परत तक ही, जो कंकड़-पत्थर और मिट्टी से बनीहैं, सीमित नहीं है। वनस्पति की श्यामल अचर परत एवं प्राणियों और मानव की अगणित आकार-प्रकार वाली चलती-फिरती परत भी, उसीके स्वरूप, उसीके अभिन्न अंग हैं ।[1]

यह सारी धरती या प्रकृति, जिसे सभी ओर से वायुमण्डल घेरे हुएहै, अपनी उपरोक्त परतों सहित, वास्तविक अर्थ में 'चला' (चलायमान) और 'जगत' (गतिशील) है। धरती के साथ उसकी परतें भी घूमतीहैं। गतिशील प्रकृति अपनी पटलों को भी गतिशील, कार्यरत और परिवर्तनशील बना देतीहै।[2]

धरती मनुष्य का केवल लालन-पालन ही नहीं करती, वरन उसकी विचारधाराओं, उसके कार्यकलापों, उसके जीवननिर्वाह की पद्धतियों और उसकी तथा उसके समाज की रीतिनीतियों को भी संचालित करतीहै।[3]

उपत्यका के विभिन्न भागों के निवासियों के जीवन का अध्ययन करतेहुए हम आगे देखेंगे कि उनकी वेशभूषा, भोजन, गांवों और मकानों पर, उनकी जीवनयापन की पद्धतियों तथा स्थायी एवं अस्थायी सम्पत्तियों पर, उनके आचार-विचार, स्वभाव और मान्यताओं पर, उनके धार्मिक विश्वासों और परम्पराओं पर, उनकी पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवस्था और रीतिनीतियों पर, संक्षेप में उनके जीवन के

१- 'To Ratzel men appeared as things that covered parts of the earth's surface, as with a living carpet, just as worthy of the geographer's attention, as the carpet of vegetation or the animal population.' -- ब्रुंश, पृ० २९

२- देखिए ब्रुंश - पृ० २०   ३- मिलाइए सेम्पल – पृ० १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रत्येक पहलू पर भूगोलिक परिस्थिति की अति रोचक और अमिट छाप मिलतीहै।

परिस्थिति के अनुसार सामाजिक मान्यताओं में जो अन्तर मिलताहै, वह आचार-शास्त्र की दृष्टि में 'उचित' या 'अनुचित' हो सकताहै। किन्तु भूगोलिक अध्ययन में केवल यह जानने का प्रयत्न कियाजाताहै कि उन सामाजिक मान्यताओं की प्रेरणा किन भूगोलिक परिस्थितियों से मिलीहै।

उदाहरण के लिए हुणिया पशुचारकों में पशुओं के समान साझी पत्नियां रखने की प्रथा है। पूर्वी भोट में 'रमबंग' नामक कुमार-कुमारी गृह में सभी अविवाहिता नारियां और पुरुष मनोरंजन और प्रेमलीला करतेहैं। पश्चिमी राठ के घोषयात्री खड्वालों और खशों में द्रोपदी-बिवाह-प्रथा अर्थात् सगे भाइयों की साझी पत्नियां रखने की प्रथा है। भोट और राठ के पशुचारकों में नारियां स्वेच्छानुसार पति बदल सकतीहैं। उपत्यका में सर्वत्र विधवा भावज देवर की न्यायसंगत पत्नी समझी जातीहै। निश्चय ही इन रोचक सामाजिक मान्यताओं की प्रेरणा इन क्षेत्रों के निवासियों को अपनी विचित्र भूगोलिक परिस्थितियों से मिलीहै।

यह उपत्यका, जिसमें एक प्रतिशत धरातल भी मैदान नाम पाने का अधिकारी नहीं है, उत्तरप्रदेश के मैदानी भाग से सर्वथा भिन्न, एक अति रोचक प्रदेश है।

कोटद्वार से या ऋषिकेश से आगे, उपत्यका में एक-दो मील आगे बढ़ते ही तुरन्त यह स्पष्ट होजाताहै कि जो प्रदेश हमारे सन्मुख है, वह मैदान से सर्वथा भिन्न है।[1] उसके निवासी और उनकी रीति-नीतियां मैदानवासियों और उनकी रीतिनीतियों से भिन्न हैं।[2]

१- पंत -- पत्र -- पृ० २

२- ब्लंट -- फावंर्ड, सोशल एकोनोमी आव दि हिमालयन्स

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपत्यका की इस विशेषता के कारण अपरिचित और अनुभवहीन व्यक्ति उसे और उसके निवासियों के जीवन और उनकी समस्याओं को समझने में भूल कर बैठतेहैं।

१९३० तक कुमांऊं और गढ़वाल का शासन थोड़े-से अनुभवी अधिकारियों के हाथों में सौंपाजाताथा और वे प्रायः स्थायी रूप से अनेक वर्षों तक इन प्रदेशों पर शासन करतेथे। अपने लम्बे अनुभव के कारण वे यहां के विनम्र निवासियों की समस्याओं को भली प्रकार समझलेतेथे।[1]

वतमान समय में पर्वतीय और मैदानी क्षेत्रों में थोड़े-थोड़े समय पश्चात् बार-बार अधिकारियों की अदला-बदली के कारण वे उपत्यका वासियों को भली प्रकार समझने में सर्वथा असमर्थ रहतेहैं। स्थानीय परिस्थिति से पूर्णतः अनभिज्ञ होने के कारण वे इस पर्वतीय क्षेत्र की समस्याओं के लिए मैदानी क्षेत्र के-से समाधान ढूंढतेहैं और हित के स्थान पर अहित कर बैठतेहैं।[2]

१- स्टोवेल -- भूमिका, ii

२- 'In modern times, however, the frequent transfer of officers between hills and plains, which has been unfortunate for Kumaun, (including Garhwal) in many ways, and the increasing sophistication of the people, combined with less summary methods of adjudication, have altered matters considerably. Officers coming to Kumaun for the first time without previous knowledge of the hill districts find themselves very much at sea in the noble conditions of their work. Associa-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपत्यका की भूगोलिक परिस्थितियां उसके निवासियों को स्थायी और अस्थायी रूप से प्रवास पर बाहर जाने को विवश करतीहैं। इसलिए प्रवास पर जानेवालों को प्रायः अपने खेत, जिनसे उनका समुचित निर्वाह नहीं होपाता, अपने पड़ोसियों को सौंपने पड़तेहैं।

उपत्यका की इस विशेष समस्या को न समझने के कारण उत्तरप्रदेश की सरकार ने यहां भी मैदान के अनुकरण पर अनुपस्थित जमीदारी प्रथा समाप्त करने के लिए अधिनियम बनादियाहै जिससे उपत्यका निवासियों के निर्वाह का रहा-सहा नाममात्र का आधार भी डामाडोल होने लगाहै।

इसी प्रकार हित की भावना से किएगए अनेक सरकारी प्रयत्न इस उपत्यका की निराली परिस्थिति और समस्याओं को न समझने के कारण व्यर्थ सिद्ध होरहेहैं। अस्तु इस उपत्यका के निवासियों के जीवन और समस्याओं का अध्ययन अति आवश्यक है। उपत्यका-बासियों के जीवन में प्रवास का प्रमुख स्थान होने के कारण उपत्यका के प्रवासों के अध्ययन का महत्व और भी अधिक है।

उपत्यका में या भारत के किसी भी भाग में प्रचलित प्रव्राजी घोषयात्रा, प्रव्रजन और ऋतुकालीन प्रवासों का विस्तृत भूगोलिक अध्ययन अभी तक नहीं हुआहै। केवल भोटांतिकों और गद्दी पशुचारकों के सम्बन्ध में कुछ रोचक सूचनाएं या पुस्तकें मिलतीहैं। अस्तु इस प्रबन्ध का अधिकांश स्वतः निरीक्षण पर निर्भर है।

मैंने अपने अध्ययन क्षेत्र में सैकड़ों मील की पैदल यात्रा कीहै। भाबर से लेकर भारत-तिब्बत-सीमांत तक भ्रमण कियाहै। और विभिन्न क्षेत्रों

---

tions and analogies drawn from customs in the plains combine with ignorance of local peculiarities to lead them astray.'

-Stowell - page, ii

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के निवासियों के सम्बन्ध में स्वयं यथार्थ सूचनाएं प्राप्त करने के लिए मैंने धौलाधार की ढालों पर, तथा कांगड़ा, होशियारपुर, हिमाचल प्रदेश से लेकर कौसानी, गरुड़, रानीखेत और अलमोड़ा तक मध्य हिमालय में कई बार दूर-दूर तक पर्यटन कियाहै ।

मैं तोलछा, मारछा, जोहारी और जाड़ भोटांतिकों के प्रत्येक गांव में पहुंचाहूं । और उनके 'मैंत' और 'गुनसा' में मैंने उनके कष्टपूर्ण किन्तु अदम्य उत्साह और साहस से भरी जीवनचर्या का अवलोकन कियाहै ।

डोक्-पा - पशुचारकों के तम्बुओं में पहुंचकर, मैंने उनके भोले जीवन का रोचक दृश्य देखाहै ।

मैंने बुग्यालों और पयारों पर अजपाल गद्दी और खड्वालों की रोचक लीला देखीहै । दूधातोली और बड़कोट के वनों के खरकों में खरकवालों के नृत्य-गीतों का आनन्द लियाहै ।

भाबर के वनों में और बुग्यालों में बने वणगूजरों के 'टपरुओं' में मैंने उनके सीधे-सादे जीवन की झांकियां प्राप्त कीहैं । डोलवाओं के साथ उनके तम्बुओं में मैंने अनेक स्मरणीय दिन बिताएहैं ।

पंडों और फिक्वालों के गांवों में, धोगरी और कनैतों की झोंपड़ियों और देवदारु-वनों के 'मकानों' में, बंसकट्टा और डोटियालों के 'झालाओं' में तथा चकरा और चाई के 'छवाड़ों' और 'सोखघरों' में मैंने मानव-रूप धारी प्रकृति की रोचक लीलाओं को देखाहै ।

इस छोटे - से जीवन में, अपनी अनेक समस्याओं और सीमित साधनों की चिन्ता न करके मैंने दूर-दूर तक नगर और गांवों में मरुभूमि और उपजाऊ मैदानों में, ऊंची दुर्गम पर्वतीय ढालों पर और सुन्दर सरल घाटियों में, बुग्यालों और वनों में अनेक बार भ्रमण कियाहै ।

भोटांतिक घाटियों में मैंने रस्सी और तार के, पैर रखते ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

झूलने वाले झूलों से, हिमाचलप्रदेश में नदी के आर-पार रखीहुई देवदारु की शाखाओं के सहारे बन्दर-सा खिसककर, अथवा बघानियों के खालड़ू पर छाती रखकर या जल पर जमे हिम पर चलकर कई महानदियों को पार कियाहै। भेड़-बकरी के समान चतुष्पाद बनकर मैं संकरे मार्गों पर चढ़-उतर कर हिमानियों और पयारों में पहुंचाहूं। ऊंची जोतों के हिमतूफान में रिंगाल की चटाई के नीचे दुबक कर मैंने जोतों पर कुछ रोमांचकारी भीषण रात्रियां बिताईहैं।

अपना बिस्तरा और आवश्यक सामग्री अपनी पीठ पर लादेहुए, दुर्गम पहाड़ी मार्गों पर अनेक नदी-नालों, सीधे उतारों और सीधी खड़ी चढ़ाइयों को पार करके, दिन भर भूखे-प्यासे १५-२० मील घसीटने के पश्चात्, किसी रमणीक पठार या बुग्याल में पहुंचते ही थके-मांदे घुम्मक्कड़ के शरीर में अनर्वचनीय आनन्द की जो बिजली दौड़पड़तीहै, वह केवल अनुभव की वस्तु है, शब्दों में ऐसी शक्ति नहीं जो उसे व्यक्त करसके।

अपने भ्रमण में मुझे अगणित कष्ट झेलनेपड़े, और कई बार प्राण-संकट भी उत्पन्न हुए। फिर भी मुझे जो आनन्द पशुचारकों और वन-प्रदेश में मजूरी करनेवालों के संसर्ग में प्राप्त हुआहै, उसे मैं जीवन भर भुला नहीं सकता।

यद्यपि इस उपत्यका के निवासी आर्थिक दृष्टि से निर्धन और तथाकथित जीवनस्तर-मापदण्ड की दृष्टि से पिछड़े प्रतीत होतेहैं किन्तु उनमें आज भी भूगोलिक परिस्थिति-जन्य नैसर्गिक जीवन की कुछ झांकी शेष है, जिसका अध्ययन करने का मुझे अवसर मिलाहै।

मैं उन सहस्रों व्यक्तियों का अत्यन्त कृतज्ञ हूं, जिनसे मुझे अपने भ्रमण और तथ्य-संकलन में सहायता मिलीहै। यद्यपि मैं उनमें से अधिकांश के नाम नहीं जानता, किन्तु उनकी स्मृति को भुला नहीं सकता।

अलकनन्दा-उपत्यका के सम्बन्ध में संस्कृत और पाली साहित्य में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यत्र तत्र कुछ बिखरीहुई सूचनाएं मिलतीहैं। अंगरेजी में ट्रेल, गार्डनर, बैटन, बेकेट, एटकिनसन, पौ, शेरिंग, क्रुक, इवेटसन, स्टोवेल, ओ'मैस्टन, वेबर, ओडेन, ग्रिशवाश, मिडिल मिस, ग्रियर्सन, पिलग्रिम, मौन्टेनियर, कोरबेट, फूरर आदि के ग्रन्थों और लेखों में तथा मध्यहिमालय के शिखरों पर आरोहण करनेवाले शिप्टन आदि के यात्रा--वर्णनों में उपत्यका के भूगोल, भूतत्व, इतिहास, सामाजिक और आर्थिक जीवन, भाषा आदि के सम्बन्ध में अनेक रोचक और महत्वपूर्ण सूचनाएं संग्रहीत हैं।

पौड़ी, अलमोड़ा, नैनीताल और देहरादून के जिलाधीशों के कार्यालयों में हस्तलिखित Pre-Mutiny English Record से अनेक रोचक सूचनाएं प्राप्त होतीहैं। दुर्भाग्य से इस रिकार्ड का कुछ महत्वपूर्ण अंश असावधानी से नष्ट करदियागयाहै, और शेष दीमकों का भोजन बनताजारहाहै। इस रिकार्ड का सम्पादन करके उसे तुरन्त प्रकाशित करना आवश्यक है।

भारतीय लेखकों में से सर्वश्री पातेराम, हरिशरण रतूड़ी, पन्नालाल, सप्रू, रा०ब० तारादत्त गैरोला, डा० जोशी, डा० पन्त, महीधर बड़थ्वाल, भक्तदर्शन, परिपूर्णानन्द पैन्यूली, डा० गोविन्द 'चातक', डा० गुणानन्द जुयाल, स्वामी प्रणवानन्द, राहुल सांकृत्यायन, श्यामसिंह नेगी, उमरावसिंह रावत, सेठ गोविन्ददास, जगमोहनसिंह नेगी अदि विद्वानों के ग्रन्थों और लेखों में उपत्यका के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण सामग्री मिलतीहै।

मैंने उपत्यका के सम्बन्ध में उपलब्ध समस्त प्रकाशित साहित्य का तथा अधिकांश महत्वपूर्ण अप्रकाशित रिकार्ड का अध्ययन कियाहै। हिमालय के अन्य भागों के सम्बन्ध में भी, जहां तक सम्भव होसकाहै, मैंने उपलब्ध ग्रंथों की छानबीन करने का प्रयत्न कियाहै।

मूल रूप में इस शोधप्रबंध में उपत्यका के इतिहास, भूगोल सामाजिक और आर्थिक जीवन के सम्बन्ध में विस्तृत सूचनाएं थीं,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिनसे इसका आकार बहुत बढ़गयाथा। अस्तु विद्वान परीक्षकों के आदेशानुसार इस प्रबन्ध को दूसरी बार पर्याप्त संक्षिप्त करनापड़ा।

मैं उन सभी लेखकों का अत्यन्त कृतज्ञ हूं, जिनकी पुस्तकों से मुझे अपने अध्ययन में सहायता मिलीहै। मैं अपने विद्वान परीक्षकों का विशेष रूप से आभारी हूं, जिन्होंने इस प्रबन्ध को परिष्कृत करने के लिए मुझे बहुमूल्य सुझाव दिएहैं। उन्हीं के सुझाव के अनुसार इस प्रबन्ध से 'उपत्यका का इतिहास' शीर्षक भाग हटा दियागयाहै।

इस भाग्यहीन देश में ऐसे भाग्यवान व्यक्तियों की संख्या अतिअल्प है, जिन्हें उचित समय पर समुचित पथप्रदर्शन मिलपाताहै। अधिकांश व्यक्ति, जिनके हृदय में अध्ययन करने की सच्ची लगन होतीहै, वर्षों तक अन्धकार में टटोलते हुए भटकतेरहतेहैं। और अन्त में बहुत-सा धन, बहुमूल्य श्रम, दुर्लभ स्वास्थ्य और जीवन की अनमोल घड़ियां नष्ट कर देने के पश्चात् हताश होबैठतेहैं।

पिछले ५-६ वर्षों में, जिन दिनों मैं इस शोधकार्य में लगाथा, डी० ए० वी० इण्टर कालेज दोगडा में अनेक उलट-फेर हुए। मेरे लिए अनेक जटिल समस्याएं खड़ीहोतीगईं, और इस कार्य में अनेक व्यवधान उत्पन्न होतेगए।

कई वर्षों के परिश्रम के पश्चात् आज इस शोधप्रबन्ध को पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए मुझे कुछ सान्त्वना मिलरहीहै। यदि मेरे जीवन में, निरन्तर एक के पश्चात दूसरी उलझनें न खड़ीहोतीं तो सम्भव है, मैं अब तक कुछ अधिक कार्य करचुकाहोता।

मैं अपने पाठकों से प्रार्थना करताहूं कि मेरी त्रुटियों के लिए मुझे क्षमा करें तथा संशोधन के लिए सुझाव भेजकर अनुगृहीत करें।

—शिवप्रसाद डबराल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलकनन्दा-उपत्यका में प्रवास

भाग १--अलकनन्दा-उपत्यका—

उपत्यका (उत्तरकाशी, टिहरी, चमोली और गढ़वाल) के संक्षिप्त भूगोल, पिछले और वर्तमान जीवन, एवं भाबर और पहाड़ के कृषकों की जीवनचर्या और समस्याओं का अध्ययन ।

भाग २--उत्तराखंड के भोटांतिक—

तोलछा, मारछा, जाड और जोहारी भोटांतिकों के जीवन और समस्याओं का अध्ययन ।

भाग ३--राठ प्रदेश के पशुचारक—

खड्वाल, गद्दी, खश और कुमाउनी पशुचारकों की जीवन-चर्या और समस्याओं का अध्ययन ।

भाग ४--प्रव्राजी बणगूजर और ग्यगर खम्-पा—

इन जातियों की जीवनचर्या और समस्याओं का अध्ययन ।

भाग ५--अलकनन्दा उपत्यका में ऋतुकालीन प्रवास—

आमोदी-प्रमोदी जातियों एवं जन-साधारण का प्रवास पर जाकर आजीविका कमाने और प्रवास - जन्य समस्याओं का अध्ययन ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

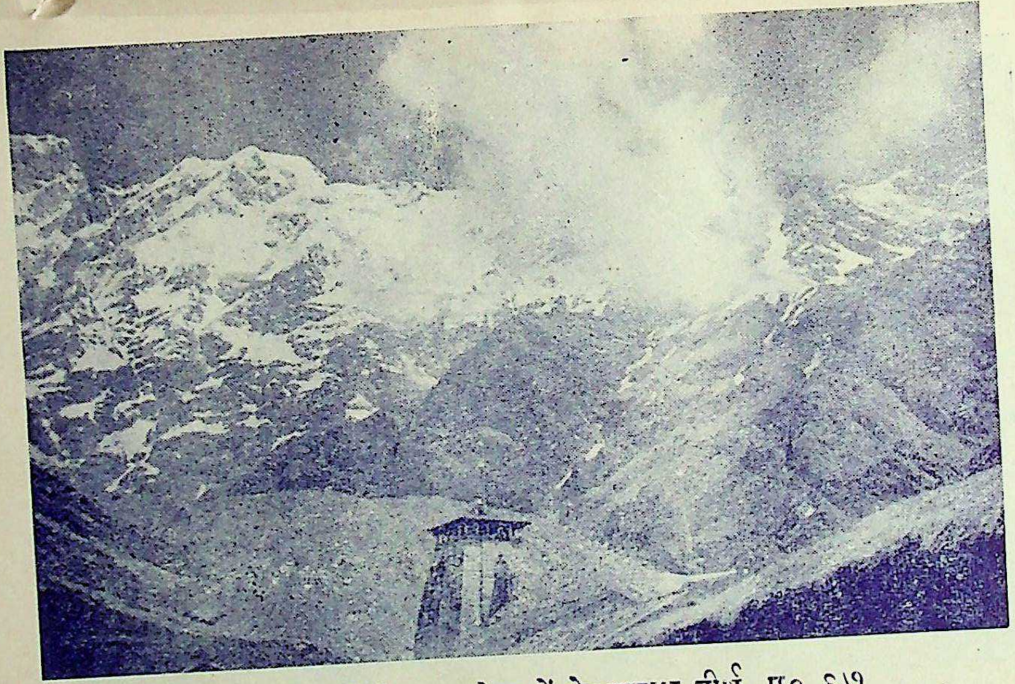

१—महाशिखरों के पादप्रदेश में केदारनाथ तीर्थ, पृ० ६७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

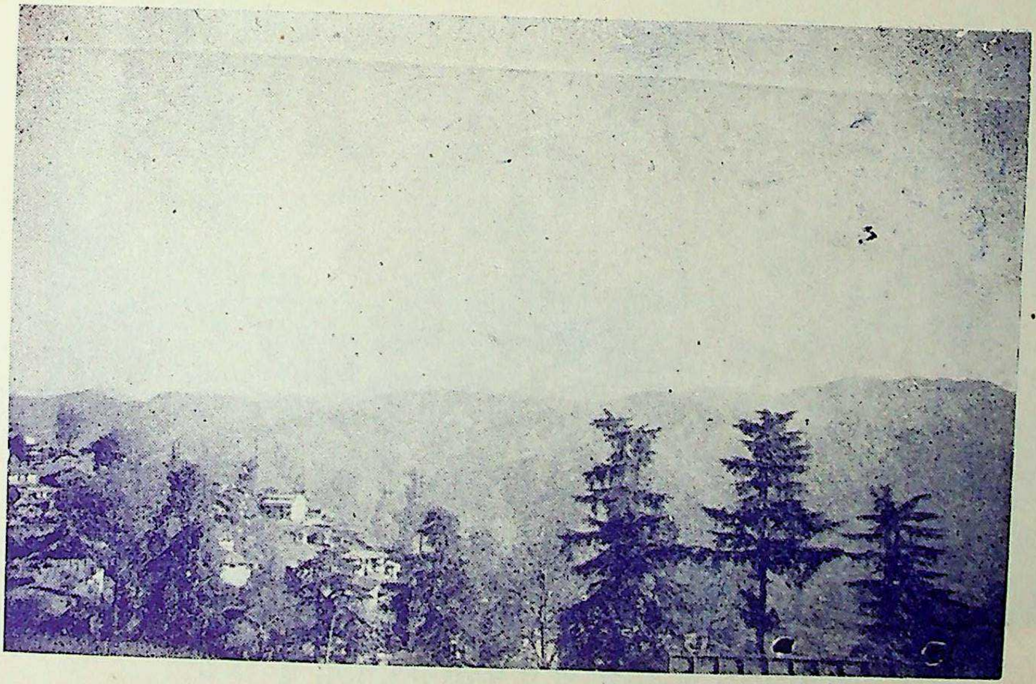

२—देवदारु की छाया में पहाड़-प्रदेश का गांव, पृ० १५०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

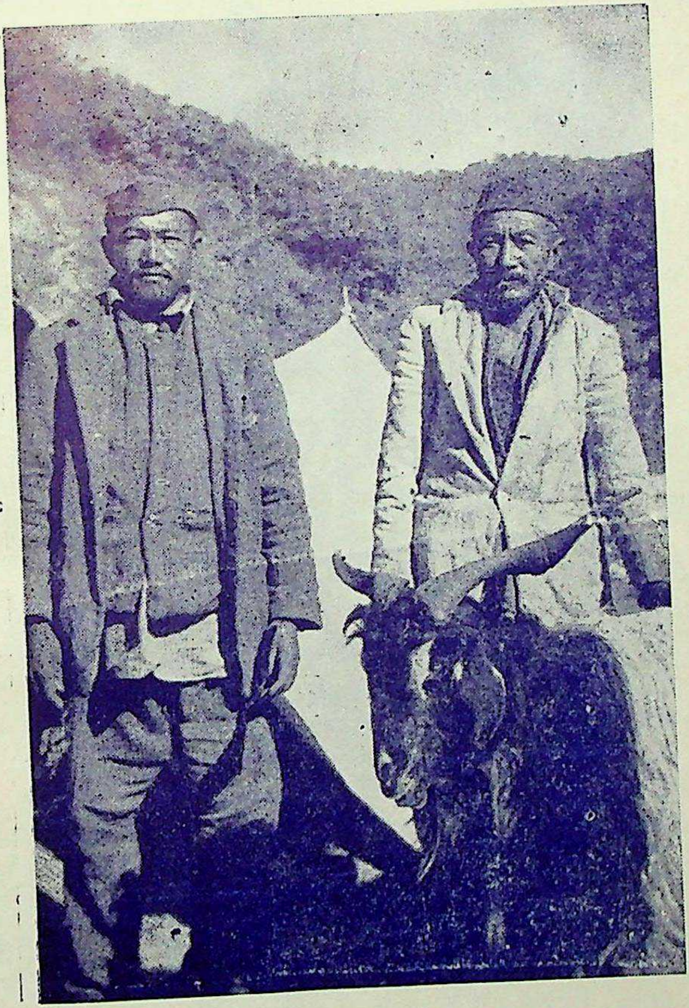

३—भोटांतिक और भारवाही बकरा, पृ० ४१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

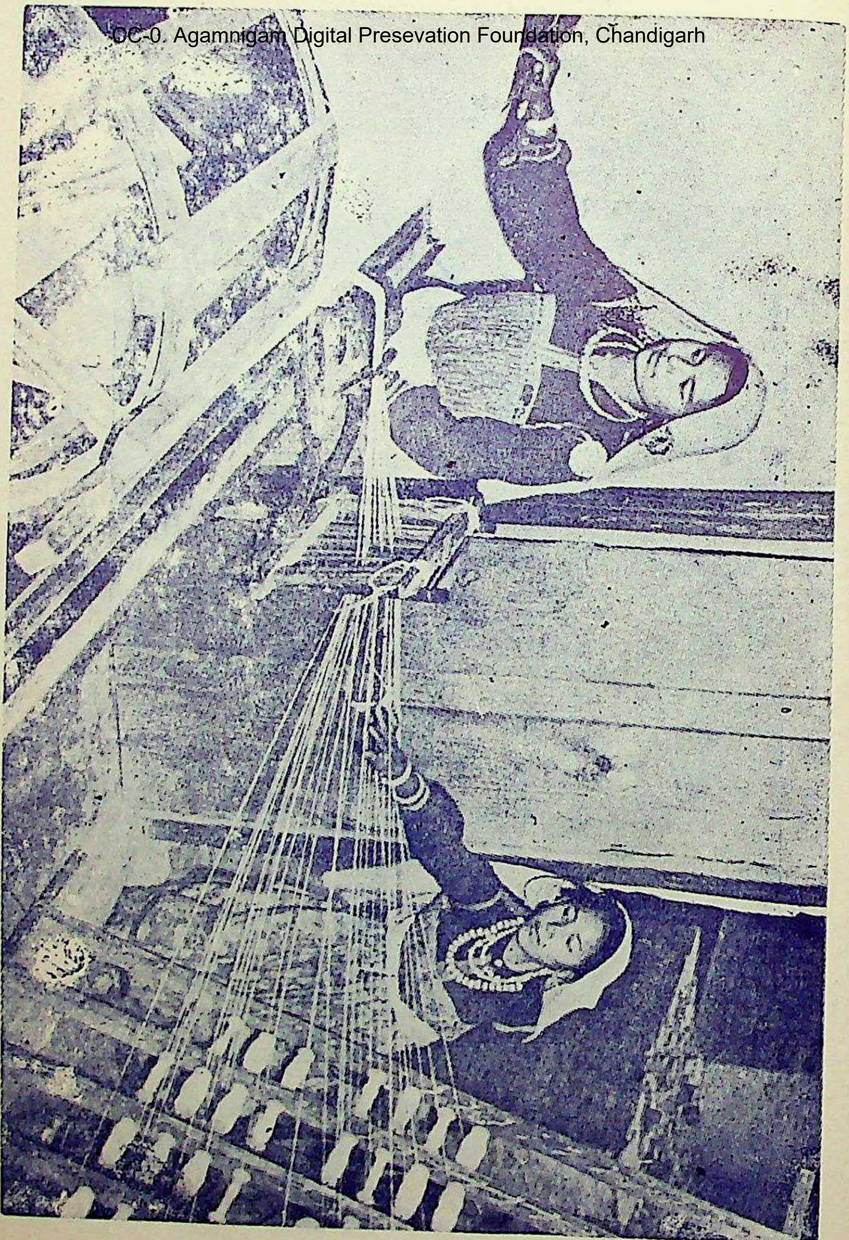

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

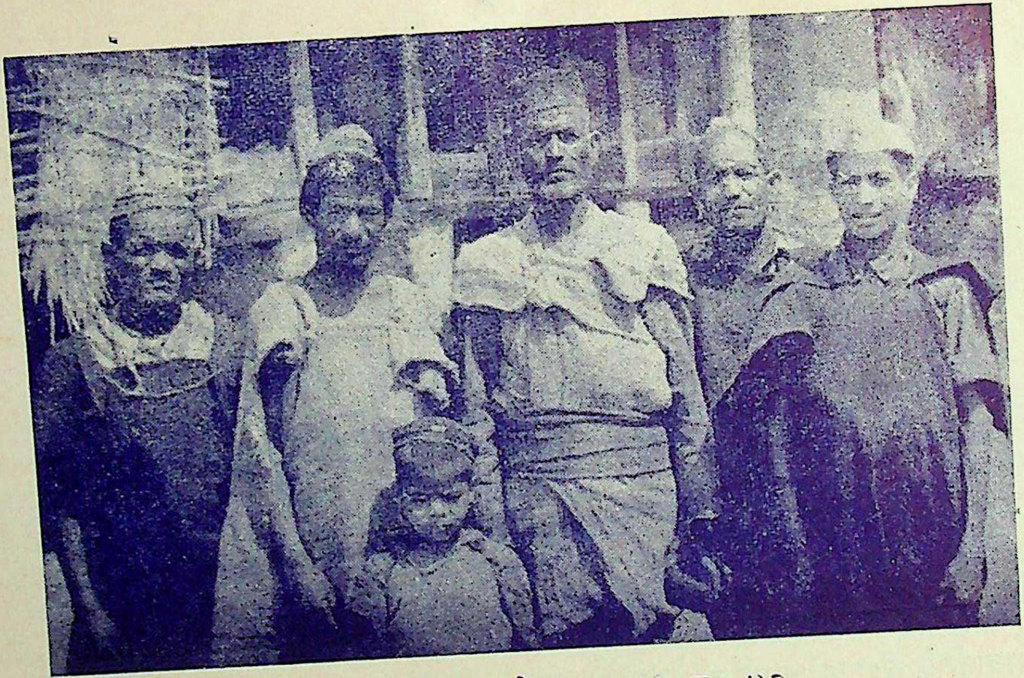

५—महाहिमालय के पशुचारक, पृ० ४२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

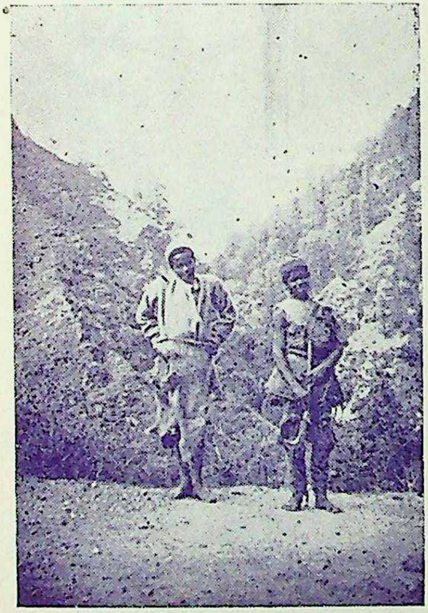

६—यमुनाघाटी के खश पशुचारक पृ० ४३

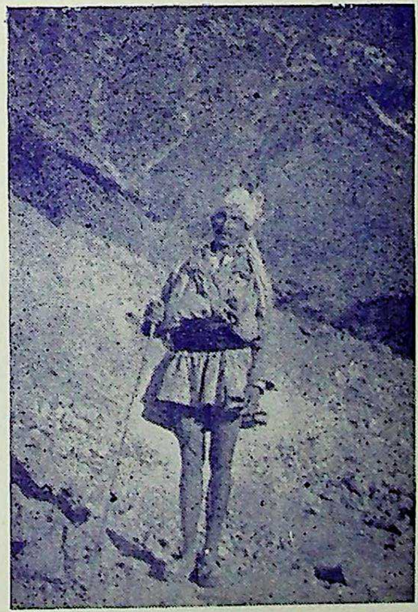

७—गद्दी पशुचारक, पृ० ४७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

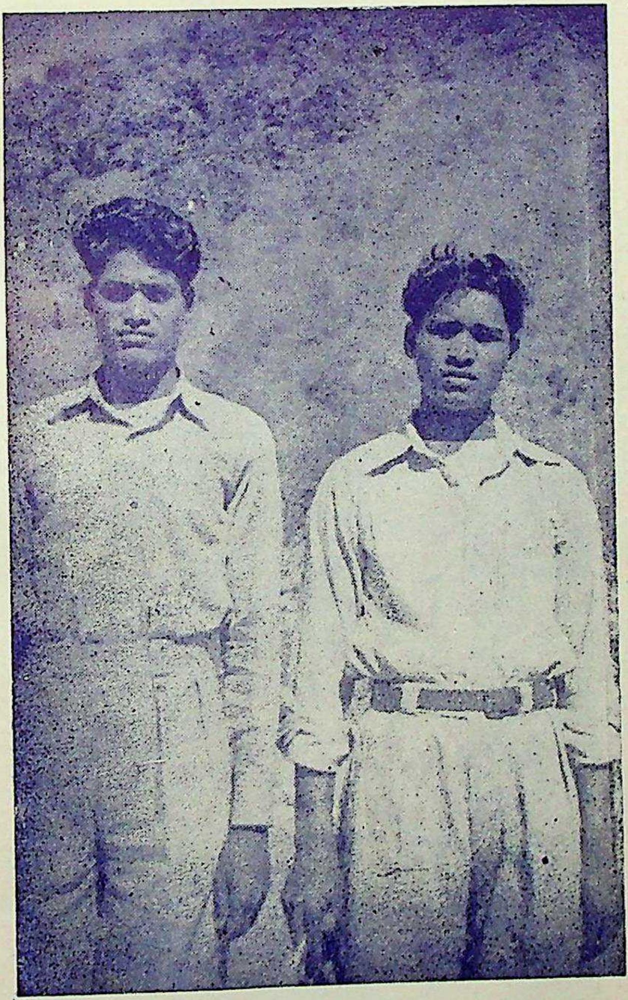

७—शिल्पकार, पृ० १८४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

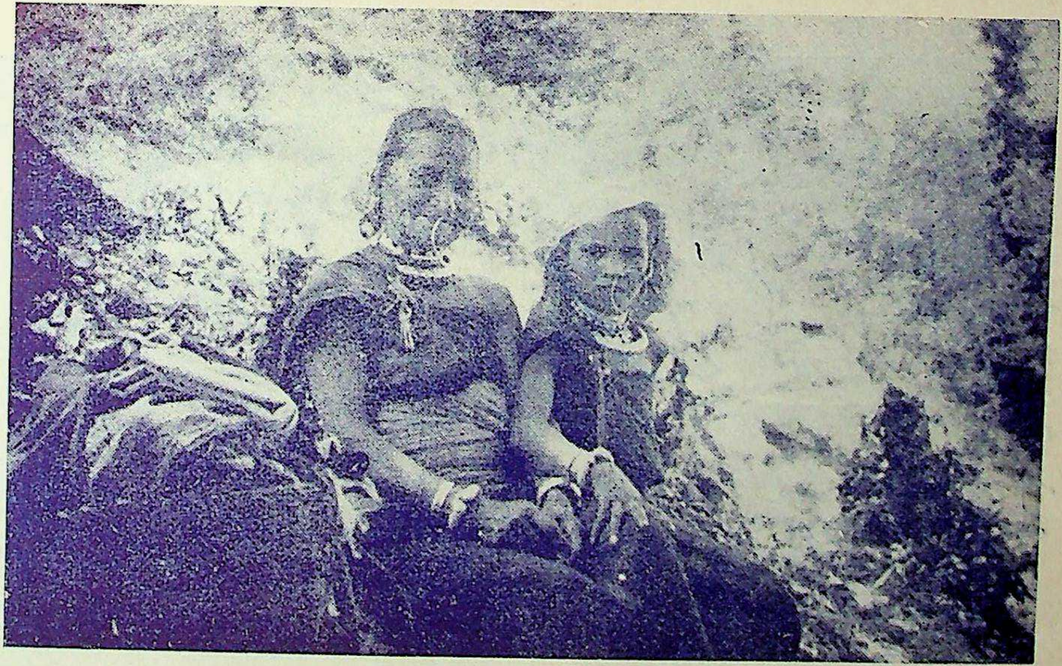

८—नारी, आवश्यक सम्पत्ति और उपयोगी सेवक, पृ० १७६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

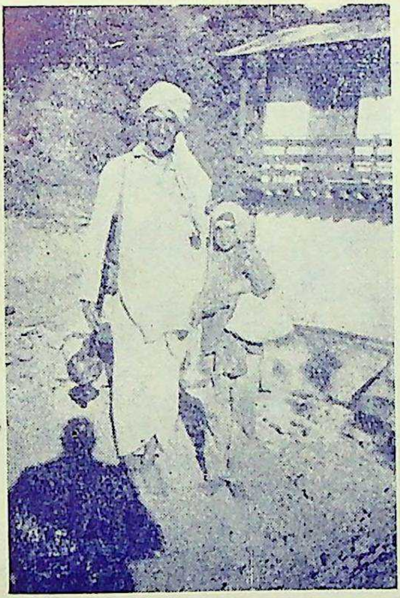

१०—तूफ़ान रोकने वाले पृ०९९

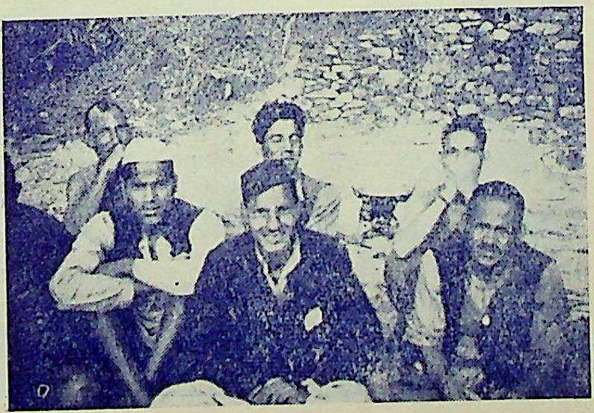

११--नाग देवता के नाम पर भिक्षा मांगने वाले, पृ० १०२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

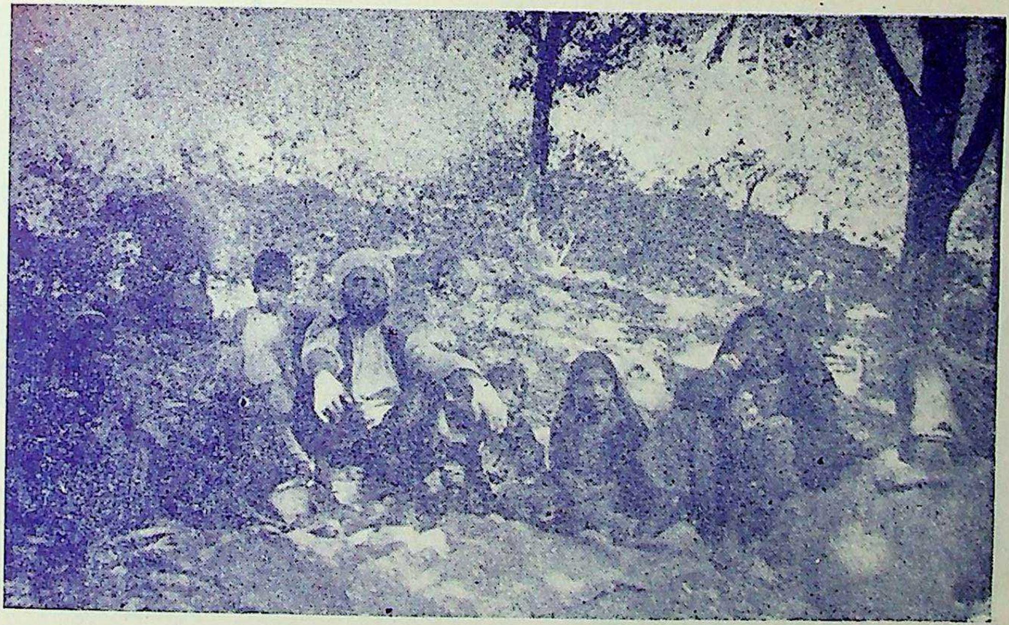

१२—प्रवाजी वण गूजर, पृ० ४५

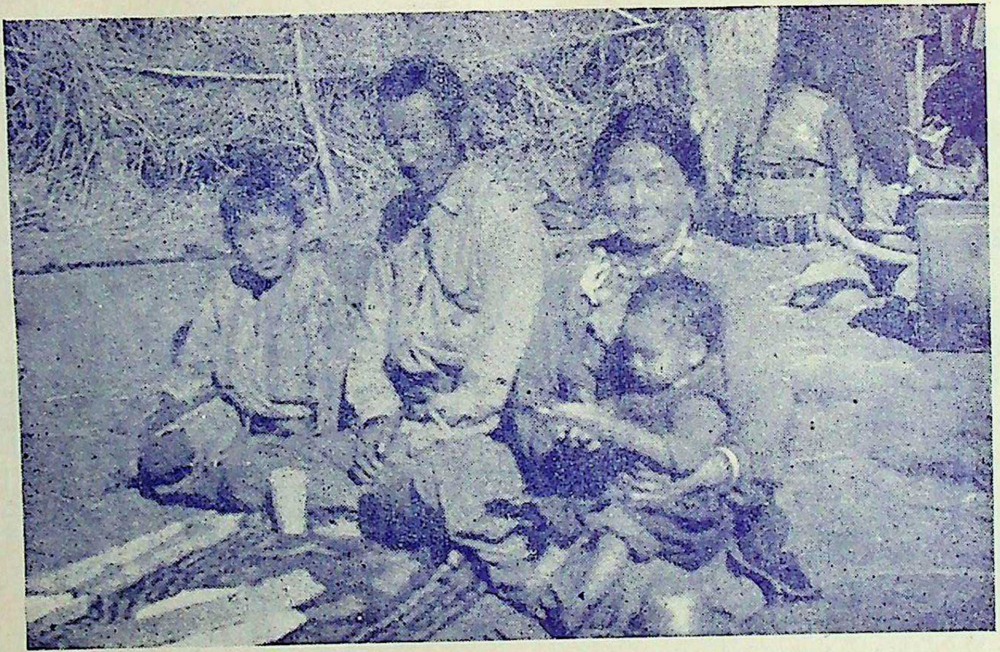

१३—प्रवाजी डोलखा (ग्यगर-खम्-पा), ४५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

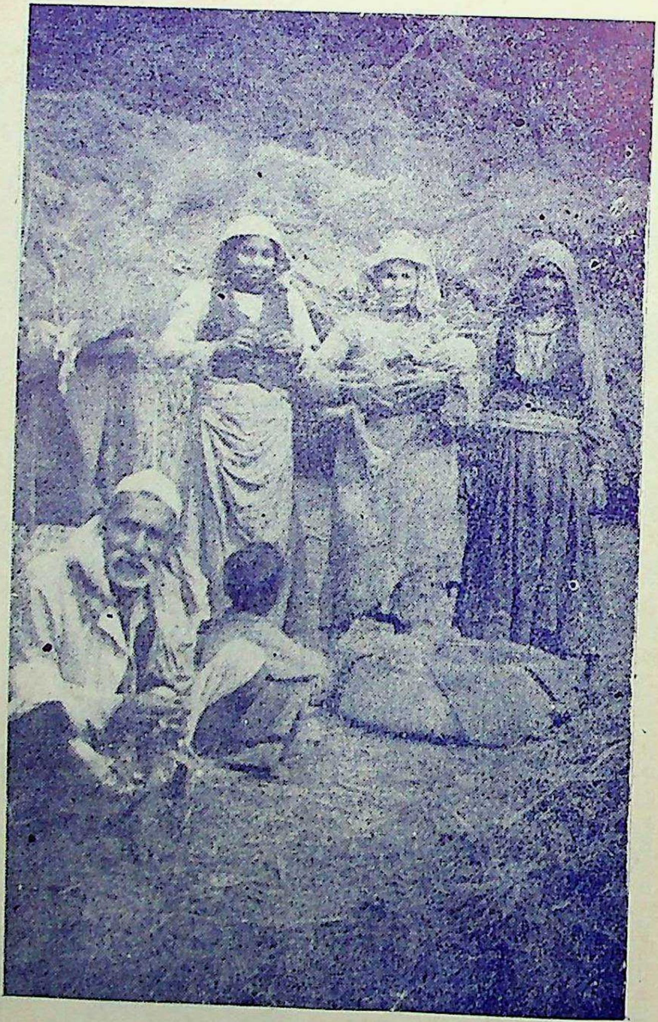

१४—कुमाउनी श्रमिक, पृ० ५१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलकनन्दा - उपत्यका

१—उपत्यका - परिचय

हरिद्वार में जो महानदी गंगाजी के नाम से प्रसिद्ध है, देवप्रयाग में उसकी दो शाखाओं, अलकनन्दा और भगीरथी का संगम है। पूर्वी धारा अलकनन्दा की पनढाल में चमोली और गढ़वाल जिले, तथा पश्चिमी धारा भागीरथी की पनढाल में उत्तरकाशी और टिहरी जिले बसेहैं।

जल की अधिकता, अधिक लम्बाई, तथा भारत-तिब्बत-जल-विभाजक प्रदेश में उद्‌गम होने के कारण[1] अलकनन्दा ही मुख्य धारा है[2], और भागीरथी उसकी सहायक मात्र है[3]। इसलिए अलकनन्दा-उपत्यका के अन्तर्गत उपरोक्त चारों जिले आतेहैं। इन जिलों का अति अल्प भाग जो रामगंगा और यमुना की उपत्यकाओं में हैं, वह भी प्राकृतिक दृष्टि से अलकनन्दा-उपत्यका से सर्वथा अभिन्न है।

पौराणिक काल में यह सारी उपत्यका 'केदारखण्ड' कहलातीथी[4], और जुलाई, १८१५ से पूर्व गढ़वाल-राज्य के अन्तर्गत थी। इस सारे क्षेत्र के निवासी गढ़वाली बोली का प्रयोग करतेहैं और 'गढ़वाली' कहलातेहैं। भाषा, रक्त और संस्कृति की दृष्टि से भी उपत्यका अविभाज्य है।[5]

१-स्वेन हेडिन--जि० ३, पृ० ३०१-३०२

२-पातेराम--पृ० २४ ३-पातेराम--ट्रेल के लेख का उद्धरण, पृ० २१

४-केदारखंड--४०।२६; डबराल--पृ० ६५-६६ ५-देखिए परिच्छेद २

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपत्यका के पूर्व में पिथौरागढ़, अलमोड़ा और नैनीताल, दक्षिण में बिजनौर, पश्चिम में देहरादून तथा चांगसिल पर्वतश्रेणी के पार हिमाचलप्रदेश है। उत्तर में पश्चिमी भाग की उत्तरी सीमा पर ७९° देशान्तर तक हिमाचलप्रदेश तथा शेष सारी उत्तरी सीमा पर हिमालय के पार हूणदेश (तिब्बत में सतलुज की उपत्यका) है। गढ़वाल और नैनीताल तथा गढ़वाल और बिजनौर की मध्यवर्ती सीमा पर घने वन हैं, जिनमें से अब कुछ कटनेलगेहैं। और अन्यत्र सारी सीमा पर दुर्लंघ्य पर्वतमालाएं खड़ीहैं।

चार जिलों में फैली इस उपत्यका का विस्तार २९° २६' उत्तरी अक्षांश से ३१° २८' तक, तथा ७७° ४९' पूर्वी देशान्तर से ८०° ६' तक है। इसकी अधिक से अधिक लम्बाई चांगसिल से नन्दाघुंघटी तक तक १४० मील तथा अधिक से अधिक चौड़ाई दुसौन्धू से आगे भारत तिब्बत-सीमान्त से रामगंगा के दक्षिण में गढ़वाल की धुर दक्षिण-पूर्वी नोक तक लगभग इतनी ही है।

उपत्यका का क्षेत्रफल १०१५१ वर्गमील आंका गयाहै। [१-२] ७९ प्रतिशत से अधिक धरातल महोच्च पर्वतमालाओं, हिमानियों और वनों से घिराहोने के कारण कृषि के लिए अप्राप्य है। चमोली तथा गढ़वाल जिलों में केवल २३.९ प्रतिशत क्षेत्रफल पर और उत्तरकाशी तथा टिहरी जिलों में केवल ३.३ प्रतिशत क्षेत्रफल पर खेती होतीहै। [३-४] सारी उपत्यका में कृषि के लिए केवल १४.७ प्रतिशत क्षेत्रफल प्राप्य है।

१-प्रसाद--टिहरी, भू०, पृ० १
२-प्रसाद- गढ़वाल, भू०, पृ० १
३-प्रसाद--टिहरी, भू०, पृ० १
४-प्रसाद--गढ़वाल, भू०, पृ० १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवरण	एकड़	प्रतिशत
कृषि-भूमि	९५५०८०	१४.७
कृषियोग्य बंजर	३७७८४१	५.८
परती	३४९३३	.५
वन	३८३०६९३	५९.१
अप्राप्य	१२७७९६०	१९.९
योग	६४७६२०७	१००.०

धुर दक्षिण में २८ मील लम्बी और प्रायः १ मील चौड़ी मैदानी पट्टी को छोड़कर[१] सारी उपत्यका घाटियों और पर्वतश्रेणियों के जाल-जंजाल से घिरीहै। दक्षिण में उपत्यका का धरातल लगभग १००० फीट से ऊंचा होताहुआ उत्तर-पूर्व में २५९९० फीट तक ऊंचा होगयाहै।

भाबर से लेकर भारत-तिब्बत-सीमान्त तक फैली होने के कारण सारी उपत्यका हिमालय-प्रदेश के अन्तर्गत है और उसमें हिमालय की तीन समानान्तर श्रृंखलाओं में से शिवालिक और महाहिमालय अपने भव्य रूप में तथा मध्यवर्ती लघुहिमालय श्रृंखला बिखरी श्रेणियों के रूप में मिलतीहैं[२]।

महाहिमालय की मुख्य श्रेणी के पार, भारत-तिब्बत-सीमान्त पर

१-इवटसन--भाबर, पृ० १ २-कृष्णन्--पृ० १०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्चिम से पूर्व तक जंस्कर श्रृंखला फैलीहै जिसकी औसत ऊंचाई १८ सहस्र फीट[1] से अधिक है।

इस श्रृंखला में अनेक नदियों के उद्गम होने के अतिरिक्त प्रसिद्ध कामेत शिखर तथा अनेक गिरिद्वार हैं।[2] इनमें जैलूखगा[3] (१७४९० फीट), माणा[4] (१८४०२ फीट), नीती[5] (१६६२० फीट), चोरहोती (१६३८० फीट), दमजन (१९५२० फीट), शलशल (१६२०० फीट), कुंगरी-बिंगरी (१८००० फीट) तथा दर्मा (१८००० फीट) मुख्य[6] हैं।

ये घाटे अति प्राचीनकाल से ही भारत-तिब्बत के बीच मनुष्यों के आवागमन, व्यापार, तीर्थयात्रा और सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रहेहैं[7]। इस श्रृंखला के अधिकांश शिखर उपत्यका के अन्य भागों से नहीं दिखाईदेते।

वे महाशिखर, जिनके लिए अलकनन्दा-उपत्यका इतनी अधिक प्रसिद्ध है, जंस्कर श्रृंखला के दक्षिण में महाहिमालय की मुख्य श्रेणी में हैं। धौलीगंगा, विष्णुगंगा और जाड़गंगा ने, महाहिमालय श्रृंखला में अपने अति गहरे गर्त काटकर उसे चार भागों या शिखरपुंजों में बांटदियाहै[8]।

पूर्व की ओर चमोली और पिथौरागढ़ के मध्य में नन्दादेवी शिखरपुंज[9] है, जिसमें भारतीय गणराज्य में सर्वोच्च और सबसे अधिक सुन्दर[10] नन्दादेवी शिखर (२५६६० फीट) के अतिरिक्त नन्दाकोट,

---

१ कृष्णन्--पृ० १०
२-कृष्णन्--पृ० १०
३-वर्णन, रतूड़ी--पृ० १०५
४-वर्णन, रतूड़ी--पृ० १०१
५-वर्णन, रतूड़ी--पृ० १०४
६-कृष्णन्--पृ० १०४
७-महाभारत-शल्य, ४३।८४
८-स्थिति तथा ऊंचाई, एटकिनसन-जि० १, पृ० १७८
९-वर्णन, वेबर--पृ० ५७
१०-वर्णन, शिप्टन--पृ० १६३-१६४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नन्दाघु घटी, नन्दाकिनी, त्रिशूल और द्रोणागिरि शिखर मुख्य हैं।[1]

धौलीगंगा और विष्णुगंगा के बीच गन्धमादन शिखरपुंज है, जिसमें सतोपंथ, कुर्नालिंग, चौरवंभा, नरनारायण, नीलकंठ, हाथीपर्वत और गौरीपर्वत मुख्य हैं। नारायण शिखर के पादप्रदेश में विष्णुगंगा के तट पर प्रसिद्ध बदरीनाथ तीर्थ है।[2]

केदारहिमाल के मुख्य शिखर भारतखंड, खरचाखंड और स्वर्गारोहिणी हैं। केदारहिमाल में पश्चिम की ओर देवघाट, शंकराचार्य और गंगोत्तरी शिखर हैं[3]। भारतखड शिखर के पादप्रदेश में मन्दाकिनी के तट पर प्रसिद्ध केदारनाथ तीर्थ और गंगोत्तरी शिखर के पादप्रदेश में भागीरथी के तीर पर प्रसिद्ध गंगोत्तरी तीर्थ है।

भागीरथी और यमुना की पनढालों के बीच बन्दरपूंछ शिखरपुंज है, जिसमें श्रीकंठ, बन्दरपूंछ और यमुनोत्तरीकांठा मुख्य शिखर हैं[4]। यमुनोत्तरीकांठा के पादप्रदेश में प्रसिद्ध यमुनोत्तरी तीर्थ है।

महाहिमालय की श्रेणियों पर शाश्वत हिमरेखा १६-१७ सहस्र फीट की ऊंचाई पर और कहीं-कहीं ग्रीष्मकाल में १८ सहस्र फीट की ऊंचाई पर मिलतीहै। शिखरों पर और उनकी बगल की घाटियों में सैंकड़ों फीट मोटा और मीलों तक फैलाहुआ अपार हिम छायाहै, जिसमें से कुछ खिसककर इस उपत्यका में ११-१२ सहस्र फीट की ऊंचाई वाले स्थानों तक उतर आताहै। केदारनाथ-बदरीनाथ जानेवाले यात्रियों को खिसककर आईहुई हिमानियों को देखने का अवसर मिलताहै।

उपत्यका की मुख्य हिमानियां माणा, कोसा, रैकाना, गंगोत्तरी, नन्दादेवी, बामिनी और केदारनाथ हैं[5], जो पांच मील से लेकर १६

१-वर्णन, शेरिंग--पृ० ३६७ २-वर्णन, ओकले--पृ० १४३
३-वर्णन, पातेराम--पृ० १५४-५६ ४-वर्णन, डबराल--पृ० २४५ छ
५-वर्णन, पातेराम--पृ० २०-२२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मील तक लम्बी हैं[1], और ध्रुव प्रदेशीय हिमभण्डारों से प्रतिस्पर्धा करतीहैं।[2] हिमानियों के गौमुख (स्नौट) से निकली जल-धाराए अपने साथ मोरेंन, चट्टानों के टुकड़े, कूड़ा-कबाड़ और वनस्पति बहा लेजातीहैं तथा नदियों का जलभंडार बढ़ातीहैं।

महाहिमालय की शृंखला पर शाश्वत हिमरेखा के नीचे अति सुन्दर 'पयारें' फैली हैं और उनके नीचे 'बुग्यालें'। जिनकी छोटी छोटी पौष्टिक 'बुग्गी' घास पर अगणित पशु चरतेहैं। इनसे नीचे १०-११ सहस्र फीट की ऊंचाई तक भोजपत्र, देवदारु, रिंगाल, रांसल, ब्लूपाइन, खर्सू, बांज, मोड़ू आदि के अति सुन्दर और विस्तृत वन हैं।

अनेक नदियों का उद्‌गम, हिमरूप में जलसंचय का प्राकृतिक भंडार तथा अत्यन्त उपयोगी घासों और वनों से ढकेहोने के अतिरिक्त महाहिमालय शृंखला ने इस उपत्यका के तथा सारे भारत के निवासियों पर ऐतिहासिक,[3] आर्थिक एवं सांस्कृतिक[4] दृष्टि से अत्यन्त गहरे और व्यापक प्रभाव डालेहैं।

महाहिमालय के दक्षिण में लघुहिमालय शृंखला की यद्यपि पंजाब और नैपाल में समानान्तर श्रेणियां हैं,[5] किन्तु इस उपत्यका में यह शृंखला ऊंचे पठार के रूप में मिलतीहै, जिसमें ६ सहस्र से १० सहस्र फीट तक ऊंची अनेक बिखरीहुई श्रेणियां हैं। इनमें दूधातोली, ग्वालदम धनपुर, अमेली, बिनसर - राणीगढ़, खतली, उतांईं, दीपा का डांडा, चन्द्रवदनी घंडियाल, सुरकंडा, मदराज, हटकुणी, नागटिब्बा के डांडे मुख्य हैं। अलकनन्दा, भागीरथी और पिंडार ने महाहिमालय और लघुहिमालय के बीच अनेक गहरे गर्त काटडालेहैं।

१-कृष्णन--पृ० १६ २-वाडिया--पृ० १४-१५

३-पाणिकर--अध्याय ३

४-डबराल--पृ० १-१३, तथा अग्रवाल-भारत की मौलिक एकता--पृ० ८२-८३ ५-कृष्णन्--पृ० ११

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लघुहिमालय की श्रेणियां खर्सू, मोड्रू, बांज, रांसंल, बुरांस और चीड़ के अति सुन्दर वनों में ढकीहैं, जिनमें ग्रीष्मकाल में सहस्रों गाय-बैल और भैंसें चरतीहैं। लघुहिमालय की श्रेणियों पर शीतकाल में ५-६ सहस्र फीट की ऊंचाई तक थोड़ा-सा हिमपात होताहै।

लघु हिमालय के पठारों के दक्षिण में शिवालिक शृंखला की श्रेणियां फैली हैं, जिनमें अमोला, दिउली, महाबगढ़, चंडाखाल आदि के डांडे मुख्य हैं। इनकी औसत ऊंचाई ४-५ सहस्र फीट तक पहुंचती है। नदियों ने इन्हें काटकर डांडों और रौलों में बांटदियाहै। तथा मनुष्य और उनके पशुओं ने बड़ी मूर्खता और निर्दयता से इनकी वनस्पतिको नष्ट करदियाहै।

फिर भी सरकारी नियंत्रण के कारण शिवालिक की कुछ श्रेणियों पर अब भी साल, खैर, बांस, बाबड़ और कुकाट के अति सुन्दर वन बचेहैं, जहां शीतकाल में सहस्रों व्यक्तियों को वनोपयोग से आजीविका मिलतीहै। शिवालिक के ऊंचे शिखरों पर कभी-कभी शीतकाल में हिमपात होजाताहै जो शीघ्र पिघल जाताहै।

नदियां भी पर्वतमालाओं के समान ही महत्वपूर्ण हैं। उपत्यका के अधिकांश धरातल को वर्तमान रूप उन्होंने ही दियाहै। उनकी घाटियों में और उनके बनाए हुए 'बगड़ों' पर उपत्यका की पर्याप्त जनसंख्या बसीहै। संस्कृति के केन्द्र, पुराने नगर और राजधानियां उन्ही के तटों पर बसेथे। पर्वत श्रेणियों के जाल-जंजाल को समझने और उनमें प्रवेश करने के लिए नदी-घाटियों के मार्ग ही सहायता करतेहैं।

उपत्यका की महानदियों ने २०सहस्र से २५ सहस्र फीट तक ऊंची पर्वत-श्रेणियों को चीरकर अपने लिए जिन महागर्तों का निर्माण कियाहै, उनके सन्मुख कोलीराडो के गर्त तुच्छातितुच्छ हैं[1]। इन महागर्तों में ये महानदियां इतने विस्मयकारी वेग से बहतीहैं, कि उनके अति

१-वाडिया--पृ० २०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घोर घोष मीलों दूर तक सुनाईदेतेहैं। शीतकाल में इन महानदियों के स्रोत और उपरली घाटियां हिम से ढकीरहतीहैं। ग्रीष्मकाल के आरम्भ में इनके ऊपर फैले हिम पर चढ़कर उन्हें पार किया जासकताहै। मध्यग्रीष्म में भी इनमें हिमशिलाएं बहतीरहतीहैं। मध्याह्न में हिम पिघलने से इनका जल बढ़जाता है, तीसरे पहर से इनमें बाढ़ आने लगतीहै और रात्रि में इनका जल घटजाताहै।

लघुहिमालय या शिवालिक से निकलने वाली नदियां बरसात में गरजती चलतीहैं। उनमें से कई प्रपात या झरने बनातीहैं और अपने साथ अपार कंकड़-पत्थर बहा लेजातीहैं। शीतकाल में इनका जल घटजाताहै और ग्रीष्मकाल में उनमें से कई में केवल नाम-मात्र का जल शेष रहताहै। उपत्यका की अलकनन्दा आदि महानदियों में अपार जल होने पर भी उनसे सींचाई के लिए नहरें निकालना अति कठिन है। किन्तु छोटी नदियों और नालों से अनेक कूलें निकालकर सींचाई होतीहै और घराट चलायेजातेहैं। सभी गांव किसी न किसी नदी, नाले या सोते के पास बसेहोतेहैं।

उपत्यका की मुख्य नदी अलकनन्दा, जो विष्णुप्रयाग से आगे विष्णुगंगा भी कहलातीहै, अलकापुरी महाहिमानी से निकलतीहै। माणागांव के पास उसमें माणाघाटे के देवताल से निकलने वाली सरस्वती नदी मिलतीहै और विष्णुप्रयाग में नीतीघाटे के कुनलुंग शिखर से निकलने वाली धौलीगंगा।

विष्णुप्रयाग (५००० फीट) से पाखी तक अलकनन्दा का महागर्त सर्वत्र एक फरलांग से कम चौड़ा है, और पाखी के पास अत्यन्त संकीर्ण बनगयाहै[1]। पीपलकोटी में अलकनन्दा के बाएं तट पर पहला बगड़ आताहै जो कहीं-कहीं एक मील से अधिक चौड़ा है[2], और प्राचीनकाल

१-टोपोशीट, आधा इंच, ५३ नए० एस० डब्लू०
२-टोपोशीट, आधा इंच, ५३ एन० एस० डब्लू०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में यहां विशाल झील का अस्तित्व सूचित करताहै। ककूधार के पास अलकनन्दा और विरहीगंगा का संगम (३४५६ फीट), तथा नन्दप्रयाग (२८८० फीट) में अलकनन्दा और नन्दाकिनी का संगम है।

अब अलकनन्दा की घाटी कुछ अधिक चौड़ी बनजातीहै[१]। कर्णप्रयाग (२३०७) में अलकनन्दा के बांएं तट पर पिंडारनदी आकर मिलतीहै, जो अलकनन्दा और भागीरथी के पश्चात् उपत्यका की तीसरी बड़ी नदी है। कर्णप्रयाग से आगे अलकनन्दा का बड़ा मोड़ है, जहां नदी उत्तरवाहिनी बनगईहै। अब पणाई या गौचर का दूसरा बगड़ आताहै[२], जो भावर और दून को छोड़कर उपत्यका में चौरस भूमि का सबसे बड़ा टुकड़ा है[३]। तथा प्राचीनकाल में यहां अति विशाल झील का अस्तित्व सूचित करताहै।

रुद्रप्रयाग (१९८० फीट) में अलकनन्दा के दहिने तट पर मन्दाकिनीनदी आकर मिलतीहै। अगला बगड़ श्रीनगर[४] (१३५६ फीट) है, जहां पहले गढ़वाल राज्य की राजधानी थी। देवप्रयाग (१४७४ फीट) में अलकनन्दा और भागीरथी का संगम है। व्यासघाट में अलकनन्दा के बांयें तट पर नयारनदी तथा फुलवाड़ी के पास बांयें तट पर हिंउल और दाहिने तट पर हुइनी नदियां आकर मिलतीहैं[५]।

धौलीगंगा की कतिपय उपरली शाखाएं पहले हूणदेश की ओर बहतीथीं[६]। अब इसकी मुख्य सहायक घिरतीगंगा, ऋषिगंगा और गणेशगंगा हैं जो क्रमशः कुंगरी-बिंगरी, नन्दादेवी और नीतीशिखर से निकलतीहैं। इन तीनों की घाटियों से होकर हूणदेश को मार्ग जातेहैं।

१-टोपो० $\frac{1}{2}$ इंच, 53 N.S.W. २-टोपो० $\frac{1}{2}$ इंच, 53 N.S.W.
३ पौ -पृ० २ ४-टोपो० $\frac{1}{2}$ इंच, 53 N.S.W.
५-टोपो० $\frac{1}{4}$ इंच 53 J में दोनों नदियों को भूल से हुइनी लिखाहै, जो कि अशुद्ध है। ६-त्रिशवाश--पृ० ३५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विरहीगंगा नन्दाघुंघटी से निकलकर पश्चिम की ओर बहतीहुई अलकनन्दा में मिलतीहै। इसकी सारी घाटी १० सहस्र फीट से ५ सहस्र फीट तक ऊंची है। श्योक के समान इसमें भी पर्वतपात से एक विशाल सरोवर गोनाताल बनगयाहै[१]।

पिंडारनदी प्रसिद्ध पिंडारीबांक से निकलकर कर्णप्रयाग के पास अलकनन्दा में मिलतीहै। इसकी घाटी अत्यन्त चौड़ी और सुन्दर दृश्यावली से भरीहै[२]।

पूर्वी और पश्चिमी नयार, दोनों दूधातोली के पठार से निकलकर मार्ग में मूसागली - जैसी संकीर्ण घाटियां बनातीहुई[३] सतपुली के पास मिलजातीहैं। सतपुली से आगे बांघाट के पास संयुक्तधारा पर मरोड़ा नामक स्थान पर डाम बनाने की योजना पर वर्षों से विचार होरहाहै। नयार अपनी सहसा आनेवाली बाढ़ों के लिए कुख्यात है[४]।

केदारहिमाल में १५५०० फीट की ऊंचाई से निकलकर थोड़ी ही दूरी में रुद्रप्रयाग (१९८० फीट) तक उतरकर अलकनन्दा में मिलने के कारण मन्दाकिनी में अपार वेग है। इसकी घाटी में अगस्तमुनि और सौड़ी के बीच के विशाल बगड़[५] और उनसे आगे रुद्रप्रयाग की ओर अति संकीर्ण महागर्त सूचित[६] करतेहैं कि इस महागर्त को काटने से पूर्व मन्दाकिनी की घाटी में विशाल झीलें थीं।

अलकनन्दा की मुख्य सहायक भागीरथी की एक धारा नारायण पर्वत से गोमुख तक फैलीहुई हिमानी से जिस स्थान पर निकलतीहै,

---

१-राहुल--पृ० १६;३३ २-अर्णन, वेबर--पृ० १७६

३-टोपो० ½ इंच, 53 N. S. W.

४-१४ सितम्बर, ५१ को इसकी बाढ़ में ३२ ड्राइवर-क्लीनर और २२ लारियां बहगईं।

५-टोपो० ½ इंच, 53 N.S.W. ६-टोपो० ½ इंच, 53 N.S.W.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह गंगोत्तरी और गौमुख से बहुत दूर आगे है[१]। गोमुख का दृश्य अत्यन्त विस्मयकारी और भयावह है। गंगोत्तरी (१०३१९ फीट) भगीरथी के तट पर ऐसे स्थान पर बसी है, जहां यात्री सरलता से पहुंचसकताहै।

भागीरथी की दूसरी धारा जाह्नवी या जाड़गंगा है, जो लम्बाई, जल और वेग की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। इसने भैरोंघाटी के पास सीधी खड़ी ग्रेनाइट शिलाओं में अत्यन्त गहरा, संकीर्ण और भीषण महागर्त काटडालाहै[२]।

हरसिल में भागीरथी के तट पर पहला बगड़ मिलताहै। भटवाड़ी से आगे भागीरथी की घाटी अधिक चौड़ी बननेलगतीहै। उत्तरकाशी (३३६८ फीट) में भागीरथी के तट पर दूसरा बड़ा बगड़ आताहै[३]। धरासू से आगे भागीरथी दक्षिण-पूर्व की ओर बहकर टिहरी पहुंचतीहै, जहां इसके साथ भिलंगना का संगम है। टिहरी में भागीरथी के तट पर विस्तृत बगड़ हैं[४]। देवप्रयाग में भागीरथी अलकनन्दा में मिलजातीहै।

भागीरथी की प्रमुख सहायक भिलंगना खटलिंग बांक (१७७३० फीट) से निकलकर सीधी दक्षिण की ओर बहतीहुई टिहरी में भागीरथी से मिलजातीहै। मन्दाकिनी के समान इसमें भी अपार वेग है।

रामगंगा की पश्चिमी शाखा दूधातोली के पठार से निकलकर ग्वालदम के पास गढ़वाल की सीमा से बाहर निकलजातीहै और लोहारचौड़ के पास पुनः गढ़वाल में प्रविष्ट होतीहै। गढ़वाल के धुर दक्षिण-पूर्वी भाग का निकास रामगंगा के द्वारा होताहै।

१-कल्याण--तीर्थांक, पृ० ५३; टोपो० ½ इंच, 53 N. S. W.

२-वर्णन, रावत--पृ० १२३-२४

३-टोपो० ¼ इंच, 53 J   ४-टोपो० ¼ इंच, 53 J

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यमुना बन्दरपूंछ श्रेणी से निकलनेवाली अनेक धाराओं के योग से बनीहै। यमुना और भागीरथी का जलविभाजक मशरताल से थडोल-डांडा होकर मसूरी के डांडे को छूताहुआ सुरकंडा पर्वत तक चलागयाहै। देववन[1] से १२ मील पूर्व में यमुना देहरादून जिले में प्रवेश करतीहै।

यमुना की सहायक टोंस लम्बाई, वेग और जल की दृष्टि से यमुना से अधिक महत्वपूर्ण है। वह पवार, रूपीं-सूपीं के योग से बनती है और कालसी के पास यमुना में मिलजातीहै। उत्तरकाशी जिले के पश्चिमी भाग का निकास टोंस और यमुना के द्वारा होताहै।

उपत्यका में सबसे बड़ा और सुन्दर सरोवर चमोली से १२ मील दूर गोनाताल है, जो नैनीताल से तिगुना बड़ा, अधिक सुन्दर और प्रभावोत्पादक है। इसका निर्माण १८९३ में विरहीगंगा में पर्वतपात से हुआथा। इससे २६ अगस्त १८९६ को जो बाढ़ आई वह गढ़वाल की पुरानी राजधानी श्रीनगर[2] को तथा १० अक्टोबर १९१० की बाढ़ अनेक साधुओं को बहालेगई[3]।

उखीमठ से ६ मील दूर देवरीताल है, जिसमें बदरीनाथ शिखर की छाया प्रतिबिम्बित होतीहै[4]। अन्य प्रसिद्ध सरोवर देवताल, लोकपाल, सतोपंथ, डोडीताल, मशरताल और सहस्रताल हैं। नन्दादेवी शिखरपुंज के चिणियाकोट शिखर के नीचे रहस्यमय रूपकुंड है, जो प्रायः हिम से ढकारहताहै। इसमें पाईगई मानव-अस्थियों को स्वामी प्रणवानन्द तीर्थयात्रियों के अवशेष मानतेहैं[5]।

उपत्यका के उत्तरी भागों में अनेक तप्तकुंड या गेसर हैं। बदरीनाथ (तापमान १२६^0), तपोवन, केदारनाथ मार्ग पर तप्तकुंड

१-टोपो० $\frac{1}{4}$ इंच 53 J　　२-राहुल--पृ० ३३३
३-राहुल--घुमक्कड़ स्वामी, पृ० ७५　४-पातेराम--पृ० ३३
५-प्रणवानन्द--लेख, नव भारत टाइम्स ६-२-५६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा गंगनाणी और यमुनोत्तरी के तप्तकुंडों में यात्री स्नान करतेहैं। यमुनोत्तरी के तप्तकुंड (तापमान १९४.७°) में यात्री मावरियो के समान भात और आलू पकातेहैं[१]।

उपत्यका के निवासी सरोवरों और तप्तकुंडों की पवित्रता में विश्वास करतेहैं। वर्ष के विभिन्न भागों में अनेक सरोवरों के तट पर मेले लगतेहैं। तप्तकुंड हिमशीतल प्रदेशों में प्रकृति के वरदान हैं, किन्तु अभी तक उनसे समुचित लाभ नहीं उठाया जारहाहै।

उपत्यका के धरातल को वर्तमान रूप देने में उत्तर में हिम ने और दक्षिण में नदियों ने अति महत्वपूर्ण कार्य कियाहै। हिमयुग में, जब हिमराशि बढ़कर खिसकने लगी तो उसने ऊबड़-खाबड़ और ऊंचे-नीचे धरातल को छीलकर चौरस करदिया और अनेक स्थानों में, विशेषकर, जहां धरातल में पहले से ही दरारें थीं, खोदकर गहरे गर्त बनादिए। उसने सीधी, खड़ी पर्वतश्रेणियों को ऐसी निर्दयता से खोद-खुरच डाला कि उनमें कहीं, तिल भर भी मिट्टी न बच सकी और वे आज तक वनस्पति से हीन सर्वथा नग्न खड़ीहैं।

उत्तरी भाग में हिमनिर्मित धरातल (ग्लेशिएटेड टोपोग्राफी) के सभी चिह्न मिलतेहैं, घिसकर बनीहुई चिकनी शिलायें, अनेक गर्तों में झीलें और सर्वत्र मोरेन के ढेर। ऐसे क्षेत्र में कृषि की सम्भावना नहीं होसकती।

हिमरेखा के नीचे बुग्यालों में मिट्टी की हलकी परतों पर प्रति वर्ष पिघला हुआ हिम मिट्टी की नई परतें बिछाताहै जिससे बुग्यालों का ऊबड़-खाबड़ धरातल सुडौल बनगयाहै, और उस पर उत्तम बुग्गी घास उत्पन्न होतीहै, जो इस हिम-मरुभूमि में मनुष्य और पशुओं के लिए प्रकृति की वरदान है।

शिखरों के पादप्रदेश में कठोर ग्रेनाइट शिलाओं में जलकोष (वाटरटेबिल) न होने के कारण स्थान-स्थान पर जल मिट्टी की

१-डबराल, पृ० ६०३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पतली परतों के ऊपर निकलकर उसे 'सीम' (बौग-कंट्री) का रूप देदेताहै, जैसा केदारनाथ के पास या अन्यत्र दिखाईदेताहै। कृषि या पशुचारण के लिए ऐसे क्षेत्र व्यर्थ हैं।

हिमनिर्मित धरातल में, केवल हिमनिर्मित बगड़ों पर जैसे बदरीनाथ, मलारी, बाम्पा, गमसाली, टिमरसैण और हरसिल में मिलतेहैं, यदि सींचाई की सुविधा हो तो ग्रीष्मकाल में थोड़ा--सा जौ, फाफड़ और आलू उगसकतेहैं।

उपत्यका के दक्षिणी भाग में भावर से उत्तर की ओर बालुज चट्टानों की शृंखलाओं के बीच में कहीं-कहीं छोटी-छोटी चौरस घाटियां हैं, जो 'दून' कहलातीहैं। भावर और दून को छोड़कर सारी उपत्यका में एक के पश्चात् दूसरी सीधी खड़ी अथवा ढलुवां पर्वतश्रेणियां हैं जिनके बीच से नदियों ने अनेक संकीर्ण घाटियां काटडालीहैं।

कहीं-कहीं ये घाटियां थोड़ी - बहुत चौड़ी होनेलगती हैं, और कहीं-कहीं लगभग चौरस भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े मिलजातेहैं, जिनमें से कुछ १०० एकड़ तक के होसकतेहैं। ऐसे अलकनन्दा के तट पर श्रीनगर, कोठगी, नगरासू और पणाई[१] में, भागीरथी के तट पर उत्तरकाशी और डूंडा[२] में तथा नयार के तट पर बड़खोलू, सीला और बांघाट में हैं[३]। इनसे कुछ छोटे पैनों में झर्त्ती तथा उदयपुर में कस्याली हैं[४]।

नदियों के तट पर फैन-जैसे चौरस भाग कुछ अधिक मात्रा में मिलतेहैं, इन्हें 'बगड़' या 'तप्पड़' कहतेहैं। ये बगड़ नदियों के तटों पर एक के ऊपर दूसरे बड़े-बड़े सीढी--जैसे खेतों के समान दिखाईदेतेहैं और नदियो के पुराने मार्गों के सूचक हैं। बगड़ों में मिट्टी के पतली

१-टोपो० ½ इंच, 53 N.S.W.
२-टोपो० ¼ इंच, 53 J
३-टोपो० १ इंच, 53 K/9
४-टोपो० १ इंच, 53 K/9

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तह के नीचे गोल-मटोल कंकड़-पत्थर और बोल्डर मिलतेहैं [१]। जहां सींचाई की सुविधा है, नदी घाटियों के इन छोटे-बड़े बगड़ों पर उत्तम खेती उत्पन्न होतीहै।

पहाड़ी ढालों पर मिट्टी की परतें बहुत पतली हैं, उनके जीवांश और खाद प्रत्येक बरसात में सरलता से बह जाने के कारण वे प्रति वर्ष अपनी उर्वराशक्ति को अधिकाधिक खोती जारहीहैं। उपत्यका के दक्षिणी भागों में अभ्रक मिली चट्टानों से पतली रेतीली मिट्टी, बूंगी, ग्वालदम तथा अन्य क्षेत्रों में कठोर, काले चूने के पत्थरों से चिपकदार क्ले, दूधातोली क्षेत्र में चकमक और बालू मिश्रित श्वेत कोंगलोमरेट्स से हलकी रेतीली मिट्टी उत्पन्न होतीहै।

अलकनन्दा तथा भागीरथी की घाटी में रेतीली मिट्टी, पिंडार, रामगंगा और मन्दाकिनी की घाटियों में लाल क्ले, तथा नयार की घाटी शिंगल मिश्रित क्ले मिलतीहै। रामगंगा के पश्चिम में अनउपजाऊ रेतीली मिट्टी तथा पूर्व में उपजाऊ उत्तम क्ले मिलतीहै। छोटी नदियों की घाटियों में पर्वतों से बहकर आनेवाली खाद के कारण उपजाऊ मिट्टी मिलतीहै। रवांईं, पैनों और डाडामण्डी की घाटियों में उत्तम गंगवार मिट्टी मिलतीहै [२]।

घाटियों में जहां उपजाऊ मिट्टी है, वहां मुख्य व्यवसाय कृषि है, और प्रायः जनसंख्या घनी है। नदियों की बाढ़ से आईहुई उपजाऊ मिट्टी और खाद की पतली परतों वाले 'पांग' खेतों में उत्तम खेती उत्पन्न होतीहै। पहाड़ी ढालों और पठारों की कंकड़-पत्थरों और लाल मिट्टी वाली 'डांग' भूमि पर अन्न बहुत कम उत्पन्न होताहै, जनसंख्या बिरली मिलतीहै और कृषि की अपेक्षा पशुचारण और ऋतुकालीन प्रवास की ओर अधिक आकर्षण देखाजाताहै।

अलकनन्दा-उपत्यका मुगलकाल में अपने लोहे और तांबे की खानों

१-पौ--पृ० २ २-प्रसाद--गढ़वाल, पृ० १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिए प्रसिद्ध थी। बछणस्यूं के लोहे की बनी तलवार खुंखरी और छुरियों की बड़ी मांग थी।

अंगरेजी राज्य से पहले अकेले नागपुर की तांबे की खानों से ५००० गोरखाली रुपए (३८०० ब्रि० रुपए) की आय होतीथी[१]। गोरखों के राज्यकाल में खानों की दशा बिगड़गई। फिर भी उन्हें १८१२ में गढ़वाल की समस्त तांबे की खानों की ठेकेदारी और तांबे की मुद्राओं पर मुहर लगाने से ४८०० गो० रु० (३६०० ब्रि० रु०) की आय हुईथी[२]। गोरखों के समय खानें खोदने का ढंग अत्यन्त पिछड़ा[३] था और वही ढंग अंगरेजी राज्य के आरंभिक वर्षों में बनारहा[४]।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्यकाल में खानों की जांच करवाई गई। किन्तु उचित ढंग से परीक्षण न किए जाने के कारण खानों को लाभहीन समझकर छोड़दियागया[५]। विश्वास कियाजाताहै कि यदि ये खानें वैज्ञानिक ढंग से खोदीजाएं तो अधिक लाभप्रद सिद्ध होसकतीहैं और उनसे बहुत - से व्यक्तियों को आजीविका मिल सकतीहै।

तांबे की मुख्य खानें परगना देवलगढ़, धनपुर तथा डोबरी में हैं। धनपुर की खान में मुख्यतः तांबे के पाइरेट और भूरी धून है जो ५० से ६० फीट तक चौड़ी परतों में मिलतीहै। परतें एक इंच से लेकर एक फीट तक मोटी हैं[६]।

पैनखंडा, नागपुर, दसौली, बछणस्यूं और इड़ियाकोट में लोहे

१-एटकिनसन--जि० १, पृ० २७५-७६ तथा बेकेट-उ० मिनरालौजी-पृ० १७

२-बेकेट--उ० मिनरालौजी--पृ० ३० ३-मिनरालौजी--पृ० १३

४-मिनरालौजी--पृ० ८ ५-मिनरालौजी--पृ० ४

६-सम्र् -गढ़वाल, पृ० १४-१६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की खानें हैं।[१] बछरणस्यूं के लोहे के बने घन - हथोड़े विलायत के सर्वोत्तम लोहे के घन - हथोड़ों से भी श्रेष्ठ पायेगयेहैं[२]।

नागपुरमें शीशे की उत्तम खानें हैं[३]। अलकनन्दा, पिंडार, सोनानदी और रामगंगा के रेत से सोना धोकर निकालाजाताहै। अजवेस्तो, अभ्रक, गंधक, ग्रेफाइट, जिप्सम, शिलाजीत, नीलम, फिटकरी, विजौत्रा और चूने के पाषाण मिलतेहैं। इनमें से केवल जिप्सम[४] और चूने के पत्थर का थोड़ा--सा उपयोग होनेलगाहै, किन्तु शेष सभी खानें बन्द पड़ीहैं[५]।

उपत्यका के विभिन्न भागों के जलवायु-सम्बन्धी विश्वसनीय आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। सारी उपत्यका समशीतोष्ण कटिबंध में आतीहै। किन्तु छोटे-से क्षेत्र में ही धरातल १००० फीट से २५०२० फीट तक ऊंचा होजाने तथा डांडों और घाटियों के जालजंजाल में अनेक वृष्टिच्छाया प्रदेश आजाने के कारण प्रत्येक डांडे और घाटी में जलवायु कुछ न कुछ बदल जाताहै। इसलिए पर्वतों की दिशा और ऊंचाई का अधिक महत्व है।

इस प्रदेश के निवासी वर्ष को तीन ऋतुओं में बांटतेहैं। रूड़ी या बरसाऊ, फाल्गुन से ज्येष्ठ तक, बस्काल या चौमासा आषाढ़ से असूज तक तथा ह्यूंद या शीतकाल कार्तिक से माघ तक।

रूड़ी के पूर्वार्द्ध, बैशाख में, उच्च शिखरों के निकटवर्ती प्रदेश में अल्पकालिक 'चलबसन्त' तूफान आतेहैं, जिनमें अत्यधिक वज्रगर्जन और बिजली की चमक होतीहै[७]। इनकी वर्षा और ओलों से कभी-कभी खेती को बड़ी हानि पहुंचतीहै[८]। उपत्यका के निचले भागों में

१-मिनरालौजी-पृ०३१; सप्रू-गढ़वाल, पृ०१६-१७ २-मिनरालौजी-पृ० ३१
३-मिनरालौजी--पृ० ३१-३२ ४-ओडेन--पृ० ४-५
५-राव--पृ० ११-१२ ६-प्रसाद-टिहरी, भू., पृ०१
७-ब्रेवर--पृ० ५७-५८ ७-पंत--पृ० ३१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बैशाख-ज्येष्ठ में औडल तूफान आतेहैं। रात को आकाश सहसा बादलों से घिरजाताहै। बिजली चमकतीहै, आंधी चलतीहै और थोड़ी--सी वर्षा होजातीहै। इनसे आम के फलों और वृक्षों की शाखाओं को बहुत हानि पहुंचतीहै।

वैशाख से ही निचली घाटियों में तापमान बढ़नेलगताहै। पथिक छाया में चलना पसन्द करतेहैं। ज्येष्ठ में निचली घाटियों में, विशेषकर, भाबर में असह्य तापमान होजाताहै जो ११० फा० तक पहुंचताहै [१]। नदी-नाले सूखजातेहैं, और पशु-पक्षी व्याकुल होने लगतेहैं [२]। भाबर से बहुत-से व्यक्ति अपने परिवार और पशुओं को लेकर अपने पहाड़ी गांवों में चलेआतेहैं। ग्रीष्मांत में धूल के तूफान चलनेलगतेहैं।

पठार और ऊंची घाटियों में ज्येष्ठ से सुहावनी ऋतु आरम्भ होतीहै। उत्तराखण्ड के तीर्थों की यात्रा वैशाख-ज्येष्ठ से चलतीहै। पठारों पर अधिकतम तापमान ६०-७० फा० और बुग्यालों में दिन में ६० फा० तक रहताहै। इससे शरीर में बहुत उत्साह और स्फूर्ति बनीरहतीहै। इन दिनों महाहिमालय की नदियों में हिम पिघलने से बाढ़ें आतीहैं।

आषाढ़ के आरम्भ में वर्षा ऋतु आरम्भ होतीहै। बम्बई से मानसून को पहुंचने में प्रायः १५ दिन लगजातेहैं। किन्तु पिंडार से उत्तर की ओर ज्येष्ठ में यदाकदा स्थानीय वर्षा होनेलगतीहै। निचली पहाड़ियों की अपेक्षा भाबर में वर्षा देर से होतीहै। आरम्भिक वर्षा से भूमि का बहुत कटाव होताहै और सड़कें मलवे से ढकजातीहैं। पर्वतपात तथा नदियों की बाढ़ों से अनेक खेत नष्ट होजातेहैं तथा मनुष्य और पशु बहजातेहैं।

श्रावण या भाद्रपद में कुछ दिन के लिए वर्षा बन्द होकर जब

१-वेबर--पृ० २८-२९ २-वेबर--पृ० २९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तेज धूप पड़तीहै, तो निचली घाटियां में मलेरिया फैलताहै। असोज में वर्षा समाप्त होजातीहै।

निचली घाटियों की अपेक्षा ऊंची पहाड़ियों पर अधिक वर्षा होतीहै और ४००० फीट की ऊंचाई तक बढ़तीजातीहै। इससे अधिक ऊंचाई पर वर्षा घटनेलगतीहै[1]।

भाबर और निचले पहाड़ीप्रदेश में वार्षिक वर्षा ५० इंच से ७० इंच तक होतीहै, जिसका लगभग ८० प्रतिशत शीतकाल में बरसताहै। २५०० फीट से ५००० फीट तक ऊंचे पठारों के निचले भागों में ८० इंच से लेकर ऊंचे भागों में १२० इंच तक वर्षा होतीहै, जिसका लगभग ८० प्रतिशत बरसात में बरसताहै। ५००० से १०००० फीट तक ऊंचे पठारों पर ४० इंच से ८० इंच तक वर्षा होतीहै, जिसका लगभग १५ प्रतिशत शीतकाल में वर्षा और हिम से प्राप्तहोताहै[2]।

महाहिमालय की १०००० फीट से ऊंची भीतरी घाटियों में १० इंच से ४० तक वर्षा होतीहै, जिसका कम से कम ३० प्रतिशत शीतकाल में हिम के रूप में गिरताहै और ५० प्रतिशत बरसात में वर्षा के रूप में। महाहिमालय के पार की घाटियों में १० इंच से कम वर्षा होती है, जिसका ५० प्रतिशत से अधिक शीतकाल में हिमरूप में गिरताहै[3]।

कार्तिक, मार्गशीर्ष आनन्ददायक महीने हैं। दिन में चमकीली, सुखदायक धूप पड़तीहै, रात को चांदनी छिटकतीहै और अधिक शीत नहीं पड़ती। पौष से शीत पड़नेलगतीहै। पौष, माघ में पठारों, पर शीतल चुभने वाली वायु चलतीहै। ऊंचे शिखरों पर पौष से ही हिमपात होनेलगताहै और चैत तक होतारहताहै। ऊंचे स्थानों पर कार्तिक से आग सेंकने की आवश्यकता पड़तीहै। दिन में धूप

१-एटकिनसन--जि० १, पृ० २५४ २-ओ' मैस्टन - पृ० ८

३-ओ' मैस्टन - पृ० ८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेंकने के लिए लालायित रहतेहैं और दिन भर बाहर धूप में काम करतेहैं।

दिवाली तक शीत अत्यधिक बढ़ जाने से बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्तरी और यमुनोत्तरी के मन्दिरों के कपाट बन्द होजातेहैं। इन पुरियों के निवासी तथा नीती-माणा और नेलंग के भोटांतिक अपने परिवार और पशुओं को लेकर अपने शीतकालीन आवासों के लिए चलपड़तेहैं।

शीतकाल में लघुहिमालय से पठारों पर भी कुछ हिमपात होताहै। जब महाहिमालय में हिम के प्रचण्ड तूफान चलतेहैं तो पौड़ी, बुआखाल, लैन्सडौन, सिलोगी, गूमखाल, चरेख, दीपाडांडा और नरेन्द्रनगर में भी कुछ हिमपात होजाताहै।

शीतकाल में उपत्यका के निचले भागों में कुछ वर्षा होजातीहै, पर शीत अधिक नहीं पड़ती। जलवायु स्वास्थ्यवर्धक रहताहै। इन दिनों लोग डटकर परिश्रम करतेहैं। वनोपयोग और सड़कनिर्माण के कार्य इस ऋतु में विशेष रूप से होतेहैं। इसलिए उपत्यका वासियों को ऋतुकालीन प्रवास पर मजदूरी करने के अनेक अवसर मिलतेहैं।

प्राचीन काल में सारी उपत्यका घने वनों से ढकी रहीहोगी। किन्तु सहस्राब्दियों से इस प्रदेश में आजीविका का मुख्य साधन कृषि और पशुचारण होने के कारण ज्यों-ज्यों जनसंख्या बढ़तीगई, वन नष्ट होतेगए। अन्त में वन केवल ऐसी भूमि पर रहगए जो अत्यन्त ऊबड़-खाबड़ और चट्टानी होने के कारण कृषियोग्य न थी। अथवा जहां असह्य जलवायु, भीषण पशु, मच्छर और मलेरिया के कारण मनुष्य का बसना संभव न था।

अंगरेजी राज्यकाल के आरम्भ में वनों का बड़ी निर्दयता और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूर्खतापूवक विनाश होरहाथा[१]। इसलिए कुमांऊं के कमिश्नर ट्रेल के प्रयत्नों से वन-संरक्षण आरम्भ कियागया[२] और धीरे-धीरे वन-विभाग को इतनी अधिक सफलता मिली कि अब भारत के वन संसार के श्रेष्ठतम वनों में गिनेजातेहैं[३]। क्षेत्रफत्र और उत्पादन दोनों की दृष्टि से उपत्यका के वन सारे भारत के वनों में महत्वपूर्ण स्थान रखतेहैं[४]।

फिर भी यह देखकर बड़ा दुख होताहै कि स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर उपत्यका के वनों का कुछ भाग सरकारी आज्ञा से नष्ट कर दियागया[५] और स्वयं इन पर्वतीय भागों के निवासी भी ईंधन के लिए निरन्तर वन-विनाश कररहेहैं।

उपत्यका के वन उसकी सबसे बड़ी सम्पत्ति हैं, जिनसे बहुमूल्य और महत्वपूर्ण लकड़ी और वस्तुएं मिलने के अतिरिक्त उपत्यका के तथा उपत्यका से बाहर के सहस्रों व्यक्तियों को, विशेषकर शीतकाल में, आजीविका प्राप्तहोतीहै। उत्तर में महाहिमालय की ढालों पर बुग्यालों में, तथा लघु हिमालय के पठारों के मोड़ू और खसूं के वनों में जिस प्रकार पशुचारण की सुविधा है, उसी प्रकार सरकारी वनों में, विशेषकर भाबर के वनों में, मजूरी कमाने की। इसलिए बुग्यालें और लघुहिमालय के वन घोषयात्रा को और सरकारी वन, विशेषकर भाबर के वन, ऋतुकालीन प्रवास को प्रोत्साहन देतेहैं।

शिवालिकों और भाबरप्रदेश की नदियों के तट के नंगे, रेतीले और पत्थर-भरे क्षेत्रों पर शीशम और खैर के वृक्ष सरलता से उग जातेहैं[६]। इन वनों में, जहां धरातल नदी के तट से कुछ ऊंचा उठनेलगताहै, वहां चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों के मिश्रित वन मिलतेहैं।

१-बाल्टन--पृ० १५ २-एट्किनसन--जि० १, पृ० ८४१

३-रौवर्टसन--पृ० ३ ४-रौवर्टसन---पृ० ४

५-प्रसाद--गढ़वाल, पृ० २३६-२३८ ६-ओमेंस्टन -पृ० १०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन मिश्रित वनों में, जहां बाढ़ का भय नहीं होता, वनस्पतिचूर्ण जमा होतारहताहै और ऊंचे उपजाऊ तप्पड़ बनजातेहैं, जो मुख्यतया शिवालिक के पादप्रदेश में हैं[१]।

इन तप्पड़ों पर, पहले शीतकाल में पशुचारक 'गोठ' बनाकर पशु चराते और अस्थायी कृषि करतेथे। इसलिए जहां वृक्षों को नष्ट कर दियागयाहै, वहां तप्पड़ों पर बाबड़ घास उगनेलगतीहै[२]। जिन स्थानों में अधिक सुविधाएं हैं वहां तप्पड़ों पर स्थायी कृषि होनेलगीहै।

भाबर के वनों में तथा निचली पहाड़ियों पर और घाटियों में बांस की भरमार है। यहां बांस प्रायः २० फीट से ३० फीट तक ऊंचा और १ इंच से ४ इंच तक मोटा उत्पन्न होताहै। यह समुदायप्रिय है और जब फूलताहै तो सूखजाताहै।

शिवालिक की ढालों पर २५०० फीट की ऊंचाई तक साल के अत्यन्त महत्वपूर्ण वन मिलतेहैं। साल समुदायप्रिय है, जहां अन्य बातें समान हों, वहां इसकी उपरली सीमा संभवतः पाले के द्वारा निर्धारित होतीहै। दक्षिण की ओर की ढाल वाले शुष्क प्रदेशों में तथा दलदली भूमि में, साल बहुत कम होताहै[३]। रामगंगा, पलांई - सोत, मंदाल, खोह, मालिनी, रवासन, हिंवल और गंगाघाटी के निचले प्रदेशों में साल के उत्तम वन हैं।

चीड़ के वन हिमालय की दक्षिणी ढालों पर ३५०० फीट तक तथा उत्तरी ढालों पर ३००० फीट से ६५०० फीट तक मिलतेहैं[४]। चीड़ भी समुदायप्रिय है किन्तु चीड़ का वन अधिक घना नहीं होता। वन में वृक्षों के नीचे छोटी घास या झाड़ियां यत्र-तत्र मिलजातीहैं। सिलोगी, द्वारीखाल, दीपा का डांडा तथा टिहरी में टिहरी, रवांई और शिवपुरी रेंज में चीड़ के उत्तम वन हैं।

१-ओ' मैस्टन--पृ० १०
२-ओ' मैस्टन--पृ० १३
३-ओ' मैस्टन--पृ० १३
४-ओ' मैस्टन--पृ० १६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बांज के वन प्रायः ६००० फीट से ८००० फीट तक मिलतेहैं जो दक्षिणी ढालों पर विरले और उत्तरी ढालों पर घने होतेहैं। मोडू और खर्सू भी बांज के समान ओक जाति के वृक्ष हैं। इनके वन लघुहिमालय की ढालों पर क्रमशः ६५०० फीट से ९००० फीट तक तथा ७५०० फीट से ११५०० फीट तक मिलतेहैं[1]।

इन ओक जाति के वृक्षों के वनों में स्प्रूस, सिलवरफर और बुरांस के वृक्ष तथा बड़े वृक्षों के नीचे झाड़ियों और घासों की परत भी मिलतीहै। धरातल पर आर्द्रता रहतीहै, और अग्नि से अधिक हानि नहीं पहुंचती[2]। बांज, मोडू और खर्सू के वनों में गाय-भैंसों को चराने की अधिक सुविधाएं होने के कारण पंवाली, दूधातोली और बड़कोट के वन पशुचारकों के लिए अति उपयोगी हैं।

लघुहिमालय और महाहिमालय की ढालों पर सबसे सुन्दर वन साइप्रेस, स्प्रूश, ब्लूपाइन और सिलवरफर के हैं जो ६५०० फीट से १०५०० फीट की ऊंचाई तक मुख्यतया मिलतेहैं। मलारी और नीती के शुष्क भागों में सिलवरफर के वन १२००० फीट तक तथा स्प्रूश वन १०००० फीट तक मिलतेहैं[3]।

देवदारु, जिसे सौन्दर्य और सुगन्धि के कारण देवताओं का वृक्ष मानाजाताहै, ८००० फीट से ११००० फीट तक मिलताहै। कोसा, मलारी, कुरगती तथा हरसिल से गंगोत्तरी तक देवदारु के अति आकर्षक वन हैं। देवदारु का एक छोटा-सा वन तड़ासर में है। देवदारु की लकड़ी बड़ी टिकाऊ होतीहै[4]। कहीं-कहीं देवदारु के सहस्रों वर्ष पुराने वृक्ष मिलतेहैं[5]।

पशुचारण के लिए अति उपयोगी होने के अतिरिक्त इन वनों से

१-ओ' मैस्टन--पृ० २०
२-ओ' मैस्टन--पृ० २०
३-ओ' मैस्टन--पृ० २१
४-वेबर--पृ० ४१
५-वेबर--पृ० ७५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जलाने के लिए इंधन, मकानों और सज्जा के लिए लकड़ी, कृषि-उपकरणों की सामग्री, खाद के लिए पत्तियां तथा खाने के लिए फल और कंद-मूल प्राप्त होतेहैं। धरातल के कटाव को रोकने और जलवायु को सम बनाए रखने के लिए भी वन अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उपत्यका के निवासी परिश्रमी और कुशल कृषक तथा पशुचारक होने पर भी वनों के घोर शत्रु हैं। इसलिए वनों की सुरक्षा के लिए कठोर सरकारी नियंत्रण आवश्यक है।

महाहिमालय की ढालों पर, भोजपत्र और सिलवरफर के वन समाप्त होने पर, ऊंची श्रेणियों पर १०००० फीट की ऊंचाई पर, जहां वृक्ष नहीं मिलते, बुग्याल आरम्भ होतीहैं और १३५०० फीट तक पहुंचतीहैं। बुग्यालों का अधिक विस्तार उत्तरी ढालों पर मिलता है। इनकी घास अत्यन्त पौष्टिक और चरने से कभी समाप्त न होने वाली मानीजातीहै।

उपत्यका में वेदिनी, विसतोला,[1] लोकपाल, बदरीनाथ, केदारनाथ, पंवाली[2] और छायापथ[3] की महत्वपूर्ण बुग्यालें हैं, जो ग्रीष्मकाल में खड्वाल, गद्दी और गूजर पशुचारकों का स्वर्ग बनीरहतीहैं।

अंग्रेजी राज्य के आरंभिक वर्षों में उपत्यका में वन्य जंतुओं की, तथा शिकार के पशु-पक्षियों की भरमार थी। वन्य जन्तुओं के द्वारा प्रतिवर्ष सौ से अधिक व्यक्ति मारेजातेथे[4]। इसलिए सरकार वन्य जन्तुओं के विनाश को प्रोत्साहन देतीथी। अब भी कभी-कभी नरभक्षी व्याघ्र के द्वारा सैकड़ों व्यक्ति मारेजातेहैं[5]। वन्य पशु-पक्षियों से पालतू पशु-पक्षियों और खेती को बहुत हानि पहुंचतीहै।

हाथी, बांस के वनों और भावर में गन्ने की खेती को हानि

१-वर्णन, डबराल--पृ० ३०० २-वर्णन, डबराल--पृ० २४७
३-वर्णन, डबराल--पृ० २४५ ब ४-एटकिनसन--जि० २, पृ० १९
५-वेबर--पृ० २६ तथा कौरबेट--पृ० ५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहुंचातेहैं । सर्वत्र मिलने वाले बघेरा, चीता, लकड़बग्घा, आदि सभी प्रकार के व्याघ्र भेड़-बकरियों, गाय-बैलों और कुत्तों को, तथा कभी-कभी भैंसों को भी बहुत हानि पहुंचातेहैं । उत्तरी भागों में हिमचीता भालू और हौंसा (जंगली कुत्ता[१]) भेड़-बकरियों को उठालेजातेहैं ।

भालू, साही, सियार, बन्दर, लंगूर, गुराल, जड़ाऊ, चीतल, काकड़ तथा खरगोश खेती को हानि पहुंचातेहैं । मक्का की खेती का लगभग एक तिहाई साही और बन्दरों के द्वारा तथा मंडुवा, गेहूं और झंगोरा की खेती का चौथाई से लेकर एक तिहाई तक भालू, साही, बन्दर और चिड़ियों के द्वारा नष्ट होताहै ।

उपत्यका के कुछ पक्षी शीतकाल में मैदान में उतरजातेहैं और ग्रीष्मकाल में उपत्यका में आजातेहैं । कुछ पक्षी ग्रीष्मकाल में हिमालय के पार तिब्बत के पठार में पहुंचजातेहैं । घुघती, घिड़ुड़ी और करौंली घरों के निकट रहतीहैं । चकोर, कलिज, चील, कोकरा या पोकरा, बुलबुल, अति सुन्दर मोनाल तथा लुंगी ४००० फीट से अधिक ऊंचाई पर मिलतेहैं[३] । यद्यपि पक्षी खेती को हानि पहुंचातेहैं किन्तु वे हानिकारक कीड़ों, यहां तक कि सांपों को भी मारडालतेहैं । मृत पशुओं को तो इन्हीं के भरोसे खेतों या रौलों में फेंकदियाजाताहै ।

गौला, उदबिलाव, गोह, नाकू और सर्प बहुत मिलतेहैं । सलाण और भाबर में विषैले सांपों के काटने से प्रति वर्ष कई व्यक्ति प्राण खोतेहैं । महाहिमालय के सांप छोटे और विषहीन होतेहैं । किन्तु अजगर केवल भाबर में ही नहीं, तुंगनाथ के निचले सानु तक मिलाहै ।

उपत्यका की नदियां और सरोवर मछलियों से भरे हैं । बड़ी नदियों में अति उत्तम और भारी महाशीर तथा छोटी नदियों में असेल, सिपला, जूर, कणुआ, फुलड़ा, आदि छोटी किन्तु अत्यन्त स्वादिष्ट

१-एटकिनसन--जि० २, पृ० १७ २-एटकिनसन--जि० २, पृ० २१

३-पातेराम--पृ० ६५-६६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मछलियां मिलतीहैं। नदी-तटों पर रहनेवालों को तथा बादियों का मछली पकड़ने और बेचने से कुछ प्राप्त होजाताहै।

सारी उपत्यका में केवल एक मील रेलवे लाइन है। अत्यन्त ऊबड़-खाबड़ धरातल, निरन्तर एक के पश्चात् दूसरी पर्वत शृंखलाओं और घाटियों के जाल-जंजाल तथा अगणित नदी-नालों और गधेरों के कारण उपत्यका में रेलवे लाइन बनाना अत्यन्त श्रमसाध्य और व्ययसाध्य है। इन्हीं कारणों से ऋषिकेश - कर्णप्रयाग रेलवे लाइन बनाने की योजना बार-बार स्थगित करनीपड़ीहै।

स्वतन्त्रता मिलने से पूर्व सारी उपत्यका में कोटद्वार से लैन्सडौन तक तथा ऋषिकेश से नरेन्द्रनगर तक, केवल यही दो मोटरमार्ग थे। आज सारी उपत्यका में मोटरमार्गों का जाल बिछगयाहै। कोटद्वारा और ऋषिकेश, उपत्यका के इन दो द्वारों से महाहिमालय की निचली ढालों तक मोटरमार्ग बनचुकेहैं।

कोटद्वारा से बदरीनाथ जानेवाले मार्ग में लैन्सडौन, पौड़ी, श्रीनगर होकर जोशामठ तक मोटर-लारियां चलनेलगीहैं। ऋषिकेश से बदरीनाथ जानेवाला मोटरमार्ग श्रीनगर पहुंचकर इसी मार्ग में मिलजाताहै। ऋषिकेश से यमुनोत्तरी जानेवाले मार्ग पर डंडेलगांव (गंगानाणी) तक, तथा गंगोत्तरी जानेवाले मार्ग पर उत्तरकाशी तक मोटर-लारियां चलतीहैं।

चारों धामों को जानेवाले ये मोटरमार्ग आज भी प्राचीन काल के यात्रामार्गों के समान मुख्यत: अलकनन्दा और भागीरथी तथा उनकी सहायकों की घाटियों से होकर जातेहैं। प्राचीन काल में पशुचारकों के घोषयात्रा-मार्ग मुख्यतः डांडों से होकर जातेथे और निचली गड्डियों (नदी-घाटियों) के प्रतप्त एवं आर्द्र जलवायु से बचने का प्रयत्न करतेथे। आज इन घोषयात्रा-मार्गों में से अधिकांश पर मोटर-लारियां या खच्चरों के चलने योग्य मार्ग बनचुकेहैं और बनते जारहेहैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऊंचे डांडे, जो प्राचीन काल में एक घाटी को दूसरी घाटी से पृथक करतेथे, वर्तमान समय में मार्ग बनाने की दृष्टि से बड़े उपयोगी सिद्ध होरहेहैं। इनकी पीठ पर बने मार्गों पर पुल बनाने की आवश्यकता बहुत कम पड़तीहै, और प्रायः टूट-फूट अधिक नहीं होती। प्रति वर्ष लाखों मन अन्न, वस्त्र, गुड़, नमक तथा अन्य आवश्यक सामग्री उपत्यका में पहुंचतीहै। बरसात में जब टूट-फूट से इन मार्गों पर दो-चार दिन लारियां चलनी बन्द होजातीहैं, तो उपत्यका में हाहाकार मचजाताहै[1]।

आज मोटरमार्ग उपत्यका के जीवन के आवश्यक अंग बनगएहैं, और उन्होंने उपत्यका के विभिन्न भागों में प्रचलित जीवन - निर्वाह की पद्धतियों में बड़ी उथल-पुथल मचादीहै। ज्यों-ज्यों मोटरमार्गों में वृद्धि और सड़कों का अधिकाधिक निर्माण होरहाहै, त्यों-त्यों ऋतुकालीन प्रवास पर जाकर मजदूरी कमाने का अधिकाधिक प्रचार होरहाहै[2]।

उपत्यका के ९८ प्रतिशत निवासियों के मुख्य व्यवसाय कृषि और और पशुचारण हैं। किन्तु इन व्यवसायों से केवल नाममात्र का निर्वाह होने के कारण वे अस्थायी या स्थायी रूप से प्रवास पर जाकर आजीविका कमातेहैं।

स्थायी नौकरियों में से सबसे अधिक आकर्षण सेना, पुलिस, प्रान्तीय रक्षादल, आदि की ओर है। लगभग ५०००० पुरुष इन सेवाओं में लगेहैं। सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लिए सभी लोग बड़े प्रयत्न करतेहैं। वन, डाक-तार, शिक्षा आदि विभागों में शिक्षित व्यक्तियों को नौकरी मिलजातीहै। अल्प शिक्षित या अशिक्षित व्यक्तियों का निर्वाह मुख्यतः प्रवास पर मजदूरी से होताहै।

पिछले डेढ़ सौ वर्षों में उपत्यका की जनसंख्या सातगुने से अधिक

१-देखिए, भाग ५, परिच्छेद, १-२ २-देखिए, भाग ५, परिच्छेद २

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बढ़गईहै । १९६१ की जनगणना में चारों जिलों की जनसंख्या मिलकर १२ लाख से बढ़गई ।

जिला	जनसंख्या १९६१		
	नर	नारी	योग
उत्तरकाशी	६२३५०	६००२७	१२२३७७
टिहरी	१५८०७४	१८९४६१	३४७५३५
चमोली	११९५५१	१३३१६७	२५२७१८
गढ़वाल	२२०७३९	२५८४१२	४७९१५१
उपत्यका	५६०७१४	६४१०६७	१२०१७८१

उपत्यका के ९९ प्रतिशत निवासी हिन्दू हैं। थोड़े से हरिजन ईसाई बनगएहैं । कुछ मुसलमान व्यापारी, चूड़ी बेचनेवाले, गूजर तथा शिकारी उपत्यका में आबसेहैं । उपत्यका के सभी निवासी गढ़वाली बोली का प्रयोग करते हैं और गढ़वाली कहलाते हैं।

प्राचीन काल से लेकर आजतक उनका जीवन उपत्यका की भूगोलिक परिस्थिति से किस प्रकार प्रभावित होतारहाहै, यह हम अगले दो परिच्छेदों में देखेंगे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२-पर्वतीय द्वीप के निवासी

अलकनन्दा-उपत्यका की पूर्वी, उत्तरी और पश्चिमी सीमाओं पर खड़ी महोच्च पर्वतमालाओं ने तथा दक्षिण में तराई के दलदलों, भाबर के गहन, अस्वास्थ्यकर एवं भीषण पशुओं से भरे वनों तथा शिवालिक की श्रेणियों ने प्राचीन काल में उपत्यका को एक स्वतन्त्र पर्वतीय द्वीप-जैसा स्वरूप देदियाथा।

इस पर्वतीय द्वीप में, उत्तर और दक्षिण से प्रवेश करना कठिन होने पर भी पूर्व और पश्चिम से प्रवेश करना अपेक्षाकृत सरल था। लघुहिमालय की श्रेणियां पश्चिम से पूर्व की ओर कई समानान्तर एवं छिन्न-भिन्न डांडों के रूप में फैलीहैं, जो ऊंचे शिखरों को छोड़कर सर्वत्र ५ सहस्र से ७ सहस्र फीट तक ऊंची हैं। इन डांडों पर फैलेहुए वन भाबर के वनों के समान अति घने, अस्वास्थ्यकर एवं दुर्गम नहीं हैं। वे पशुचारकों के लिए बड़े आकर्षक हैं।

उत्तर-दक्षिण की ओर बहनेवाली यमुना, भागीरथी और अलकनन्दा की अधिकांश सहायक नदियां पूर्व-पश्चिम या पश्चिम-पूर्व दिशाओं में बहकर पशुचारकों के लिए पूर्व और पश्चिम की ओर से उपत्यका में प्रवेश करने के लिए अपेक्षाकृत सरल मार्ग प्रस्तुत करतीहैं। इसलिए अति प्राचीन काल से ही उपत्यका में पूर्व और पश्चिम की ओर से आकर अनेक जातियां बसतीगईं।

उपत्यका के सबसे प्राचीन निवासी सम्भवतः विशाल पाषाण-खंडों से वृताकार पितृकूड़ी (पितृ-समाधि) बनानेवाले (Megalithic Builders) थे, जिनके द्वारा निर्मित वृताकार समाधियां तथा विशाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाषाण-शिश्न उपत्यका के पूर्वी भागों में मिलेहैं[1]। उपत्यका के निर्जन वन-पर्वतों और घाटियों में भूत-प्रेत और पितरों का भय, तथा 'हंत्या' की[2] भावना उन्हें इनकी पूजा के लिए विवश करतीथीं।

आज इस जाति का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं मिलता। सम्भवतः इसे पीछे आनेवाली जातियां पचागईं। किन्तु इनमें प्रचलित भूत-प्रेत, पितर और 'हंत्या' की पूजा आज तक चलीआतीहै।

अति प्राचीन काल में, जब गंगाजी के मैदान से उपत्यका में प्रवेश करना असम्भव था, पूर्व की ओर से लघुहिमालय की ढालों पर पशुचारण करतीहुई किरात-भिल्ल जाति ने उपत्यका में प्रवेश किया। मध्यवर्ती पठारों पर पशुचारण करतीहुई यह जाति भागीरथी और यमुना के उपरले स्रोतों तक फैलगई।[3]

चपटी मुखाकृति, चपटा भाल, छोटी या चिपकी नाक, मूंछ-दाढ़ी की कमी, पीला या गेहुंवा रंग, अपेक्षाकृत नाटा आकार और हृष्टपुष्ट शरीर, ये किरात-भिल्ल जाति की विशेषताएं हैं जो महाहिमालय की दक्षिणी ढालों के निवासियों में कनौर से लेकर असम तक मिलतीहैं।

किरात-भिल्ल जाति पशुचारक-आखेटक जाति थी। वह भेड़ें पालती और काले कम्बल की गाती से शरीर ढकतीथी[4]। वह वन्य पशुओं का मांस खातीथी[5]। तथा पर्वतीय ढालों पर झाड़ियां जलाकर कटील प्रथा से सम्भवतः मंडुवा और तिल उगालेतीथी[6]। स्नान और स्वच्छता से दूर रहनेवाली इस जाति का जीवन म्लेच्छों-जैसा था[7]।

१-कारनाक--पृ० ३; डबराल--पृ० १६८

२-हत्या, आत्मघात या अकाल मृत्यु से मरे अथवा अतृप्त कामना वाले प्रेत

३-भिलंगना=भिल्लगंगा, देखिए, केदारखण्ड--२०५

४-केदारखण्ड--२०५

५-केदारखण्ड--२०५

६-बृहत्संहिता--१।३५

७-केदारखण्ड--२०५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कई शताब्दियों के पश्चात्, किन्तु आर्यों के भारत में प्रवेश करने से बहुत पहले, पश्चिम से पबार, टोंस और यमुना के उपरले स्रोतों के मार्ग से पशुचारण करतीहुई दरद-खस जाति ने उपत्यका में प्रवेश किया और किरातों से उनके उत्तम चराईक्षेत्रों को छीनकर उन्हें महाहिमालय की दक्षिणी ढालों पर तथा दुर्गम भोटांतिक घाटियों में धकेल दिया।

लम्बी मुखाकृति, लम्बी और सीधी नाक, मूंछ-दाढ़ी की प्रचुरता, गोरा या गेहुंवा रंग, अपेक्षाकृत लम्बा आकार और हृष्ट-पुष्ट शरीर के कारण दरद-खश जाति किरात-भिल्ल जाति से भिन्न और शक-आर्य जैसी गोरी जातियों के समान है।

खश जाति पशुचारक-कृषक जाति थी। वह गाय-बैलों के गल्ले पालती और बकरों को खस या खस्सी बनाना जानतीथी। वह पर्वतों की ढालों को खोदकर भीड़े वाले खेत बनाती और गेहूं, जौ तथा भांग उगा लेतीथी। वह भांग की चादर से शरीर ढकतीथी।

किरात-भिल्ल तथा दरद-खश जातियों में जाति-प्रथा न थी। उनमें जनेऊ पहनने और पुरोहित रखने की प्रथाएं न थीं। वे पितरों, भूत, प्रेतों और ग्राम-देवताओं को पशुवलि देकर संतुष्ट करतीथीं। अन्य पशुचारक जातियों के समान उनमें भी पति-पत्नी के सम्बन्ध ढीले-ढाले होतेथे। सतीत्व रखने की प्रथा नहीं थी[1]। पशुचारण के साथ कृषि करने वाले खशों में प्राचीन काल में ही गौ के प्रति पूज्य भावना का प्रचार होचुकाथा। वे गाय-भैंसों का मांस नहीं खातेथे।

भारत में आर्यों के आगमन के पश्चात् सिंधु-गंगा के मैदान के निवासियों में समय-समय पर जो उलट-फेर हुए उनसे बाध्य होकर जिस प्रकार कई जातियों को दक्षिण के पठार में शरण लेनीपड़ी उसी प्रकार कुछ डोम जातियां हिमालय से मैदान में आनेवाली नदियों की घाटियों

१-भाग ३, परिच्छेद ३

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से होकर सारे हिमालय-प्रदेश में पश्चिम से पूर्व तक फैलगई ।[१]

डोम जातियों में मुख्यत: दो वर्ग थे। शिल्पकार और नर्तक। शिल्पकार-डोम कृषि के उपकरण बनाते, वस्त्र बुनते और गांव की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करतेथे। नर्तक-डोम मंगल-उत्सवों पर ढोल बजाते, नाचते - गाते और ग्रामीणों का मनोरंजन करतेथे। धीरे-धीरे मैदानी गांवों के समान पर्वतीय गांवों में भी इन ग्रामसेवकों की मांग बढ़गई। इनके दो - चार परिवार प्रत्येक गांव में जाबसे अथवा दास - रूप में खरीदकर बसादिएगए ।

डोम रंग में काले और आकार में प्राय: नाटे होतेहैं। उनके गालों की अस्थियां प्राय: उभरी होतीहैं। कुछ डोमों के बाल घुंघराले और ऊन-जैसे प्रतीत होतेहैं। उनकी नाक चपटी, मोटी या बीच में पिचकी होतीहै। उनके जबड़े चौड़े होतेहैं उसमें से कुछ के नेत्रों में स्वाभाविक लालिमा या चिपचिपापन होताहै।

डोम न तो पशुचारक थे और न कृषक। वे ग्रामसेवक मात्र थे। उनके नाम से प्रसिद्ध गांव नहीं मिलते। वे प्राय: दूसरों के खेतों पर खेती करतेथे। पर वे खशों के समान कभी कुशल कृषक नहीं बनसके[२]। वे प्राय: खरीदे और बेचे जातेथे[३]। वे स्वेच्छा से भी स्वामी - परिवर्तन करतेथे ।

वे लोहे के उपकरण, बांस की टोकरियां, काठ के बर्तन, ऊन के कम्बल, भांग की चादरें आदि आवश्यक वस्तुओं का निर्माण करतेथे। डोम शिल्पकारों की वस्ती गांव में सवर्णों के घरों से कुछ दूरी पर होतीथी और 'डोमाणा' कहलातीथी।

१-डोम-मुण्ड-शवरों के प्रवेश के सम्बन्ध में देखिए, डबराल-भू०, पृ० ८-९
२-'जैकी खेती, तैकी खेती, डूम-जोग्यों की क्या खेती'? ---लोकोक्ति
३-एटकिनसन--जि० ३, पृ० ४४६, ५१३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डोम मरे गाय-भैंसों का मांस खालेतेथे । इसलिए दरद-खश इनका छुआहुआ जल और पक्वान्न ग्रहण नहीं करतेथे तथा इनके साथ विवाह-संबंध नहीं करतेथे । किन्तु इन्हें छूने में, इनके साथ उठने-बैठने में तथा कृषि और पशुचारण करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करतेथे । इन्हें भी चाचा,ताऊ, भाई, भतीजा, चाची, ताई आदि नातों से पुकारतेथे ।

उपत्यका के निवासियों की नसों में मुख्यत: किरात, खश और डोम रक्त है । गौमांस खानेवाली डोम जाति को प्राचीन काल से ही गांव में पृथक स्थान देने के कारण किरात और खश जातियों में डोम-रक्त का अपेक्षाकृत कम मिश्रण हुआहै । इसके विपरीत डोम जाति में किरात और खश-रक्त का, तथा अन्य आगन्तुक जातियों के रक्त का अत्यधिक मिश्रण हुआहै । उत्तर में खश - किरात - रक्त का मिश्रण होना स्वाभाविक था ।

महाहिमालय की ढ़ालों के खड्वालों में किरात - रक्त और परम्पराएं आज तक सुरक्षित हैं । वे आज भी प्राचीन किरातों के समान भेड़-बकरियों के गल्ले पालते, व्रात्यों का-सा जीवन बिताते और काले कम्बल की गाती से शरीर ढकतेहैं ।

लघुहिमालय के गोपालक खशों में आज भी प्राचीन खश-रक्त और खश-परम्पराएं सुरक्षित हैं। वे गाय-बैलों के गल्ले पालते, भीड़े वाले खेत बनाकर खेती करते और भांग की गाती पहनतेहैं । उनकी सामाजिक प्रथाएं आज भी उसी प्रकार चलीआरहीहैं ।

शिल्पकार डोम जाति में आज भी अनेक व्यक्ति अपने पुराने कौशलों से आजीविका जुटातेहैं । जिन्होंने इन कौशलों को त्याग दियाहै वे कृषि और ऋतुकालीन प्रवास पर मजूरी करके अपना निर्वाह करतेहैं । नर्तक - डोम, जिनमें भाट, हुड़क्या, बादी, मिरासी और औजी-बाजगी मुख्य हैं, आज भी बाजा बजाकर, नृत्य-गान करके,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथवा वेश्यावृत्ति से अपना निर्वाह करतेहैं[१]।

उपत्यका के उत्तर में दमजन, चोरहोती, नीती, माणा और जैंलूखगा के गिरिद्वार, जिनमें से प्रत्येक १६ सहस्र फीट से ऊंचा है, उजाड़, दरिद्र और साधनहीन हूणदेश क निवासियों के लिए उर्वर, साधनसम्पन्न एवं समृद्ध भारत का द्वार खोलतेहैं। अपने आंगन से उतरनेवाली इन सीढ़ियों के द्वारा प्राचीन काल से आज तक पशुचारक घुमन्तुओं की टोलियां निरन्तर उपत्यका में प्रवेश करतीरहीहैं। जो कुछ पीढ़ियों तक वर्तमान डोलबा या ग्यगर-खम्-पाओं के समान प्रव्राजी जीवन बिताने के पश्चात् उपत्यका के उत्तरी भागों के किरात-भिल्लों में मिलतीरहीहैं।[२]

उपत्यका की दक्षिणी सीमा पर स्थित सिंधु-गंगा के महामैदान में निरन्तर एक के पश्चात् दूसरे आक्रान्ताओं के आक्रमणों के कारण वहां की जनता को अपने घरों और भूमि को छोड़कर भागनापड़ाहै। इस प्रकार उखड़ीहुई जनता अपनी भगदड़ में जहां आश्रय पातीहै, शिर छिपाने का प्रयत्न करतीहै[३]। यमुना और गंगाजी की घाटियों से होकर शरणार्थियों की अगणित टोलियां समय-समय पर उपत्यका में प्रविष्ट होतीरहीहैं।

अवश्य ही अनेक लिखित प्रमाणों[४] तथा अगणित अलिखित गाथाओं से[५] पता चलताहै कि निरन्तर मनुष्यों की, एक के पश्चात् दूसरी धाराएं उपत्यका में प्रवेश करतीगईं और घाटियों के जाल-जजाल में उसी प्रकार उलझी रहगईं जिस प्रकार अन्तर्निकास के प्रदेश में नदी-नाले।

१-भाग ५, परिच्छेद, ४

२-भाग ४, परिच्छेद, २

३-सेम्पल--पृ० ६४

४-रतूड़ी--पृ० १४०

५-राहुल--पृ० २६५ से २७८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनुष्यों की जब नई बाढ़ आतीहै तो वह पहले घाटी के पुराने तटों तक ही अपने को सीमित रखनाचाहतीहै। इसलिए गंगाजी के मैदान से उपत्यका में प्रविष्ट होनेवाली टोलियों ने नदी-घाटियों की निचली एवं अपेक्षाकृत चौरस गड्डियों एवं सलाणप्रदेश में, जहां बसना खश-किरात पशुचारक पसन्द नहीं करतेथे, बसकर धान उगाना आरम्भ करदिया। और धीरे-धीरे अपने चारों ओर पहाड़ी ढालों पर बसी हुई कृषक-पशुचारक खश-जाति के महासागर में मिलकर अपना पृथक अस्तित्व खोदिया।

आगन्तुक टोलियों में से अनेक को, जब निचली घाटियों में सरलता से स्थान प्राप्त न होसका, तो वे अगणित तथा एक दूसरे से असंबंधित पर्वतीय ढालों एवं दुर्गम घाटियों में घुसगई और चिरकाल तक अपनी विचित्र रीतिनीतियों की अपने ही निराले ढंग से रक्षा करतीरहीं।

यद्यपि शीघ्र या देर में, उन्हें इस प्राकृतिक द्वीप के अन्दर घुल मिलकर एक विचित्र खिचड़ी में मिश्रित होनापड़ा और निरन्तर रक्त-मिश्रण से वे अपने आगन्तुक पूर्वजों के प्राचीन रक्त का अधिकांश खोगए, फिर भी वे अपने कल्पित या वास्तविक पूर्वजों के रक्त का गर्व आजतक सुरक्षित रखतेआएहैं[1]।

उपत्यका के निवासी, चाहे किसी भी जाति के हों, और किसी भी धर्म को माननेवाले हों, सभी घोर अन्धविश्वासी और अगणित देवी-देवताओं तथा भूत-प्रेत और आंछरियों में विश्वास करनेवालेहैं।

प्रायः प्रत्येक गांव चारों ओर से ऊंची पर्वतमालाओं और वनों या नंगी चट्टानों से घिरा है। ऐसे गांवों की सख्या अति अल्प है, जहां से दो-चार पड़ोसी गांव दिखाईदेसकें।

१-उपत्यका में उच्च कोटि के कुछ ब्राह्मण और राजपूत अपनी पत्नियों या माता द्वारा पकाया भात नहीं खाते क्योंकि वे अपनी जाति को अपनी पत्नी या माता की जाति से बहुत उच्च समझतेहैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नित्य एक ही दृष्यावली तक दृष्टि सीमित रखने के कारण उपत्यका-निवासी घोर रूढ़िवादी हैं। वे प्राचीन परम्पराओं का पालन करना अपना कर्तव्य समझतेहैं। उनके वर्तमान जीवन को समझने के लिए यह तथ्य ध्यान में रखना आवश्यक है।

उपत्यका के निवासियों की धार्मिक भावनाओं पर भूगोलिक परिस्थिति की अमिट छाप लगीहै।

उपत्यका के सभी मार्ग नदियों की घाटियों से होकर आगे बढ़तेहैं और सरलता पूर्वक उस प्रदेश में पहुंचादेतेहैं जहां बीस सहस्र फीट से अधिक ऊंचे शिखरों के पादप्रदेश में दस-पन्द्रह सहस्र फीट नीचे अति, संकीर्ण घाटियों में महानदियां विश्मयकारी वेग से घोर घोष करतीहुई दौड़रहीहैं। आकाश को बींध कर खड़े महोच्च शिखरों के पाद-प्रदेश में इतनी अधिक गहराई पर अति संकीर्ण घाटियों में महानदियों के बहने का यह दृश्य अत्यन्त रोमांचकारी होताहै और जीवन भर भुलाया नहीं जासकता।

महानदियों के अपार विश्मयकारी वेग तथा प्रलयंकारी शक्ति से प्रभावित होकर उपत्यका के निवासी अति प्राचीन काल से ही गंगाजी की पूजा करनेलगेथे[1]। वे महाहिमालय से निकलनेवाली प्रत्येक नदी को बिना किसी भेदभाव के गंगा कहतेहैं और समय-समय पर उसमें स्नान करना अपना कर्तव्य समझतेहैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने घर में गंगाजल रखताहै। अशौच के समय अपने ऊपर तथा प्रति वर्ष फल देनेवाली लताओं और वृक्षों पर गंगाजल छिड़कना आवश्यक समझताहै[2]।

उपत्यका-निवासी हिमानियों को अति पवित्र समझतेहैं और उनके दर्शन के लिए जात (तीर्थयात्रा) देतेहैं। हिमशिखरों को देखकर वे श्रद्धा से मस्तक झुकातेहैं। महापंथ शिखर से हिमानी

१-डबराल--पृ० ४६ २-डबराल--पृ० ३९-५६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में कूदकर प्राण त्यागना वे अति पवित्र कार्य समझतेहैं[1] ।

यमुना, भागीरथी, मन्दाकिनी, विष्णुगंगा और नन्दाकिनी महानदियों की घाटियां महाशिखरों के पादप्रदेश में ऐसे स्थलों पर पहुंचातीहैं जहां महाहिमालय के महाशिखर अपने भीषण और रोमांचकारी स्वरूप में आगे बढ़ने का मार्ग रोककर खड़ेहैं, जहां महानदियां अपार घोष के साथ उतरतीहैं और जहां ज्येष्ठ के प्रारम्भ में अति भीषण हिमानीपात (ऐवलांश) होतेहैं ।

इन रोमांचकारी स्थलों पर उपत्यकावासी यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ, बदरीनाथ और नन्दादेवी शिखरों के सन्मुख विस्मय, भय और भक्ति से शिर झुकातेहैं और उनकी पूजा तथा तीर्थयात्रा करतेहैं ।

वे प्रत्येक डांडे में पृथक देवी-देवताओं का अस्तित्व मानतेहैं । दुर्गम सीधी चढ़ाई पर वे विभिन्न नाम वाले भैरवों की पूजा करतेहैं । चराईक्षेत्रों में पशुओं की रक्षा के लिए वे घंटाकर्ण और सिघ्वा-विघ्वा की, तथा प्रत्येक गांव की रक्षा के लिए पृथक भूमिया या सिद्धबाबा की पूजा करतेहैं और उन्हें विभिन्न फसलों पर रोट चढ़ातेहैं ।

जिस प्रकार प्रत्येक गांव के एक-दो मुख्य देवी-देवता होतेहैं, उसी प्रकार प्रत्येक 'कुल' (परिवार) के भी दो-चार 'कुल-देवता' होतेहैं । प्रत्येक मकान की खोली पर गणेश की मूर्ति होतीहै । विभिन्न कमरों की ताखों में विभिन्न देवी-देवताओं के लिंग या त्रिशूल स्थापित किएजातेहैं । मकान की मुंडेरी पर भी कुल-देवता का पाषाण-लिंग रहताहै ।

परिवार में किसी के रुग्ण होने पर, कोई आकस्मिक विपत्ति आने पर, सहसा पशुओं का दूध सूख जाने आदि संकटों में, यदि साधारण उपचार से लाभ नहीं पहुंचता तो अवश्य किसी देवी-देवता का 'दोष' (द्वेष या कोप) समझाजाताहै । कुपित देवी-देवता का

१-डबराल--पृ० ३१५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पता लगाने के लिए 'पुछेर' या 'बाकी' की शरण लीजातीहै। पुछेर के परामर्ष के अनुसार देव-पूजन कियाजाताहै[१]।

देवी-देवताओं का कोप दूर करने के लिए गढ़वाली नर-नारी 'घड्याला' रखतेहैं, आवेश में आकर नाचतेहैं, पशुओं का वलिदान करतेहैं और भंडारा चढ़ातेहैं, तथा 'जात' (तीर्थयात्रा) देतेहैं[२]।

साधारण-सी विपत्ति आने पर भी गढ़वाली, सैकड़ों देवी-देवताओं के, जिनके उन्होंने नाम सुनेहों, बार-बार हाथ जोड़कर मनौती मानतेहैं।

प्रकृति की असीम और भीषण शक्तियों के सन्मुख अपने को सर्वथा असमर्थ पानेवाले उपत्यका-निवासियों के हृदय सदा इन देवी-देवताओं की शक्ति से आतंकित रहतेहैं। वे बिना उन्हें अर्पित किए अपने खेतों के अन्नों, वृक्षों के फलों और पशुओं के दूध-घी का सेवन नहीं करसकते।

आधी शताब्दी पहले तक महाशिखरों के पादप्रदेश के निवासी अपनी ज्येष्ठ पुत्री को प्रथम उत्पादन के रूप में देवमन्दिर में अर्पित करना आवश्यक समझतेथे, जिसकी परम्परा अब भी नायक जाति में मिलतीहै[३]।

उपत्यका में प्रकृति क्षण-क्षण में अपना उग्र और सौम्य रूप दिखाती रहतीहै। खेत में लहलहाती पकीहुई खेती क्षण भर में 'ओडल' (ओलों के तूफान) से नष्ट होसकतीहै। वन में चरतीहुई भेड़-बकरियां और गाय-भैंसें एक घड़ी में हिमपात, हिमानीपात, वज्रपात या व्याघ्रों के द्वारा नष्ट होसकतीहैं। सुदृढ़ मकान, यहां तक कि सारा गांव, भी अल्पकाल में हिमानीपात (एवलांश) में फंसकर वह

१-मिलाइए, मजूमदार--हिमालयन पोलियांडरी, पृ० २६१
२-मिलाइए--उपरोक्त, पृ० २५२ तथा पातेराम--पृ० १२२
३-भाग ५, परिच्छेद ४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकताहै[१]। अस्तु उपत्यकावासी छोटे-बड़े सभी कार्यों के लिए शुभ घड़ी ढूंढतेहैं।

वे हल चलाने, बीज बोने, फसल काटने, हल-जुवा बनाने, चारपाई बुनने, पड़ोस के गांव में जाने, प्रवास के लिए प्रयाण करने आदि प्रत्येक कार्य के लिए ज्योतिषी से शुभ दिन पूछतेहैं। कार्य आरम्भ करने से पूर्व भूमिया, गणेश, सिद्ध या क्षेत्रपाल आदि की मनौती मानते हैं और कार्यपूर्ण होने पर उन्हें धन्यवाद देतेहैं। अपनी जन्मपत्री लेकर वे सदा ज्योतिषियों से पूछताछ करतेरहतेहैं।

ग्रीष्मकाल के औडल तूफान निरन्तर खेतों को चौपट करतेरहतेहैं। हिम-तूफानों और ओलों के तूफानों से खेती में पकीहुई खेती नष्ट होजातीहै। और अनावर्षण से खेतों में उगी खेती सूखकर कृषक का सारा परिश्रम व्यर्थ करदेतीहै। इसलिए उपत्यकानिवासी 'डल्या-ओल्या' की शरण लेतेहैं जो भैरों, नृसिंह या अन्य देवताओं की मनौती मानकर तूफान बन्द करने या उचित समय पर वर्षा करने का स्वांग रचताहै[२]।

पशुचारण और कृषि के लिए उपत्यका-निवासियों को बार-बार निर्जन प्रदेशों में विचरना पड़ताहै और कई बार अंधेरी रातों को पशुओं के साथ खेतों या चराईक्षेत्रों में बितानापड़ताहै। इन क्षेत्रों में उन्हें पग-पग पर भूत-प्रेतों का अस्तित्व प्रतीत होताहै। प्रत्येक गांव में प्रत्येक मास प्रायः दो-चार स्त्री-बच्चों पर भूत-प्रेत का 'छल' (प्रकोप) होताहै जिसे दूर करने के लिए 'रख्वाली' अथवा भूत-प्रेत की पूजा की आवश्यकता पड़तीहै।

उपत्यका के संकटपूर्ण जीवन में समय-समय पर कुछ व्यक्ति पेड़ों या चट्टानों से गिरकर, पशुओं या मनुष्यों के प्रहार से अथवा स्वयं

१-१९६२ में राठ में ढड्डुवाग्राम धरती में इसी प्रकार सहसा समागया।

२-भाग ५, परिच्छेद ४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुखी होकर आत्महत्या से प्राण त्यागतेहैं। ये सब भूत-प्रेत बनकर अपने पड़ोसियों को चिपटतेहैं और 'घड्याला' रखकर इनकी हत्या पूजनीपड़तीहै[1]।

प्राचीन काल के 'भड़' या छोटे-मोटे राजा, जो शताब्दियों पहले मर चुकेथे, आज भी ग्राम-देवता बनकर उपत्यका-वासियों पर कुपित होतेहैं। उनका 'दोष' (कोप) दूर करने के लिए उपत्यका के गांव-गांव में, घड्याला रखकर उनके बाहन को नचायाजाताहै और उन्हें पशुवलि, हलुवा, खीर आदि भेंट देकर सन्तुष्ट करनापड़ताहै।

पर्वत-शिखरों, हिमानियों, महानदियों, तूफानों, ग्राम-देवताओं और भूत-प्रेतों के अतिरिक्त पशुओं के उत्पातों ने भी उपत्यका के भोले निवासियों की धार्मिक भावनाओं को प्रभावित कियाहै।

उपत्यका के केवल सातवें भाग पर कृषि होने के कारण शेष भाग पर पर्वत, वन और झाड़ियां फैलीहैं जो प्राचीन काल में आज से कई सौ गुने अधिक भीषण पशुओं से भरी थीं। वर्तमानकाल के अस्त्र-शस्त्र और साधनों से रहित प्राचीनकाल के गढ़वाली प्रति वर्ष सैकड़ों की संख्या में वनैले पशुओं के प्रहार से मारेजातेथे।

नरभक्षी व्याघ्र के आतंक से सूर्य ढलते ही गांव के सारे निवासियों के कार्यकलाप सहसा और तुरंत बन्द होजातेथे। रात्रि के आते ही सारे क्षेत्र पर गहरी निश्तब्धता छाजातीथी। कहीं कोई गति या शब्द नहीं सुनाईदेताथा। सभी व्यक्ति सावधानी से द्वार बन्द करके घर के भीतर छिपजातेथे। यदि द्वार दुर्वल होतेथे तो दिन में उन्हें सुदृढ बनाना सबसे आवश्यक कर्तव्य समझा जाताथा।[2]

१-मिलाइए, मजूमदार--उपरोक्त, पृ० २६१

२-कौरबेट--पृ० ८-९; १९६२-६३ में चौंदकोट के नरभक्षी व्याघ्र ने १५ से अधिक नारियां मारडालीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खेतों में गोठ लगाना, पयारों, बुग्यालों या खरकों में पशु चराना और देर तक अकेले खेतों में काम करना असंभव होजाताथा। नरभक्षी व्याघ्रों का यह आतंक लगातार दस-बारह वर्षों तक, तब तक चलतारहताथा जब तक व्याघ्र स्वयं नहीं मरजाताथा[1]।

गढ़वाली व्याघ्र के प्रकोप को दैवीप्रकोप समझतेहैं, और वे उसे शांत करने के लिए नरसिंह की पूजा करतेहैं। नरसिंह की वर्ष में दो बार बलि देकर अथवा हलुवा, पूरी और खीर से पूजा करना आवश्यक है। यदि परिवार में कोई व्यक्ति स्वप्न में व्याघ्र देखताहै, तो इसे अवश्य नरसिंह का कोप मानाजाताहै। और घड्याला रखकर नरसिंह के वाहन को नचाना आवश्यक समझाजाताहै।

दूसरा जीव, जिसने उपत्यका - निवासियों की धार्मिक भावना पर अपनी अमिट छाप लगाईहै, सर्प या नाग है। उपत्यका में सर्वत्र अनेक प्रकार के विषैले और विषहीन सर्प मिलतेहैं। विशालकाय अजगर केवल भाबर में ही नहीं, तुंगनाथ की सानु (१२००० फीट) तक मिलाहै[2]। इनमें से कुछ इतने विषैले और भीषण हैं कि छूते ही प्राण लेलेतेहैं।

उपत्यका-निवासियों को कृषि और पशुचारण के लिए अंधेरे में ही उठकर बाहर जानापड़ताहै और अंधेरा होजाने तक खेतों और वनों में रहनापड़ताहै। रात को अंधेरे में, घर से दूर गोठ में, पालतू पशुओं की रक्षा के लिए अथवा खेतों के 'ओड़ों' में वन्य पशुओं से खेती की रक्षा के लिए जानापड़ताहै। प्रत्येक क्षण सर्प के काटने का भय बनारहताहै।

उपत्यका के सारे वन-पर्वत सर्पों से भरे हैं। खेतों की दीवारें भी सर्पों को आश्रय देतीहैं और ये घरों में भी घुसजातेहैं।

१-कौरबेट--पृ० ८-९ २-राहुल--पृ० ३८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रति वर्ष सैकड़ों व्यक्ति और सैकड़ों पशु सर्पों से काटेजातेहैं। प्राचीन काल में सर्पों का आतंक और भी अधिक रहाहोगा[1]। इसलिए उपत्यका में गांव-गांव, घर-घर में नाग की पूजा होतीहै।

प्रत्येक गांव में किसी बड़े वृक्ष के नीचे नागदेवता का स्थान होताहै। जहां एक लोहे का त्रिशूल, एक लोहे का दो मुंहवाला नाग तथा एक लोहे का दीपक होताहै। ये तीनों वस्तुएं उपत्यका के समस्त छोटे-बड़े, नए-पुराने मन्दिरों और देवालों में मिलतीहैं। जहां मन्दिर नहीं है, वहां भी, चाहे किसी भी देवता का स्थान हो, उसके साथ लोहे का त्रिशूल, लोहे का नाग और लोहे का दीपक अवश्य मिलेंगे। इनमें लोहे का त्रिशूल नरसिंह का द्योतक होताहै और लोहे का नाग नागदेवता का।

दोनों फसलों पर नागदेवता की पूजा कीजातीहै। उसका कोप दूर करने के लिए घड्याला रखाजाताहै। यदि परिवार का कोई व्यक्ति स्वप्न में सांप देखताहै तो अवश्य नाग का कोप मानाजाताहै। नाग का कोप शांत करने के लिए सीम-मुखीम की यात्रा करनी पड़तीहै[2]। नागदेवता के नाम पर प्रति वर्ष फिक्वालों को भिक्षा देनी पड़तीहै[3]।

यदि हल चलाते समय खेत में सर्प निकलजाए और हल या बैलों को छूले तो तुरन्त हल और बैलों को त्यागना पड़ताहै। प्रायश्चित के लिए चान्द्रायण करनीपडतीहै और बादी नचानेपड़तेहैं[4]।

अलकनन्दा-गंगा ने गंगाजी के विस्तृत मैदान आर्यावर्त को उन महाशिखरों से जोड़दियाहै जिन से गंगाजी की सहायकें निकलतीहैं, और जिनके उद्गम स्थलों पर किरात-खशों ने अपने महातीर्थों की स्थापना कीहै। ज्यों-ज्यों आर्यावर्त की संस्कृति सारे भारत में फैलतीगई त्यों-

---

१-बेकेट--पृ० १५ २-भाग ५, परिच्छेद. ४
३-भाग ५, परिच्छेद, ४ ४-भाग ५, परिच्छेद ४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्यों सारे भारत के हिन्दुओं में किरात-खशों के इन तीर्थों की यात्रा का प्रचार बढ़नेलगा[१]।

घाटियों में निरन्तर मनुष्यों की लहरें आती रहने से उनमें नवीनता आतीरही और नदी-घाटियों और सलाणप्रदेश के निवासियों पर धीरे-धीरे शास्त्रीय हिन्दुधर्म का कुछ रंग चढ़नेलगा। भोटांतिक घाटियों, महाहिमालय की ढालों और लघुहिमालय के पठारों पर उसके केवल कुछ छींटे ही पहुंचसके। इन क्षेत्रों के पशुचारक अपने ग्राम देवताओं और भूत-प्रेतों की पूजा में ही मग्न रहे।

इन पठारों के एकान्त और सम्पर्कहीन जीवन में प्रतिभा के विकास की सुविधा नहीं रही। अन्य पठारों के समान[२] ये पठार भी कठोर श्रम और अति अल्प आराम के, आज दरिद्रता और कल चिंता के क्षेत्र बनेरहे। उनके निवासी विश्रान्त अंगों और श्रमक्लान्त मस्तिष्क वाले होने के कारण उन्नतिपथ पर अग्रसर न होसके।

प्रकृति के उग्र और सौम्य रूपों से प्रभावित होकर उपत्यका-निवासी जहां अन्धविश्वासी और रूढ़िवादी बनेहैं, वहां उनमें गहरी श्रद्धा और भक्ति की भावनाएं भी उत्पन्न हुईहैं। प्राचीन आदर्शों के प्रति उनके हृदय में बहुत झुकाव मिलताहै[३]। उनकी अन्ध श्रद्धा-भक्ति से कभी-कभी दंभी व्यक्ति अनुचित लाभ भी उठातेहैं।

उनकी धार्मिक भावना वड़ी तीव्र होतीहैं। उन्हें सदा यह ध्यान रहताहै कि कोई न कोई दैवीशक्ति प्रति क्षण और प्रत्येक स्थान पर उनके भले-बुरे कार्यों को देखरहीहै। इसलिए वे प्रायः सत्यवादी होतेहैं। सौगंध लेकर वे झूट नहीं बोलसकते[४]।

१-भाग ४, परिच्छेद १ २-सेम्पल--पृ० २०

३- पातेराम -- पृ० १२४

४- 'In dealings they are honest and trustworthy, in pecuniary transactions with one-another the

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वे अपने अनेक झगड़े केवल सौगंध या दिव्य-साक्ष्य पर ही निपटा लेतेहैं[1]। जब कोई उन पर अत्याचार करताहै तो वे प्रायः किसी देवता को अपनी कष्ट-गाथा सुनातेहैं और उसीसे अपने विरोधी को दण्ड देने की प्रार्थना करतेहैं।

सर्वत्र देवताओं की उपस्थिति की भावना उन्हें दूसरे की वस्तुएं उठाने से रोकतीहै[2]। वे चोरी नहीं करते और अपने घरों पर ताले बहुत कम लगातेहैं[3]। परदेश में भी वे अपनी सच्चाई और ईमानदारी का सदा ध्यान रखतेहैं[4]। दूसरे को धोका देने, ठगने और छल-कपट करने से वे सदा घबरातेहैं। उनका विश्वास है, 'जो जैसा करेगा वैसा भरेगा।'

---

villagers have no recourse to written engagements'-- पातेराम--पृ० १२६

१- देखिए, Whally - Law of Extra- regulation Tracts, Appendix K, x, Paras १६, १७, ३८

२- 'The total absence of theft and extreme morality of the people in this province renders any provisions in regard to police unnecessary.' - Traill का लेख उ०, पातेराम--पृ० १२६; Whally -- उपरोक्त, पैरा ३५.

३- 'Their honesty is beyond question. A verbal bargain is seldom repudiated and theft is almost unknown.'--Walten-District Gazetteer, Garhwal, page ६८.

४- 'There was scarcely a more peaceable or honest race in the world.' Rev. R. Herbar का लेख, उ० जोशी -- खस फेमली लौ -- पृ० २३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कठोर भूगोलिक परिस्थिति उन्हें बचपन से ही कष्ट सहने की असीम शक्ति प्रदान करतीहै। वे विपत्ति में घबराकर हाथ-पैर नहीं छोड़ते। उनमें थोड़े - से साधनों से ही अपने अनेक काम निकालने की विलक्षण सूझ-बूझ पाईजातीहै।

नंगी धरती पर सोना, भार लेकर टेढ़े-मेढ़े मार्गों पर चलना, चढ़ाई-उतार से न घबराना, निर्जन वनों में एकाकी रात्रि बिता देना, रूखे-सूखे भोजन से और भोजन सामग्री के अभाव में कन्द, मूल, फलों से ही अपना निर्वाह करलेना, इस प्रकार के कठोर जीवन की शिक्षा में पले होने के कारण वे प्रत्येक परिस्थिति को अपने अनुकूल बनालेतेहैं।

निर्जन वनों में पशुचारण करते समय तथा खेतों और वनों में विचरण करते समय उन्हें बार-बार वनैले पशुओं से भिड़ना पड़ताहै। वे साहसी और निर्भीक होतेहैं। गढ़वाली सैनिकों ने अपने साहसी कृत्यों से महायुद्धों में भारत का मस्तक उज्ज्वल कियाहै। उनकी गिनती संसार के सर्वोत्तम सैनिकों में कीजातीहै[१]।

१- 'Wherever they have been tried they have shown themselves almost equal to Europeans in bravery, and in every other quality of a soldier may certainly challenge any portion of native army, for each of these simple mountaineers has hidden away within his inner consciousness that little spark, perhaps dulled by disuse or oppression, which represents the fiercely burning flame of military ardour and that burnt in the breast of some old ancestor.'--Historical Record of 39th Garhwal Refles, पृ० ८, उ० जोशी, खश फेमली लौ-पृ०२४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईमानदारी, सूझबूझ और साहस के कारण बर्मा, मलाया, बंगाल, असम, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश और आंध्र आदि प्रदेशों की पुलिस में उनकी बड़ी मांग रहतीहै ।

वे कर्तव्यपरायण, कार्यकुशल और आज्ञापालक होतेहैं । कठोर से कठोर परिस्थिति में भी वे सौंपेगए काम को डटकर पूर्ण करतेहैं । वे अथक परिश्रमी होतेहैं और अपनी सुख-सुविधाओं और शारीरिक कष्टों की चिन्ता न करके प्रति दिन १५-१६ या अधिक घण्टों तक काम करतेहुए मिलतेहैं ।

किन्तु संकीर्ण प्राकृतिक सीमाओं ने उन्हें संकीर्ण मनोवृत्ति वाला बनादियाहै ।

उपत्यका में प्रत्येक गांव एक संकरी घाटी में, या ऐसी पर्वतीय ढाल पर बसाहै, जिसके दो, तीन या चारों ओर ऊंचे डांडे खड़ेहैं । प्रत्येक गांव में कुछ डांडों की छाया पूर्वाह्न में गांव के अधिकांश पर फ़ैलकर प्रकाश और धूप को रोके रखतीहै, तथा कुछ डांडों की छाया अपराह्न में गांव के अधिकांश पर फैलकर धूप और प्रकाश को शीघ्र समाप्त करदेतीहै ।

मध्याह्न से पूर्व एक डांडे की छाया में, और मध्याह्न के पश्चात् दूसरे डांडे की छाया में रहनेवाले उपत्यकावासियों की दृष्टि सदा अपने पड़ोसियों की त्रुटियां ढूंढने में ही लगीरहतीहै । किसी कार्य या योजना के उज्ज्वल स्वरूप की उपेक्षा करके वे उसमें सदा छिद्रान्वेषण करते और उसके केवल अन्धकारपूर्ण पहलू को ही देखतेहैं ।

उनमें ईर्ष्या की भावना बड़ी प्रबल होतीहै । अपने बीच यदि वे किसी को उन्नति करते पातेहैं, तो उसका अनुकरण न करके उसे नीचे गिराने का, या उसकी उन्नति में बाधा डालने का पूरा प्रयत्न करतेहैं[1]।

१-'They are envious of the prosperity of their neighbours and will resort to every possible means for harming them'.--पातेराम--पृ० १२६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने पड़ोसियों की दुर्दशा देखकर उन्हें हर्ष होताहै[1]।

सारी उपत्यका में ऐसे गांवों की संख्या अति अल्प है, जिनसे निकट के दो-चार गांव दिखाईदेसकें। इससे गांव वालों का संसार उनके गांव तक ही सीमित रहताहै। उनकी भावनाएं सकुचित और स्वार्थी होजातीहैं[2]।

पर्वतीय प्रदेशों में जीवन की आवश्यक वस्तुएं कठिनाई से प्राप्त होतीहैं। खेतों की सीमा, घास के वृक्ष, चराईक्षेत्र, जलाशय आदि के लिए निरन्तर आपस में कलह होतेरहतेहैं[3]। उपत्यका में पास्परिक द्वेष, कलह, विवाद, मारपीट और न्यायालय की शरण ग्रामीण जीवन के आवश्यक अंग बनगएहैं[4]।

दूसरे को हानि पहुंचाने की दृष्टि से उसकी झूटी-सच्ची शिकायतें

१- 'गांव मां ब्याऊ। मेरा आंख मां डाऊ॥'
'रूपसिंघ क खावन। भूपसिंघ क उस्यावन॥'
'स्वऽरो पैलि त बांजी करो। निथर पछौ करो॥'
'स्वऽरो क स्वऽरो काल। लोह क लोह काल॥'
'भाई क सुसरास। दाथुड़ी की पीठ॥'
'खांद की जऽल। उगटद् की सेल्॥'--लोकोक्तियां

२- मिलाइए, सेम्पल-पृ० ५९१; तथा 'They are envious of each other, prone to equivocation, and petty cunning, capable of gross falsehood'--ट्रेल का लेख, उ० पातेराम - पृ० १२७

३- सेम्पल - पृ० ५८६

४- 'In parts of the district they are litigious, and given to prefering groundless and exaggerated complaints.'--ट्रेल-उ०--पातेराम, पृ० १२७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने में, उन्हें विशेष आनन्द आताहै। सम्पत्ति या अपने पद के मद में वे दूसरों को हानि पहुंचातेहैं, और नम्रता को खोबैठतेहैं[1]।

विभिन्न एवं एक-दूसरे से असम्बद्ध तथा पृथक् शैलियों या पहाड़ी ढालों पर बसे गांवों की परिस्थिति पृथकता और ऊंच-नीच की भावना को प्रोत्साहन देतीहै। जातियों के अन्तर्गत अनेक उपजातियां बनगईहैं, जो एक-दूसरे से छोटी-बड़ी समझीजातीहैं। विवाह और खानपान के समय इसका बड़ा ध्यान रखाजाताहै।

गांव में विभिन्न जातियों के मकान प्रायः गांव के पृथक भागों में बनाएजातेहैं और पृथक 'खोल' के नाम से प्रसिद्ध होतेहैं[2]। अनेक गांवों में प्रायः एक ही जाति के लोग बसे मिलतेहैं, और गांव के एक पृथक् भाग में डोम-हरिजनों की बस्ती होतीहै। इससे सामाजिक नेतृत्व प्राप्त करने के लिए विभिन्न जातियों के बीच कलह पैदा करने की प्रचुर सुविधा मिलतीहै[3]।

१- 'He is often a miserable creature, habitually complaining and often, when not under proper care and control, is subject to poverty and truculent, offensive in prosperity or when in enjoyment of a little brief authority.'
--ट्रेल का लेख, उ० पातेराम, पृ० १२७

२- 'जैसे 'बामण खोल' = ब्राह्मणों की बस्ती

३- ऐसे खशिया दुज हैं गढ़ के। जानत हैं घर ही में लड़ि कै॥
एक की एक करैं चुगली मुगली बहु पेचन में बढ़ि कै।
पर काज बिगारत हैं, अपनो सिर पाप चढ़ावत है अड़ि कै॥
याहि ते यह गढ़वाल गयो, कटि आपस मांहि मरैं लड़ि कै॥
कवि 'मौलाराम' विचार कही, ऐसे खशिया दुज हैं गढ़ कै'॥
--मौलाराम--गढ़-राजवंश का इतिहास, उ० राहुल--पृ० १५७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने पर्वतीय द्वीप के अन्दर पशुचारण और कृषि में संलग्न उपत्यका-निवासियों की जनसंख्या उनके पशुओं के समान वेग से बढ़ने लगी और उपत्यका में प्राचीन काल से ही जीवन - निर्वाह की समस्या जटिल होनेलगी।

प्रकृति की विकराल शक्तियों से सदा आतंकित रहनेवाले ये पशुचारक-कृषक सदा भाग्य के भरोसे रहतेथे और प्रकृति के प्रकोपों को रोकने में सर्वथा असमर्थ थे। इसलिए जनसंख्या के भार को हलका करने में प्रकृति का महत्वपूर्ण हाथ होताथा।

भोटांतिक और खड्वाल-प्रदेश में हिमपात और हिमानीपात से सैकड़ों व्यक्तियों के प्राण जातेथे[1]। खरक-प्रदेश और सलाण में नदियों और तालाबों की बाढ़ों[2] तथा पर्वतपात से सैकड़ों व्यक्ति प्राण खोतेथे। पर्वतों और वृक्षों से गिरकर सैकड़ों व्यक्तियों की मृत्यु होतीथी[3]।

तीर्थयात्रा - मार्गों पर तथा अन्यत्र, कहीं न कहीं, नरभक्षी व्याघ्र चीता या भालू के द्वारा सैंकड़ों व्यक्ति प्रति वर्ष मारेजातेथे[4]। उनके आतंक से घर से बाहर निकलना, हल चलाना और पशु चराना असंभव होजाताथा, तथा गांव उजाड़ होजातेथे[5]।

गड्डियों में सर्पों और बिच्छुओं के उत्पात से गांव उजाड़ होजाते थे[6]। भूचाल में कभी-कभी सहस्रों व्यक्ति प्राण खोतेथे।[7] १८०३ के भूचाल में श्रीनगर के आस-पास की ७५ प्रतिशत जनसंख्या नष्ट होगईथी[8]।

हैजा, ताऊन, चेचक और प्लेग से प्रति वर्ष सहस्रों व्यक्ति मरतेथे[9]।

१-प्रणवानन्द--लेख, नवभारत टाइम्स, ६-२-५६

२-बेकेट--पृ० ३५; राहुल--पृ० १६, ३३२

३-बेकेट--पृ० ३५

४-कौरबेट--पृ० ५

५-एटकिनसन--जि०२, पृ०१५

६-बेकेट--पृ० २२

७-मौलाराम--उ० राहुल--पृ० २०६

८-एशियाटिक रिसर्चेज--जि०११ तथा ओकले--पृ०१५०

९-देखिए, डबराल-पृ० ४६६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीवन इतना संकट पूर्ण था कि प्रति वर्ष अगणित व्यक्ति अकालमृत्यु और आत्मघात से मरतेथे। इस प्रकार मरे व्यक्तियों की हंत्या आज भी उपत्यका में घर-घर पूजीजातीहै। हंत्या के जागरों में जागरी आह्वान करताहै :--

'अहो, ध्यान से जागो, ध्यान से जागो !

जो नदी में डूबी आत्माएं हैं, उनका ध्यान जागे !

जो 'ढ़ंगार' से गिरी आत्माए हैं, उनका ध्यान जागे !

जो सर्प से डसी आत्माएं हैं, उनका ध्यान जागे !

जो फांस खाकर मरेहैं, उनका ध्यान जागे[1]' !

अन्य पर्वतीय द्वीपों के समान[2] उपत्यका में भी जनसंख्या की वृद्धि रोकने के लिए अनेक सामाजिक प्रथाएं प्रचलित थीं। द्रोपदी-विवाह (भ्राताओं की साझी पत्नी) की प्रथा, जो आज भी उपत्यका के पश्चिमी भागों के खड्वालों और खशों में प्रचलित है, पहले सर्वत्र व्यापक रूप से प्रचलित थी[3]। यह प्रथा उन समाजों में विशेष रूप से प्रचलित थी जिनमें प्रव्राजी घोषयात्रा और घोषयात्रा का प्रचार था[4]।

सम्पत्ति का बंटवारा नहीं होताथा। सारी सम्पत्ति ज्येष्ठ पुत्र की मानीजातीथी। इस प्रथा के अवशेष अब तक 'जेठुंडा' और 'जिठाली' के रूप में चलेआतेहैं[5]। सौतिया बांट[6] प्रथा सम्पत्ति का बंटवारा रोकतीथी। उसी व्यक्ति की सम्पत्ति बंटसकतीथी जिसकी एक से

१-चातक--पृ० ३६ २-सेम्पल--पृ० ५८२

३-ओकले ऐंएड गैरोला--अनु० पृ० १५, तथा बेकेट--१८४१ की जनसंख्या के आंकड़े, पृ० २६

४-देखिए, प्लोडेन--जि० ३, पृ० CLV

५-देखिए, पन्नालाल--पृ० ४; जोशी--पृ० २८०

६-देखिए, पन्नालाल--पृ० ४; जोशी--पृ० ६२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिक पत्नियां होतीथीं । एक माता से उत्पन्न पुत्रों की साझी सम्पत्ति और साझी पत्नियां होतीथीं[१] ।

यूरोप के पर्वतीय भागों में प्रचलित साधु बनने की प्रथा के समान,[२] उपत्यका में भी जोगी-जोगिणी बनने की व्यापक प्रथा थी। साधुओं की झोली में पुत्र-पुत्रियां चढ़ाने की प्रथा सर्वत्र प्रचलित थी। इन जोगियों द्वारा बसाएहुए सैकड़ों जोग्याणा, डल्याणा, जोगीमढ़ी आदि नामों वाले गांव आज भी उपत्यका में सर्वत्र मिलतेहैं[३] ।

खड्वालों और खशों में ज्येष्ठ पुत्रियों को देवताओं के मन्दिरों में चढ़ाने की व्यापक प्रथा थी। बदरीनाथ, तुंगनाथ, कालीमठ आदि सारे प्रसिद्ध मन्दिरों में चढ़ाईगई बालिकाएं देवदासी और धार्मिक वेश्या का कार्य करतीथीं[४] । देवचेलियां बनाने के लिए राणीहाट में कुमारियों का मेला लगताथा[५] ।

देवताओं के मन्दिरों में पुत्र भी चढ़ाएजातेथे। नीतीघाटी के बलगांव के मन्दिर में इस शताब्दी के चतुर्थांश तक यही प्रथा थी। उपत्यका में ऐसे सैकड़ों बल्लगांव (बाल गांव) थे, जो अब भलगांव कहलानेलगे हैं।

नरवलि का व्यापक प्रचार था। मन्दिरों में तथा नहरें निकालने के लिए नरवलि दीजातीथी[६] । आवेश में आकर सास बहू को, पति-पत्नी को, अथवा पत्नी और उसके जार को मारसकतेथे[७] ।

आत्महत्या करने का बड़ा प्रचार था। महापंथ से हिमानी पर कूदकर आत्महत्या करना बड़ा प्रशंसनीय कृत्य मानाजाताथा[८] । मैदानी यात्री भी इसमें भाग लेतेथे[९] । अकेले १८२९ में १५०००

१-देखिए, प्लोडेन--जि० ३, पृ० CLV २-सेम्पल -- पृ० ५८२

३-देखिए, प्रसाद- विलेज डाइरेक्टरी, गढ़वाल तथा टिहरी

४-डबराल--पृ० १६६; देखिए एटकिनसन, जि० ३, पृ० २३-२५

५-डबराल--पृ० ६५२ ६-चातक--पृ० २८१ ७-देवर--पृ० ४५१-५२

८-ओकले--पृ० १५०-१५१ ९-डबराल--पृ० ३०९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यक्ति महापंथ से कूदेथे[१]। सैकड़ों नर-नारी दुखी होकर गंगाजी में कूद पड़तेथे[२]।

अन्नकाल में सहस्रों व्यक्ति तड़प-तड़प कर मरजातेथे। लोग अपने स्त्री-बच्चों को वेचदेतेथे[३]। दास-दासियों के रूप में नर-नारियां वेचने की प्रथा व्यापक रूप से प्रचलित थी[४]। जिसका पुत्रादि उत्तराधिकारी न होताथा, ऐसे 'औते' की पत्नी और पुत्रियों को राजा या थोकदार नीलाम करदेतेथे। डोम हल्या सपरिवार खरीदे और बेचेजातेथे। गोरखों ने अपने १४ वर्ष के राज्यकाल में लगभग दो लाख गढ़वाली दास-दासियों का हर की पैड़ी पर नीलाम कियाथा[५]।

प्राकृतिक कोप, सामाजिक प्रथाएं, युद्ध और दास-प्रथा जनसंख्या के भार को हलका करतेथे। बहु विवाह, दासता--प्रथा और वेश्यावृत्ति से पर्याप्त जनसंख्या को भोजन मिलताथा।

फिर भी सहस्रों व्यक्ति शीतकाल में भिक्षायाचन के लिए दूर-दूर तक पहुंचतेथे[६]। अनेक व्यक्ति फिक्वालों के समान कांवर लेकर गंगाजल वेचने जातेथे[७]। गंगातट पर रहनेवाले जोगी और उनकी सन्तान भिक्षा मांगकर निर्वाह करतेथे। भिक्षा, ज्योतिष और कर्मकांड के लिए ब्राह्मण और नृत्य-गान से मांग--खाने के लिए डोम--नर्तक वड़ी संख्या में इधर-उधर भटकतेथे।

कत्यूरी और पंवारयुग में पशुचारण और कृषि के अतिरिक्त आजीविका के दो मुख्य आधार थे, (१) हूणदेश से व्यापार और (२) मन्दिरों में सेवाकार्य।

भोटांतिक घाटियों के तंगण-परतंगण व्यापारी हूणदेश से नमक

१-डबराल--पृ० ३०९ २-बेकेट--पृ० ३५; चातक--पृ० ३६

३-चातक--लोक-गाथाएं, पृ० १८७; राहुल--पृ० २११

४-विलियम्स--पृ० १२३ ५-विलियम्स--पृ० १२३

६-केदारखंड--अ० ६२ ७-स्लीमैन--जि० १, पृ० २६०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुहागा, सोना और चमर लाकर बेचतेथे[1]। ये आज के भोटांतिकों के समान संकीर्ण मार्गों पर मेंढ़े-बकरों पर भारवहन करतेथे। ये सीधी खड़ी चट्टानों पर चढ़ने और चमड़े के पैराशूट के द्वारा पर्वतशिखरों से नीचे उतरने की कला में दक्ष थे।[2]

मन्दिरों से सहस्रों व्यक्तियों की आजीविका चलतीथी। मूर्तियों और मन्दिरों के निर्माता वास्तुकारों, मन्दिरों में सेवा करनेवाले पुजारियों, बाजा बजानेवाले औजियों और देवदासियों का निर्वाह मन्दिरों से होताथा[3]। मन्दिरों में प्रति दिन सैकड़ों व्यक्तियों को निशुल्क भोजन मिलताथा[4]।

अंग्रेजी राज्यकाल में नये मन्दिरों का निर्माण बन्द होगया। मन्दिरों की भूसम्पति पर सरकार ने अधिकार करलिया और देवदासी प्रथा समाप्त करदी। इससे मन्दिरों के आश्रय पर रहनेवाले पुजारियों, औजियों, नायक-पातरों तथा मूर्तिनिर्माताओं की आजीविका के पिछले ढंग समाप्त होगए। उन्हें जीवन-यापन के नए ढंग अपनानेपड़े।

अंग्रेजी राज्यकाल में उपत्यका में सुव्यवस्था की स्थापना हुई। दास-व्यापार, नरवलि तथा सामान्य कारणों से मनुष्य की हत्या आदि प्रथायें बन्द करदीगई। महामारियों और रोगों की रोकथाम की गई और कृषि का उत्पादन बढ़ाने के लिए उपत्यकावासियों को प्रोत्साहित कियागया[5]।

सुव्यवस्था और सुरक्षा मिलने पर उपत्यका की जनसंख्या वेग से बढ़नेलगी। उसने सैकड़ों एकड़ भूमि से झाड़ियां काटकर तथा पर्वतीय ढालों को खोदकर भीड़े वाले खेत बनाडाले[6]। बन्दूकें प्राप्त होजाने से सहस्रों बनैले एवं हिंसक पशुओं को मारडाला[7]। उनमें आत्म विश्वास

१-देखिए, भाग २
२-देखिए, मोतीचन्द्र--सार्थवाह पृ० १४०
३-डबराल--पृ० ४५६-४६५
४-भाग ५, परिच्छेद, १, ४
५-पातेराम - पृ० २१२-२१३
६-बेकेट--पृ० ३
७-बेकेट--पृ० ३५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्पन्न होगया और वे पूरी निष्ठा और श्रम से कृषि और पशुचारण में जुटगए [१]।

उन्हें वनों में चराई के अधिकार दिएगए तथा अपने गांव की सीमा पर स्थित वनों से ईंधन, घास, बांस आदि आवश्यक वस्तुएं लेने की छूट देदीगई। कृषिक्षेत्र में वेग से वृद्धि होनेलगी। जहां पहले 'ग्वार' या 'खरक' थे, वहां गांव बसगए और ऐसे स्थानों पर भी गांव बसगए जहां पहले निरे जंगल थे[२]।

अंगरेजी राज्यकाल के प्रथम पचास वर्षों को (१८१५ से १८६४) उपत्यका में *'ग्राम और कृषि-विस्तार का युग'* मानाजासकताहै। इस युग में जनसंख्या, गांवों की संख्या और कृषि-भूमि में वेग से वृद्धि हुई :-

गढ़वाल (चमोली सहित)[३]

वर्ष	जनसंख्या	गांवों की संख्या	कृषिभूमि बीसी (२० नाली)
१८२२		२६२९	५७४३२
१८२४		२९२९	७६३४०
१८४०		४१०३	८९६५३
१८४१	१३१९१६	४१०३	८९६५३
१८५३	२३५७७८	४१०३	
१८५८	२३३३२६		
१८६४	२४८७४२	४३९५	१४९३७९

१८६४ तक सभी बसने योग्य स्थानों पर गांव बसचुकेथे। उपत्यका में नए गांव बसने योग्य भूमि शेष न थी। अब गांव की सीमा के अंतर्गत *'वन-विनाश से कृषि-विस्तार का युग'* प्रारंभ हुआ।

१-बेकेट--पृ० ३
२-बेकेट--पृ० ३
३-बेकेट--पृ० ५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गढ़वाल (चमोली सहित)[1]

वर्ष	जनसंख्या	गांवों की संख्या	कृषिभूमि, बीसी
१८६५	२४८७४२	४३९५	१४६३८६
१८७२	३१०२८२	४३९५	
१८८१	३४५६२६	४३९५	
१८९१	४०७८१८	४३९५	
१८९४	३९८६५०	४३९५	२८३१७६
१९०१[2]	६९८३१५	४३९४	२८३१५६
१९११[2]	७८०४६०	४३९४	२८३१५६
१९१४[2]	७८०४६०	४३९४	२८३१५६

जनसंख्या की वेग से वृद्धि, जीवन यापन - की पद्धति में अन्तर, शिक्षा का प्रचार तथा दूसरों के सम्पर्क में आने से उत्पन्न जाग्रति के कारण केवल कृषि और पशुचारण से निर्वाह असम्भव होगया। और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अवकाश के समय कुछ न कुछ कमाने की आवश्यकता बढ़नेलगी।

उपत्यका के निवासी विक्रय के लिए अपने खेतों में अदरख, हल्दी, लाल मिर्च और ओगल आदि उगानेलगे[3]। उपत्यका के अदरख की बड़ी मांग थी[4]। खड्वाल और खरक-प्रदेश के निवासी आलू बेचकर तथा सलाण के निवासी अदरक और मिर्च बेचकर अपनी आवश्यक वस्तुएं खरीदनेलगे[5]।

बाज पक्षी, कस्तूरी, च्यों, गुच्छी, जड़ी-बूटियां, चमड़ा और कपड़ा रंगने के लिए छालें, गोंद, मोम, शहद, बिरोजा, अखरोट, भोजपत्र, हुक्के की नलियां और बांसुरियों के लिए रिंगाल बेचकर उपत्यका-

१-पौ--पृ० ६६ २-सारी उपत्यका की जनसंख्या
३-विलियम्स--पृ० ११०; बेकेट--पृ० १२; पौ--पृ० २७; इवेटसन-पृ० १
४-बेट--जि० ६, भाग ४, पृ० ३६३ ५-पौ० पृ० २७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निवासी कुछ धन प्राप्त करलेतेथे[१]। इन वस्तुओं को वेचने के लिए उपत्यका के निवासी 'ढ़ाकरियों का झूंगा' (दल) बनाकरचलतेथे और भावर की मंडियों से नमक, गुड़, कपड़ा आदि खरीद लातेथे[२]।

वे शीतकाल में तराई या भावर में तथा ग्रीष्मकाल में नैनीताल, मसूरी और चकरौता में झंपानी बनने के लिए जानेलगे[४]। अंगरेजी राज्य में सड़कों में सुधार होने और सुव्यवस्था बढ़ने के कारण तीर्थ-यात्रा मार्गों पर भार ढोने, चट्टी बनाने और पंडाचारी करने का अवसर मिलनेलगा[५]।

१८५८ से कमिश्नर रैमजे ने उपत्यका के वनों की सुव्यवस्था आरम्भ की। वनों में सड़कें बनाने, वृक्षों पर संख्यासूचक घन लगाने, झाड़ियां काटने और अग्नि से वनों की रक्षा करने के लिए सहस्रों व्यक्तियों की आवश्यकता पड़नेलगी। इससे उपत्यका के निवासियों के लिए ऋतुकालीन प्रवास पर आजीविका कमाने का एक महत्वपूर्ण साधन निकलआया।

सन १९१५ से उपत्यका में एक नया युग आरंभ हुआ जिसे 'चराचरी (जाग्रति) का युग' कह सकतेहैं। प्रथम महायुद्ध में ब्रिटिश सरकार को हृष्ट-पुष्ट, स्वाभिभक्त, आज्ञापालक एवं सस्ते सैनिकों की आवश्यकता पड़ी। इससे २५-३० सहस्र गढ़वालियों को सेना में भरती होकर देश-विदेश देखने का अवसर मिला। गढ़वालियों ने युद्ध में अपनी निष्ठा और योग्यता दिखलाई। उन्होने अपने वीर कृत्यों के लिए दो विक्टोरिया क्रास तथा अनेक पुरष्कार और उच्च पद प्राप्त किए।

उनमें आत्मविश्वास और आत्मगौरव जागउठा। युद्ध की समाप्ति

१-विलियम्स--पृ० ११०; पौ--पृ० ३० २-पौ--पृ० २७
३-पौ--पृ० २८ ४-पौ--पृ० ३०
५-भाग ५, परिच्छेद १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर उपत्यका में दो बड़े महत्वपूर्ण आन्दोलन चले।

पिछली भू-व्यवस्था के अनुसार सरकारी कर्मचारियों तथा उनके भार को ढ़ोना ग्रामीणों के लिए अनिवार्य था। इस कुली-उतार-प्रथा का विरोध कियागया और सरकार को यह प्रथा हटानीपड़ी[१]।

दूसरा प्रबल आन्दोलन, जिसने उपत्यका के आर्थिक और सामाजिक जीवन में नया मोड़ उत्पन्न करदिया, डोम-शिल्पकारों का डोला-पालकी-आन्दोलन था। आर्यसमाज के प्रचार से हरिजनों ने अपने पुत्र-पुत्रियों के विवाह डोला-पालकी पर करने आरम्भ करदिए। वे अपने नामांत में 'सिंह' लगानेलगे।

उन्होंने अपने पिछलों के समान सवर्णों के विवाह में डोला-पालकी ढोना, मरेहुए पशुओं को फेंकना आदि सेवाएं त्याग दीं। वे स्वच्छ रहनेलगे, उत्तम वस्त्र पहननेलगे तथा अपने पुत्र-पुत्रियों को शिक्षा देनेलगे। उन्होंने मरेहुए गाय-भैंसों का मांस खाना त्यागदिया। अब वे डोम के स्थान पर 'शिल्पकार' कहलानेलगे।

शिल्पकारों के पास भूमि कम होने के कारण उनमें प्रवास पर जाकर कमाने की प्रथा बहुत बढ़गई। शिल्पकारों के द्वारा जो अनेक सेवाएं त्याग दीगईं उन्हें करने के लिए नेपाल से भारी संख्या में डोटियाल आनेलगे[२]।

चराचरी के इस युग में इस पर्वतीय द्वीप की जनसंख्या इतने वेग से बढ़ा कि अन्य पर्वतीय क्षेत्रों के समान यहां भी उत्पादन के साधन इस दौड़ में पिछड़गए, और प्रत्येक परिवार से कम से कम एक पुरुष को प्रवास में जाकर आजीविका जुटाना आवश्यक होगया[३]।

१-देखिए, ह्वेटसन--पृ० ४; स्टोबेल--पृ० १३६

२-देखिए, भाग ५, परिच्छेद ३

३- मिलाइए, 'The obvious and persistent fact of

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपत्यका के चारों जिले

वर्ष	जनसंख्या
१९२१	८०३६००
१९३१	८८३४५८
१९४१	९९९४८४
१९५१	१०३१६७२
१९६१	१२०१७८१

१९४८ में उपत्यका का पश्चिमी भाग टिहरी भी एक पृथक जिला बनगया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के आन्दोलन में उपत्यका ने भी प्रशंसनीय त्याग कियाथा और उपत्यका के निवासियों को भी आशा थी कि स्वतन्त्रता मिलने पर उनकी ओर विशेष ध्यान दियाजाएगा। किन्तु १९५१ तक प्रतीक्षा करने पर भी आशा पूर्ण न हुई। १९५१ से जो युग आरम्भ हुआ उसे *'निराशा का युग'* कहसकतेहैं।

उपत्यका के प्राकृतिक साधनों के विकास के लिए अब तक बहुत थोड़ा कार्य कियागयाहै। मरोड़ा डाम की योजना, जिससे गढ़वाल की जनता को अधिक आजीविका मिलने की आशा थी, स्थगित करदीगईहै। उपत्यका की खनिज सम्पत्ति, जलशक्ति और वनस्पत्ति के विकास के लिए अभी तक कुछ भी नहीं हुआ। सरकार ने कोई ऐसी योजना नहीं बनाईहै जिससे अधिकांश उपत्यकावासियों को उपत्यका में ही आजीविका कमाने का अवसर मिलसके।

---

mountain economy is scanty food supply secured by even the most intelligent and untiring labour and a fixed tendency to over population. The simplest remdey for this evil is emigration, a fact which Malthus observed.'

—सेम्पल पृ० ५७१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इससे उपत्यकावासियों की बढ़तीहुई जनसंख्या के साथ बेकारी, प्रवास, पारिवारिक उलझनें तथा नवयुवक-युवतियों के कष्ट वेग से बढ़रहेहैं[1]। बाहर से उन्नत दिखाईदेनेवाले समाज का हृदय दुखों की वेदना से छटपटारहाहै।

शताब्दियों तक इस पर्वतीय द्वीप की घाटियों और पर्वतीय ढालों पर कृषि और पशुचारण के एकान्त जीवन में संलग्न रहने के कारण उपत्यकावासी अपने कष्टों को, और अपने हृदय की भावनाओं को दूसरों के पास व्यक्त करने में असमर्थ रहतेहैं। इसलिए सरकार भी उनकी ओर कम ध्यान देतीहै, और प्रवास में भी उन्हें मौन और शांत रहकर अपने कष्ट झेलनेपड़तेहैं।

शताब्दियों तक पर्वतीय द्वीप की निश्चित सीमाओं के अन्दर घिरे रहने के कारण उनका सीमित दृष्टिकोण होताहै। वे उपत्यका को अपना एक पृथक 'मुल्क' मानतेहैं, जिसे वे 'गढ़देश' नाम देतेहैं और अपने को, अपने पड़ोसी जिलों के निवासियों से भिन्न एक पृथक 'गढ़वाली' जाति का मानतेहैं। वे मैदानवासियों को देशी अर्थात् परदेशी समझतेहैं।

उन्हें अपनी नदी-घाटियों और पर्वत-कन्दराओं से, अपने टेढ़े-मेढ़े खेतों और छोटे-छोटे गांवों से अत्यधिक स्नेह होताहै। जब जीवन-यापन की समस्याएं उन्हें बार-बार उपत्यका से बाहर भटकने के लिए बाध्य करतीहैं, तो वे नए समाज में, चौकोर ईंट की दीवार में 'गंगलोड़ा' (गंगातट का गोलमटोल पत्थर) के समान घुलमिलकर अभिन्न बनने में असमर्थ रहतेहैं।

सैकड़ों व्यक्तियों के बीच उन्हें तुरन्त पहचाना जासकताहै। वे अपने में ही लीन और गंभीर बनेरहतेहैं और केवल गढ़वालियों के बीच ही अपने को खुलकर व्यक्त करपातेहैं।

१-देखिए, भाग ५, प्रवास के व्यापक प्रभाव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व होताहै। वे स्वात्माभिमानी होतेहैं। दूसरों के साथ भलीप्रकार घुलने-मिलने में असमर्थ होने तथा सदा गम्भीर बने रहने के कारण अपरिचित व्यक्तियों को उनमें अहमन्यता प्रतीत होतीहै[१]।

वे सीधे-सादे और अक्खड़वृति वाले होतेहैं। वे अपरिचित व्यक्तियों को सदा शंका की दृष्टि से देखतेहैं। उनके द्वारा तनिक-सी आलोचना से वे अत्यधिक प्रभावित होजातेहैं और साधारण-सी मजाक से अत्यधिक चिढ़जातेहैं[२]।

प्रवास में, उपत्यका से बाहर, उन्हें निरन्तर अपने गांवों और परिवार की 'खुद' (तीव्र स्मृति) व्याकुल करतीरहतीहै। वे यथासंभव उपत्यका से ही चिपकारहना चाहतेहैं। वे दूर की उर्वरा एवं मैदानी भूमि की अपेक्षा पास की कंकड-पत्थरों से भरी भूमि से अपना सम्बन्ध रखना उचित समझतेहैं[३]। यद्यपि जीवननिर्वाह के लिए उपत्यका के अधिकांश पुरुषों को प्रवास में दूर-दूर तक जानापड़ताहै किन्तु अपनी मातृभूमि का प्रेम शीघ्र या देर में इन पर्वतपुत्रों को उपत्यका में खींचलाताहै[४]।

वे अपने जीवन भर उन खेतों की रक्षा करना अपना पवित्र कर्तव्य समझतेहैं, जिन्हें उनके पूर्वजों ने पहाड़ी ढालों को खोदकर बनायाथा। मरने पर वे अपने शवसंस्कार के लिए सबसे उत्तम स्थान अपने पूर्वजों

१-मिलाइए, सेम्पल--पृ० ५६१

२-'With this conservatism of the mountaineer is generally coupled suspicion towards strangers, extreme sensitiveness to criticism.'--सेम्पल -- पृ० ६०१

३-' नेड़ो को डांगिलो, दूर को पांगिलो' --लोकोक्ति

४-मिलाइए, सेम्पल--पृ० ५८०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के श्मशानघाट को समझतेहैं । वे चाहतेहैं कि मृत्यु के चौदहवें दिन उनके नाम से भी एक पाषाणलिंग उनके पूर्वजों की पितृकुड़ी में रखकर बन्द करदियाजाए ।

इस पर्वतीय द्वीप के ये निवासी जीवन भर, मृत्यु के समय, और मृत्यु के पश्चात् भी उपत्यका की ऊबड़-खाबड़ भूमि से चिपका रहनाचाहतेहैं ।

उपत्यका के निवासियों की, इस पर्वतीय द्वीप में विकसित अपनी पृथक संस्कृति से[1] इतनी अधिक ममता है कि उन्हें ब्रिटिश सरकार द्वारा प्राचीन गढ़वालराज्य का देहरादून, टिहरी और गढ़वाल में विभाजन आज भी अखरताहै ।

वर्तमान सरकार द्वारा उपत्यका का चार ज़िलों में विभाजन उन्हें अत्यधिक अनुचित प्रतीत होताहै । यद्यपि सीमांत जिलों में मिलनेवाले अधिक वेतन के लिए छीना - झपटी करनेवालों ने इस विभाजन से लाभ उठाने का प्रयत्न कियाहै, किन्तु अधिकांश गढ़वाली इसे अपनी मातृभूमि और संस्कृति का अंगभंग समझतेहैं, और 'अखंड गढ़वाल' का नारा लगातेहैं[2] ।

१-मिलाइए, 'Small, naturally defined areas, whether their boundaries are drawn by mountains, sea or by both, always harbour small but markedly individual peoples, ...whose differentiation varies with the degree of isolation.'
--सेम्पल-पृ० १७२

२-मिलाइए, 'A dismemberment of a large political territory and a seeming backward step, can be regarded only as a leisurely preliminary

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस पर्वतीय द्वीप के निवासी, जिस उपत्यका से इतना अधिक प्रेम करतेहैं, उसमें रहतेहुए वे किस प्रकार का जीवन बितातेहैं, किस प्रकार उन्हें भूगोलिक परिस्थितियां बार-बार प्रवास में जाकर कमाने और प्रवास की कमाई से उपत्यका में अपने परिवार को पालने के लिए विवश करतीहैं, पर्वतीय जीवन की इस कष्टपूर्ण गाथा को हम अगले परिच्छेद में देखेंगे।

---

for a new territorial alignment. History's movements are unhurried, the backward step may prepare for the longer leap forward.'
--सेम्पल--पृ० १८६

—:o:—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३- भू-पुत्रों का जीवन

उपत्यका के निवासी उपत्यका को 'माल्', 'पहाड़' और 'भोट' इन तीन भागों में बांटतेहैं।

'माल्' या भावर ५८ मील लम्बी और प्राय: सर्वत्र एक मील चौड़ी, संकरी मैदानी पट्टी है, जो हरिद्वार के पास नीलधारा के पार चीला से आरंभ होकर लालढांग, कोटद्वार, मोरघाटी और कालागढ़ होकर पूर्व की ओर रामनगर भाबर से मिलगईहै [१]।

भावर में रेता, बजरी, कौंगलोंमरेट और गोल - मटोल बालुज पाषाण शिलाओं के ऊपर मिट्टी की हल्की परत फैलीहै [२]। जिस पर सहस्राब्दियों तक घने वन रहने के कारण पर्याप्त मात्रा में जीवांश मिलगयाहै। अब भी भावर के बड़े भाग पर वन फैलेहैं, और केवल उन्हीं भागों में खेती होतीहै, जहां सिंचाई होसकतीहै।

भावर से आगे उत्तर की ओर महाहिमालय की दक्षिणी ढालों तक पहाड़प्रदेश फैलाहै जिसकी अधिक से अधिक लम्बाई १३३ मील और अधिक से अधिक चौड़ाई ९३ मील है। सारा पहाड़प्रदेश अगणित समानान्तर और टेढ़े-मेढ़े डांडों (पर्वतश्रेणियों) से घिराहै जिनके बीच में छोटी-बड़ी सभी नदियों ने अगणित रौलियां (घाटियां) काटडालीहैं।

जहां घाटियां अपेक्षाकृत चौड़ी हैं, अथवा पर्वतश्रेणियां धीरे-धीरे ढलुवां होतीगईहैं, वहां खेत बनाने की न्यूनाधिक सुविधा के अनुसार

१-टोपो० $\frac{1}{4}$ इंच, 53 K   २-एटकिनसन, जि० १, पृ०९७, टि०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गांव बसे मिलतेहैं । अन्यत्र नंगे वनस्पतिहीन डांडे या झाड़ियों और वनों से ढकी पर्वतश्रेणियां मिलतीहैं ।

महाहिमालय की दक्षिणी ढालों से आगे तिब्बत तथा रामपुर-बुशहर के सीमान्त तक भोटप्रदेश फैलाहै । इस प्रदेश की अधिक से अधिक लम्बाई १४० मील और अधिक से अधिक चौड़ाई ५० मील है। सारा भोटप्रदेश महोच्च पर्वतश्रेणियों, हिमशिखरों और हिमानियों से घिरा है। केवल ३ अति संकीर्ण घाटियों में थोड़े-से व्यक्ति रहतेहैं, जिनमें से अधिकांश को, शीतकाल में हिमपात से पूर्व इन दुर्गम घाटियों से भागकर निचली सुरक्षित घाटियों में उतर जाना पड़ताहै ।

भाबर प्रदेश गंगाजी के मैदान के उत्तर में मैदान और शिवालिक श्रेणी के बीच की पट्टी है, जो १००० फीट से लेकर १५०० फीट तक ऊंची है[1] । इसकी औसत ऊंचाई लगभग १३०० फीट है, और भूमि धीरे-धीरे ऊंची होतीगईहै ।

पहाड़प्रदेश में शिवालिक श्रेणियां, लघुहिमालय श्रेणियां और महाहिमालय की दक्षिणी ढालें आतीहैं । यद्यपि इन प्रदेशों में कहीं-कहीं उत्तरी भागों में पर्वतश्रेणियों के शिखर १०००० फीट तक ऊंचे हो गएहैं[2] किन्तु अधिकांश धरातल १५०० फीट से लेकर ७५०० फीट तक ऊंचा है। १५०० फीट से २५०० फीट तक ऊंची घाटियां, जो कि 'गड्डी' कहलातीहैं, बहुत थोड़ी और केवल महानदियों के निचले भागों में मिलतीहैं[3] । अधिकांश जनसंख्या २५०० फीट से ५००० फीट के क्षेत्र में बसी है।

भोटप्रदेश महाहिमालय की दक्षिणी ढालों से जन्सकर श्रेणी तक फैलाहुआहै । इस प्रदेश में केवल तीन अति संकीर्ण घाटियां ही

१-टोपो० $\frac{1}{4}$ इंच, 53 K   २-टोपो० $\frac{1}{2}$ इंच, 53 N S W
३-टोपो० $\frac{1}{4}$ इंच, 55 K; 53 J; $\frac{1}{2}$ इंच 53 N S W

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७५०० फीट से आरम्भ होतीहैं, शेष सारे धरातल की औसत ऊंचाई १५००० फीट से अधिक है।

जलवायु और वनस्पति की दृष्टि से भावरप्रदेश गंगाजी के मैदान के उत्तरी भागों से समानता रखताहै। पहाड़प्रदेश की जलवायु और वनस्पति देहरादून जिले और अलमोड़ा - नैनीताल जिलों की जलवायु और वनस्पति से मिलती-जुलतीहैं। भोटप्रदेश के ऊंचे भागों की जलवायु और वनस्पति तिब्बत की जलवायु और वनस्पति से समानता रखतीहैं। किन्तु इस प्रदेश की निचली घाटियों में देवदारु और भोजपत्र के वन उसी प्रकार के मिलतेहैं, जिस प्रकार के पहाड़ प्रदेश के उत्तरी भागों की सर्वोच्च श्रेणियों पर मिलतेहैं ।

भावर, पहाड़ और भोटप्रदेश उपत्यका के धरातल का क्रमशः ·६, ६० और ३९·४ प्रतिशत घेरतेहैं। इन प्रदेशों में उपत्यका की सारी जनसंख्या का क्रमशः १, ९८ और १ प्रतिशत बसा है।

भावर और पहाड़प्रदेश में वर्ष में प्रायः दो फसलें होतीहैं। निचली घाटियों में, जहां सींचाई की सुविधा है, दो फसलों के अतिरिक्त कभी-कभी बीच में एक और फसल उगालेतेहैं। किन्तु भोटप्रदेश में वर्ष में बड़ी कठिनाई से केवल एक फसल उत्पन्न होसकतीहै।

भावर में ज्यों - ज्यों कृषि बढ़रहीहै, पशुपालन की समस्या अधिकाधिक जटिल होतीजारहीहै। पहाड़प्रदेश के निचले भागों में, जो 'सलाण' कहलातेहैं, आवश्यकतानुसार थोड़े-से पशु पालेजातेहैं। पहाड़प्रदेश के ऊंचे भागों में, जो 'राठ' कहलातेहैं, पशुचारण बहुत महत्वपूर्ण है। भोटप्रदेश में पशुचारण का अधिक महत्व नहीं है और कृषि सर्वथा नगण्य है।

भावर नया बसा प्रदेश है। उसकी सारी समस्याएं उसी प्रकार की हैं, जैसे नए बसनेवाले प्रदेशों की होतीहैं। पहाड़प्रदेश में प्रत्येक व्यक्ति की अपनी भूमि और अपना घर है। ये दोनों उसके लिए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वरदान और अभिशाप बनेहुएहैं । पहाड़प्रदेश की सारी समस्याएं मुख्यतः इसी से संबंधित हैं । भोटप्रदेश सीमांत का प्रदेश है । वहां के निवासियों की आजीविका भारत-तिब्बत-व्यापार से चलतीहै । इसलिए भारत और तिब्बत के राजनीतिक संबंध उनके लिए सबसे अधिक महत्व रखतेहैं ।

भावर में नहरें, पहाड़ में नदी-नाले और वन तथा भोट में भारत-तिब्बत-सीमांत के गिरिद्वार और वहां का अति उच्च धरातल मनुष्य की गतिविधियों की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं ।

भोट और भावर, दोनों, पहाड़प्रदेश के निवासियों के प्रसारक्षेत्र हैं ।

अति प्राचीन काल में पश्चिम की ओर से आकर दरद-खश पशुचारकों ने पहाड़प्रदेश पर फैले किरात-भिल्ल पशुचारकों से उनके उत्तम चराईक्षेत्रों को छीनलिया और उन्हें महाहिमालय और जन्सकर श्रेणी के बीच स्थित दुर्गम भोटांतिक घाटियों में धकेल दियाथा । तबसे वे उस दुर्गम प्रदेश में व्यापार-पशुचारण से अपना निर्वाह करतेहैं ।

वर्तमान काल में जनसंख्या की वृद्धि, उत्पादन की कमी तथा अनेक भूगोलिक, सामाजिक और आर्थिक कारणों से पहाड़प्रदेश के कृषक भावर में बसरहेहैं और वहां कृषि द्वारा अपना निर्वाह करतेहैं ।

यद्यपि भोट और भावर, दोनों में, पहाड़प्रदेश के निवासी जाबसेहैं, किन्तु तीनों प्रदेशों की भूगोलिक विशेषताओं के कारण इन प्रदेशों के निवासियों की जीवनचर्या और समस्याओं में बड़ा अन्तर मिलताहै ।

——

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माल या भाबर - प्रदेश

सारी उपत्यका में केवल भावर ही ऐसा प्रदेश है जिसमें चौरस भूमि, उपजाऊ मिट्टी तथा कृषि और वनस्पति के लिए आवश्यक तापमान और वर्षा आदि सुविधाएं हैं। किन्तु उपजाऊ मिट्टी की हल्की परत के नीचे छिपे कंकड़ - पत्थर, बजरी और रेता में वर्षा और पर्वतों से आनेवाली छोटी नदियों का जल तुरन्त छिपजाताहै।

वर्ष भर अधिक तापमान रहने के कारण मिट्टी की हलकी परत में भीगा जल शीघ्र सूखजाताहै। धरातल में मिट्टी की पतली परत और बड़ी गहराई तक फैले रेता - बजरी में जलकोष का अभाव होने के कारण भाबर में कुएं नहीं खोदेजासकते।[1]

भावर की सूखी 'ऊखड़' भूमि में सींचाई की समस्या बड़ी विकट है। कृषि केवल उन्हीं भागों में होसकतीहै, जहां नहरों से सींचाई की सुविधा है। कुछ भागों में पीने का जल भी नहरों से ही मिलताहै। इसलिए भाबर के केवल उन्हीं भागों में मनुष्य बसा है जहां तक मालन और खोह नदियों की नहरों का जल पहुंचसकताहै। शेष प्रदेश वनों से ढकाहै।

पहले सारा भावरप्रदेश घने वनों से ढका था, जिनमें अनेक सर्प, भयंकर बनैले हाथी, भीषण व्याघ्र और दूसरे पशुओं की भरमार थी। भावर में बसना अथवा भावर के वनों में प्रवेश करना अत्यन्त संकटपूर्ण कार्य था।

भावर की जलवायु भाबर के बसने में विशेष रूप से बाधक थी [2]। यहां ग्रीष्मकाल में चैत से ही तीव्र धूप पड़नेलगतीहै। मिट्टी की पतली परत के नीचे बालू शीघ्र प्रतप्त होजाताहै।[3] बैसाख से आषाढ़ तक

१- एटकिनसन--जि० १, पृ० ६७ टि०

२- वेबर -- पृ० ५; विलियम्स - पृ० ४२

३- सत्यपथ -- १५ जुलाई, ५८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहाड़प्रदेश के निवासियों के लिए यहां का तापमान असह्य होजाताहै।

मध्याह्न में घर के अन्दर ठहरना और रात्रि को घर के अन्दर सोना कठिन होजाताहै। वायु शांत और प्रतप्त रहतीहै। मध्याह्न में लू चलतीहै और मार्गों पर आना-जाना बन्द होजाताहै[1]। पशु-पक्षी और मनुष्य छाया की ढूंढ करतेहैं। पत्ते रहित वृक्षों के नीचे छाया बहुत कम मिलतीहै[2]।

भाबर में तापमान और आर्द्रता में सहसा अन्तर आताहै। जलवायु में इस प्रकार सहसा अंतर आने के कारण भाबर में रोगों के फैलने का भय बनारहताहै[3]।

आषाढ़ में तीव्र तापमान के साथ अधिक वर्षा होतीहै। वायु में तापमान और आर्द्रता की अधिकता मलेरिया, नाना प्रकार के ज्वर, अपच, हैजा, विशूचिका आदि रोगों को फैलादेतीहै[4]। भादों में वर्षा बन्द होकर जब तीव्र धूप पड़तीहै तो अनेक रोग फैलतेहैं और प्रायः प्रत्येक गांव में दो-चार व्यक्ति ज्वर-पीड़ित होजातेहैं। बड़ी संख्या में छोटे बच्चे इन्हीं दिनों मरतेहैं[5]।

आश्विन से लेकर फाल्गुन तक भाबर में सह्य तापमान और स्वास्थ्यवर्द्धक जलवायु रहताहै। विशेषकर कार्तिक से माघ तक ऋतु बड़ी सुहावनी रहतीहै। कोटद्वार के जलवायु के आंकड़े भाबर के जलवायु का आभास देतेहैं[6]।

	जन०	फर०	मा०	अ०	मई	जून	जु०	अ०	सि०	अ०	न०	दि०
ता०फा०	६२·५	६६	८६	९५	९६	९७	९०	८५	८७	८०	७१	६४
वर्षा इं०	·५	१·३	१·३	·५	१·५	·४	१०	१२	७	४·५	·२	·५

१-सत्यपथ--१५ जुलाई, ५८
२-वेबर--पृ० २८-२९
३-मेहरोत्रा तथा सक्सेना--पृ० ७२
४-विलियम्स--पृ० ४१-४२
५-मिलाइए, इबेटसन--चौंदकोट, पृ० १
६-वन-विभाग के सौजन्य से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीनकाल में भावर में केवल उन्हीं क्षेत्रों में मनुष्य बसा था, जहां मालिनी और खोह नदियां पर्वतों से उतरकर भावर में प्रवेश करतीहैं[१]। तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दियों में ये दोनों क्षेत्र भी उजाड़ होगए[२] और सर्वत्र वन फैलगए।

स्थायी रूप से भावर बसाने के प्रयत्न १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रामजे और गर्सिन के द्वारा किएगए[३]। गर्सिन ने खोह और मालिनी से कच्ची नहरें निकलवाईं और वन काटकर गांव बसाने का कार्य ठेकेदारों को सौंपदिया[४]। आज भी इन्हीं नदियों की नहरों के सहारे चौकीघाट से लेकर कोटद्वार के बीच के प्रदेश में कृषि होतीहै और शेष क्षेत्रों में वन फैलेहैं।

भावर का जलवायु, जो कि ग्रीष्म में अत्यधिक शुष्क और प्रतप्त तथा बरसात में अत्यधिक प्रतप्त और आर्द्र होताहै, उपत्यका के पहाड़प्रदेश के निवासियों के अनुकूल नहीं है। वे 'भावर का बास, कुल का नाश' समझतेहैं। इसलिए थोड़े-से भूमिहीन हरिजनों तथा कतिपय साहसी सवर्ण गढ़वालियों को छोड़कर आरम्भ में भावर में मुख्यतः थाड़ू, बोक्सा और बिजनौर के चमार ही बससके।

वृक्षों की पत्तियों और जीवांश से भरी भावर की उपजाऊ मिट्टी में सींचाई से उत्तम धान, गेहूं और सरसों की खेती होनेलगी और धीरे-धीरे गांवों की संख्या और कृषि - भूमि का क्षेत्रफल, दोनों बढ़नेलगे।

१-राहुल--पृ० ५

२-बूलजे हेग--भाग ३, पृ० १८२-८३ तथा रि० तराई ऐंड भावर डेवलपमेंट कमेटी--१९४७, पृ० ४६

३-राहुल--पृ० ५; पांडे--पृ० ४५५, टि०

४-राहुल--पृ० ५; रि० तराई ऐण्ड भावर डेवलपमेंट कमेटी--पृ० १,४६-५०; कंडीशन आव लोअर क्लासेज--पृ० २८०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्यों-ज्यों पहाड़ की जनसंख्या बढ़तीगई, पहाड़प्रदेश के निवासी भाबर की उपजाऊ भूमि के प्रति अधिकाधिक आकर्षित होतेगए।

द्वितीय महायुद्ध के दिनों में अन्न अत्यधिक मंहगा होजाने तथा पहाड़प्रदेश में कुछ वर्षों से लगातार अन्नकाल पड़तेरहने के कारण गढ़वाली जनता में भूमि की भूख अत्यधिक बढ़गई[1] और अनेक परिवार आकर भाबर में बसनेलगे[2]।

सरकार ने नहरें पक्की और लम्बी बनादीं। तथा अब कुछ भागों में नलों द्वारा पीने का पानी भी पहुंचादियाहै। मलेरिया की रोकथाम के लिए अथक प्रयत्न किएहैं। फलतः वनों को काटकर कुछ ऐसे स्थानों पर भी खेती होनेलगीहै, जहां सींचाई की सुविधा नहीं है या केवल बरसात में है। इससे गांवों की संख्या और कृषिभूमि में वेग से वृद्धि हुईहै, जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है[3]:--

सन	गांवों की संख्या	कृषिभूमि, बीघा
१८६६-७०	१८	२०६६
१८६६	६२	२५५४२
१६०७	६८	३७५६१
१६६१	८१	८६४०१

भाबर में खरीफ की फसल में धान और रबी की फसल में गेहूं और सरसों मुख्य उपज हैं। साग-सब्जियों, तम्बाकू, गन्ना और फलों का उत्पादन भी कुछ बढ़नेलगाहै। हल्दूखाता-भाबर में धान और गेहूं दोनों की अच्छी उपज होतीहै, किन्तु सुखरौ-भाबर में गेहूं की अपेक्षा धान महत्वपूर्ण है।

सारे भाबर में धान से अधिक उपज मिलतीहै। इसलिए प्रत्येक परिवार अपनी कृषिभूमि के अधिकांश पर धान की रोपाई करताहै,

---

१-इवेटसन--पृ० ८ २-इवेटसन-भाबर--पृ० १
३-राहुल--पृ० ५; १६६१ के आंकड़े खाम-कार्यालय के सौजन्य से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और केवल थोड़ा-सा भाग गेहूं के लिए 'भद्वाड़' के रूप में छोड़देताहै। भद्वाड़ पर उत्तम गेहूं उत्पन्न होताहै। धान के खेतों में धान काटने के पश्चात् गेहूं बोने पर 'चम्मड़' गेहूं की उपज संतोषजनक नहीं होती और पतले तथा सूखे दाने पड़तेहैं।

इस प्रदेश में वर्षा देर से आरम्भ होतीहै। धान के खेतों में हल चलाने का कार्य आषाढ़ से आरम्भ होताहै। रोपाई तव होसकतीहै, जब पहाड़प्रदेश में भरपूर बरसात लगजाने पर खोह और मालन का जल बढ़ताहै और नहरों में सींचाई के लिए पर्याप्त जल आ सकताहै।

रोपाई श्रावण तक होतीरहतीहै। रोपाई के हेतु यथेच्छ जल प्राप्त करने के लिए प्रत्येक गांव में कलह होतेहैं। बहुत-से व्यक्ति जल की कमी के कारण केवल थोड़ी-सी भूमि पर ही रोपाई करपातेहैं।

आश्विन में धान काटकर उनके 'खला' (खलिहान में ढ़ेर) लगा दियाजाताहै और गेहूं के लिए खेतों में हल चलायाजाताहै। रोपाई वाले खेतों में 'चम्मड़' के लिए हल चलाना कठिन श्रम का कार्य है। भद्वाड़ वाले खेतों में भादो से ही हल चलाना आवश्यक होताहै। गेहूं बोलेने के पश्चात् धान की मंडाई आरम्भ होतीहै। उपत्यका के अन्य भागों में धान की मंडाई नर-नारियां अपने पैरों से करतेहैं। भावर में धान की मंडाई गेहूं की मंडाई के समान बैलों से कीजातीहै।

यहां अन्नों का अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन होताहै। किन्तु हल चलाने, रोपाई करने, फसल काटने और फसल मांडने के अवसरों पर बहुत से मजदूरों की आवश्यकता पड़तीहै। उपज का पर्याप्त भाग मजदूरों को देने में ही समाप्त होजाताहै।

कृषि के लिए तकड़े और अधिक मूल्य वाले बैलों की आवश्यकता पड़तीहै। भावर के जलवायु में तीन-चार वर्ष तक रोपाई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिए मावा चलाने से तकड़े से तकड़े बैल अति दुर्बल और शिथिल होजातेहैं। बार-बार बैलों की नई जोड़ी खरीदनी पड़तीहै।

हल चलाने का कठोर कार्य 'हाली' करतेहैं। बैलों के समान हाली भी, कुछ वर्षों तक भाबर में हल चलाकर शीघ्र अपनी शक्ति और स्वास्थ्य खोबैठतेहैं[1]।

अनेक व्यक्ति इसलिए अपनी भूमि तिहाड़ी या साझी को सौंप देतेहैं और उनसे उपज का थोड़ा-सा भाग प्राप्त करके सन्तोष कर लेतेहैं।

यहां अभी तक खेतों में नियमित रूप से खाद देने का प्रयत्न नहीं कियाजाता। कुछ वर्षों में, जब धीरे-धीरे मिट्टी अपनी उर्वरा शक्ति खोबैठेगी, खाद देने की अधिक आवश्यकता पड़ेगी।

खेती के विस्तार से समस्त चराईक्षेत्र नष्ट होचुकेहैं। भाबर के कुछ भागों में आज चराई की समस्या अति विकट होगईहै। सूखे पराल पर ही बैलों की जोड़ी और एक-दो गाय-भैंसें पालीजातीहैं। कुछ भागों में पशुओं के लिए घास और जलाने के लिए ईंधन प्राप्त करना अति कठिन होगयाहै।

पालतू और बनैले पशुओं से खेती की 'जग्वाली' (रक्षा) का कार्य बडा कष्टप्रद है। धान के खेतों की बाड़ के लिए ग्रीष्मकाल से ही, और गेहूं के खेतों की रक्षा के लिए गेहूं बोते ही, जंगल से बांस काटकर लाने पड़तेहैं। कुछ वर्षों से पक्षियों का उत्पात अत्यधिक बढ़गयाहै। कुछ भागों में नर-नारी दिनभर खेतों में कनस्तर बजा-बजाकर चिड़ियां भगातेहैं, और रात को जंगली पशुओं से खेती की रक्षा करतेहैं।

अनेक कठिनाइयां होने पर भी भाबर में स्वयं खेती करनेवाले जिस परिवार के पास १५ बीघा भूमि होतीहै उसे वर्ष में औसत से

१-देखिए, भाग ५, परिच्छेद २

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४०-५० मन धान, ८-१० मन गेहूं और ५-७ मन सरसों प्राप्त होजातेहैं। इस अन्न से उसके परिवार को वर्ष भर भोजन मिल जाताहै तथा कुछ धान और सरसों बेचकर गुड़, वस्त्र और अन्य आवश्यक वस्तुओं को खरीदा जासकताहै। इसलिए मजदूरी की ढूंढ में ऋतुकालीन प्रवास पर जाने की आवश्यकता नहीं रहती।

बाजार के निकट के गांवों में, भाबर के किसान अन्न के अतिरिक्त आलू, प्याज, टिमाटर, गोब्री, बैंगन, अदरख आदि साग-सब्जियां तथा अमरूद, पपीते, आम, लीची आदि फल बेचकर भी कुछ कमा लेतेहैं।

वहां स्वयं कृषि करनेवाले जिन परिवारों के पास २०-२५ बीघा भूमि है, वे धान, सरसों और उपरोक्त वस्तुओं को बेचकर प्रति वर्ष अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् पांच-सात सौ रुपया बचा लेतेहैं। इसलिए भूमि के भूखे गढ़वाली कृषक-परिवार[1] भाबर में भूमि प्राप्त करने के लिए बड़े लालायित रहतेहैं।

सारी उपत्यका में केवल भाबर की संकरी पट्टी ही ऐसा भाग है, जहां मैदान की-सी सुविधाएं उपलब्ध हैं। रेलवे लाइन केवल भाबर के छोर कोटद्वार तक पहुंचतीहै। किंतु भाबर के प्रत्येक गांव में मोटर-लारी, बैलगाड़ी और साइकिल से पहुंचने के लिए सड़कें बनगईहैं। डाकघर, तारघर, औषधालय, विद्यालय और सिनेमा, सभी की सुविधाएं हैं। इसलिए प्रत्येक सम्पन्न गढ़वाली भी भाबर में बसने के लिए उत्सुक रहताहै।

भाबर का प्रधान नगर कोटद्वार उपत्यका का पूर्वी द्वार है। यह मैदानी नगरों से रेल और मोटरमार्गों से तथा उपत्यका के पर्वतीय भागों से मोटरमार्गों द्वारा जुड़ा है। उपत्यका के द्वार पर अति महत्वपूर्ण स्थिति के कारण कोटद्वार शीघ्र अति उन्नति करगयाहै।

१-इवेटसन--पृ० ८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शताब्दियों से कृषक और पशुचारक रहनेवाले गढ़वाली, जब इस नगर में, या उपत्यका के अन्य व्यापारिक नगरों में, गज-तराजू लेकर बैठे, तो उन्हें शताब्दियों से व्यापार करनेवाले मैदानी बनियों, मारवाड़ियों और शरणार्थियों से पछाड़ खानीपड़ी ।

कृषक अपने खेत में एक नाली बीज बोकर ५ - ६ मास में ७-८ नाली उपज की, तथा पशुचारक अपनी प्रत्येक भेड़-बकरी से प्रति छै मास में एक बच्चा और गाय-भैंस से प्रति वर्ष में एक बच्चे की आशा रखताहै । वर्षभर में अपनी मूल पूंजी से कई गुना लाभ प्राप्त करने के अभ्यासी ये कृषक और पशुचारक व्यापार में भी इतना ही लाभ उठाने के लिए छटपटातेहैं और ग्राहक को एक बार कसकर मूंड लेने पर सदा के लिए खोबैठते हैं ।

किन्तु भाबर में कृषि के क्षेत्र में गढ़वालियों को अधिक सफलता मिलीहै और धीरे-धीरे उन्होंने भाबर में पहले से बसेहुए थाड़, बोक्सा, चमार और कुमाउनियों से उनकी अधिकांश भूमि प्राप्त करलीहै । पुराने बसेहुए पैनों और चौंदकोट वालों से सलाण और राठ-निवासियों ने बहुत सी भूमि खरीदलीहै । आज गढ़वालियों ने गढ़वाल - भाबर को गढ़वाल का एक अभिन्न अंग बनदियाहै ।

भाबर के गांव मुख्यत: उन साहसी व्यक्तियों या ठेकेदारों के नाम से प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने अंगरेजी राज्यकाल में इधर-उधर से लोगों को बटोरकर उन्हें बसायाथा[1] । इसके विपरीत उपत्यका के पर्वतीय भागों के गांवों के नाम मुख्यत: किसी जाति से संबंधित हैं, जिसके पूर्वजों ने अपने कठोर परिश्रम से उस गांव में पहाड़ी ढालों को खोदकर वहां कृषियोग्य भूमि का निर्माण कियाथा[2] । पहाड़प्रदेश की जातियों के नाम उनके मूल गांवों के नामों के स्मारक हैं[3], और पहाड़प्रदेश में व्यक्ति की अपेक्षा जाति या समाज का अधिक महत्व है ।

१-राहुल--पृ० ५ २-पंत--पत्र, पृ० ४ ३-पातेराम--पृ० ८५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाबर की 'खसमखांदी' भूमि, दो-तीन, कभी-कभी एक ही पीढ़ी में, या इससे भी पहले, अपना स्वामी बदलदेतीहै। इसलिए जिस व्यक्ति के नाम के साथ भाबर के गांव का नाम जुड़ा है, उसके वंशज उस गांव में बहुत कम मिलतेहैं। भाबर में जाति या समाज की अपेक्षा व्यक्ति की प्रधानता है। वहां प्रत्येक गांव में, गढ़वाल, कुमाऊं या मैदान से आकर जो व्यक्ति बसे हैं, उनके आपस में कोई रक्तसम्बन्ध न होने के कारण, वे एक ही गांव की सीमा में रहतेहुए भी, एक ही स्थान पर, पास-पास घर बनाना पसन्द नहीं करते।

यहां प्रत्येक परिवार की पृथक चकबन्दी है, जिसके एक भाग में परिवार का मकान और गौशाला बनीहोतीहै। इसलिए गांव में घर छुटपुट बसे मिलतेहैं। प्रत्येक गांव में पत्थरों की कच्ची दीवारों वाले, घास-फूंस से छाए झोपड़ों से लेकर, पत्थरों की पक्की दीवारों वाले, खपरैल, पटाल, आगरा के स्लेट, टिन की चद्दर या कनस्तरों से छाए हुए मकानों की पड़ोस में ही पक्की ईंट के बने इकमंजिले, दुमंजिले, तिमंजिले, सीमेंट की बनी चपटी छतों वाले मकान, बंगले या कोठियां मिलतीहैं।

घर के आकार-प्रकार के साथ विभिन्न जातियों का जो सम्बन्ध पहले पहाड़प्रदेश में मिलताथा, वह यहां नहीं मिलता। यहां निर्धन या नए बसे व्यक्ति प्रायः पत्थरों की कच्ची दीवारें खड़ी करके उन पर घास-फूंस डालकर दो-तीन कोठरियों वाली इकमंजिली झोंपड़ी से काम चलातेहैं। वे घर के पास पशुओं के लिए भी इसी प्रकार की इकमंजिली गौशाला बनालेतेहैं। इन झोंपड़ियों में 'खुरसी' (प्लिंथ) ऊंची न होने के कारण बरसात में उनमें सीलन रहतीहै और मलेरिया को निमंत्रण मिलताहै।

प्रत्येक व्यक्ति, ज्यों ही उसकी आर्थिक दशा सुधरतीहै, अपनी झोंपड़ी को मकान में बदलने का प्रयत्न करताहै। भाबर में किसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यक्ति की आर्थिक दशा का सही पता प्रायः उसके घर के आकार-प्रकार से लगताहै।

प्रत्येक घर के आगे, चाहे वह किसी भी आकार-प्रकार का हो, 'चौक' (आंगन) अवश्य रखाजाताहै। मकानों के आगे बरामदा बनाने की प्रथा बढ़रहीहै। धनियों के मकानों में रसोई, बैठक, शयनागार और मूत्रालय बने मिलतेहैं। साधारण व्यक्तियों के घरों में केवल रसोई और शयनागार के लिए अलग कोठरियां होतीहैं।

शीतकाल में भी पर्याप्त तापमान रहने के कारण मकानों के निर्माण के लिए धूप की सुविधा का विशेष विचार नहीं रखाजाता। वरन् ग्रीष्मकाल की प्रचण्ड धूप से बचने के लिए मकानों को प्रायः पूर्व-पश्चिम दिशा में बनायाजाताहै और उनके द्वार प्रायः उत्तर-दक्षिण की ओर रखेजातेहैं।

ग्रीष्मकाल में, मध्यान्ह में, घर के अन्दर टिकना और रात को घरों के भीतर सोना कठिन है। ९-१० बजे से पसीना उतरने लगताहै, और रात को भी, जब वायु नहीं चलती, पसीना उतरताहै। घास-फूंस के झोंपड़ों और टिन की चद्दर, खपरैल, या पटाल की ढलुवां छतों पर, रात को सोने की सुविधा न होने के कारण, ग्रीष्मकाल में बाहर आंगन में सोने की प्रथा है।

अधिकांश पुराने मकानों के आगे आम की छाया दिन में बैठने और सोने के लिए प्रयुक्त होतीहै। नए बरामदा वाले घरों में सोने के लिए बरामदे का प्रयोग होताहै। ऐसे घरों के आगे पपीते के वृक्ष लगे मिलतेहैं।

भावर में जहां पर्वतों के गन्दे जल के साथ ही पर्वतों के गन्दे व्यक्ति भी एकत्रित होजातेहैं, पर्वतों की सारी बुराइयां एक छोटे-से क्षेत्र में एकत्रित मिलतीहैं। किन्तु भावर-निवासी, उनके ऊपर मैदानी सभ्यता की जूठन को, बड़ी कुशलता से बखेरकर, उन्हें उसी प्रकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ढके रखतेहैं, जिस प्रकार वहां के गोल-मटोल पाषाणों को मिट्टी की पतली परत ने ढककर उसे हराभरा और आकर्षक बनादियाहै।

पहाड़प्रदेश के कठोर जलवायु में पलेहुए गढ़वाली, जब मैदानी नगरों में अधिक काल तक निवास करलेतेहैं तो वे भाबर की अधिक सुविधाजनक स्थिति, रेल, मोटर, चिकित्सालय, विद्यालय आदि की सुविधाओं और भाबर के अपेक्षाकृत अकठोर जलवायु से आकर्षित होकर अपनी बचीहुई पूंजी से भाबर में भूमि खरीदकर बसजातेहैं[1]।

इन व्यक्तियों ने, जो केवल भाबर की सुविधाएं ही देखतेहैं, और उसकी असुविधाओं से अपरिचित हैं, भाबर की भूमि का मूल्य कई गुना बढ़ादियाहै।

उपत्यका के ऊंचे भागों से नीची घाटियों और भाबर की ओर जनता का यह प्रवाह प्रति वर्ष बढ़ताजारहाहै। किन्तु कुछ बर्षों तक बसने के पश्चात्, जब परिश्रम की कमाई से भराहुआ उनका बटुआ हलका होजाताहै, शरीर का उत्साह शिथिल पड़जाताहै और भावरी आवरण के नीचे छिपाहुआ उसका वास्तविक ढांचा प्रत्यक्ष रूप से सन्मुख आताहै, तो वे एक दिन भी चैन की सांस नहीं लेसकते और भाबर की भूमि बेचकर पुनः अपनी पर्वतीय कन्दराओं में घुसने के लिए तड़पने लगतेहैं।

भाबर के जलवायु का संभवतः हृदय, फेपड़ा, आंतों, यकृत और जननेन्द्रिय आदि पर विशेष प्रकार का प्रभाव पड़ताहै। शरीर के

१-'The search for better land, milder climate and easier conditions of living, starts many a movements of people, which in view of their purpose necessarily leads them into an environment, sharply contrasted to their original habitat.'--सेम्पल--पृ० १०८-१०९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तापमान में वृद्धि के साथ रोग के कीटाणुओं के आक्रमण की आशंका बढ़जातीहै, और मृत्यु का प्रतिशत ऊंचा होजाताहै[१]। इन सबके प्रभाव से, जो शिथिलता उत्पन्न होतीहै, उससे उत्तेजक वस्तुओं की, विशेषकर, मदिरा की प्यास बढ़तीहै[२-३]।

आलस्य भाबर का सबसे बड़ा अभिशाप है। मनुष्य की कार्य करने की इच्छा और शक्ति को तापमान और आर्द्रता की प्रबलता नष्ट करदेतीहै[४]।

पर्वतों में रहकर कठिन श्रम करनेवाले गढ़वाली भी, जब भात के लालच से, भाबर में जाबसतेहैं, तो ग्रीष्मकाल में भाबर के तीव्र तापमान तथा बरसात में अति आर्द्र जलवायु से धीरे-धीरे अपना उत्साह, श्रमशक्ति और लगन खोबैठतेहैं। वे एक-दो पीढ़ियों में स्वास्थ्य और आकृति दोनों की दृष्टि से गिरजातेहैं।

ब्राजील में बसे जरमन किसानों[५], हवाई में बसे यूरोपियन पादरियों[६], गोवा में बसे पुर्तगालियों[७] और क्वीन्सलैंड में बसे

१-सेम्पल, पृ० ६२६

२-मिलाइए, 'The general effect is intense enervation, this starts a craving for stimulants and induces habits of alcoholism.'---सेम्पल--पृ० ६२६

३-'The humidity of climate, in all probability, accounts for inordinate love of liquor characteristic of the Doonites, who feeling the want of stimulants, freely cousume spirits and intoxicating drugs.'--विलियम्स--पृ० ४२

४-डालिंग--पृ० भू० ६ ५-सेम्पल--पृ० ६२७-२८

६-सेम्पल--पृ७ ६२८ ७-चतुर्वेदी--पृ० ११२-१२६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंगरेजो[१] के समान वे अपनी उन सारी विशेषताओं से रहित होजातेहैं जो पर्वतीय गांवों में बसे उनके चचेरे भाइयों में पाईजातीहैं।

उनमें सन्तान की कमी स्पष्ट दिखाईदेतीहै। परिवार में छोटे बच्चे अधिक संख्या में मरनेलगतेहैं[२]। पहाड़प्रदेश में मंडुवा, झंगोरा खानेवाले एक भ्राता की संतान के, तीसरी पीढ़ी में १५-१६ परिवार बनजातेहैं, जब कि भाबर में बसकर बासमती चखनेवाले दूसरे भ्राता की संतान तीसरी पीढ़ी में भी केवल एक ही परिवार तक सीमित मिलतीहै।

अथवा एक - दो पीढ़ी में ही भाबर में बसे भ्राता का वंश नष्ट होजाताहै और उसकी भूमि पर अधिकार करने या उसका विक्रय करने के लिए पहाड़प्रदेश में रहनेवाले भ्राता के वंशजों को आनापड़ताहै।

भाबर के गांवों में सलाण के कुछ ऐसे परिवार भी बसेहैं जिनका अभी तक अपने पर्वतीय गांवों से संबंध बनाहुआहै। ये परिवार ग्रीष्मकाल में अपने गांवों को लौटजातेहैं और समय-समय पर अपने मूल गांवों में आते-जाते रहतेहैं। इन पर समाज का बन्धन अधिक शिथिल नहीं दिखाईदेता।

१-'The north Queenslander moves slowly and conserves his heat producing energy in every possible way. One can pick him out in streets by the fact that he walks more deliberatily.'--टेलर--पृ० ४१४

२-मिलाइए, 'There is some what larger proportion of young mothers in the north (Queensland) and a small proportion of old people.' --टेलर--पृ० ४१५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किन्तु अधिकांश गढ़वाली, सवर्ण तथा हरिजन, कृषक एवं अवकाश प्राप्त सरकारी तथा असरकारी कर्मचारी, अपने पर्वतीय गांवों, जातियों और समाज से अपना बन्धन तोड़कर यहां बसगएहैं। नए प्रदेश में बसेहुए ऐसे व्यक्तियों पर, पिछले समाज का बन्धन शिथिल पड़जाता है, तथा उनके लिए जलवायु एवं सामाजिक कारणों से व्यसनों की ओर आकर्षण बढ़जाताहै।[1]

अपने सन्मुख, भावर में पहले से बसे, दासों के समान चमार और थाड़ू-बोक्सों को देखकर कई नए बसेहुए उच्च श्रेणी के गढ़वाली अपनी आत्मा और स्वास्थ्य की पुकार की ओर से कान मूंदलेतेहैं तथा अपनी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति दोनों को खोकर धीरे-धीरे विनाश की ओर प्रयाण कररहेहैं[2]।

भावर के गांवों में प्राय: प्रत्येक गली या प्रवेशमार्ग के द्वार पर एक - दो दुकानें बनगईहैं। प्रत्येक भावर - निवासी अपनी छोटी-बड़ी प्रत्येक आवश्यकता पर और कई बार बिना वास्तविक आवश्यकता के भी, इनसे उधार लेताहै, और अपनी वस्तुएं बेचकर अथवा अन्नादि देकर समय-समय पर इनका ऋण चुकातारहताहै। ज्यों-ज्यों भावर में धरती का मूल्य बढ़रहाहै, त्यों-त्यों ऐसी दुकानों की संख्या और उनसे मिलनेवाली ऋण की पूंजी बढ़तीजारहीहै[3]।

यह ऋण भावरवासियों को शीघ्र या देर में ले डूबताहै। परिवार का प्रत्येक व्यक्ति, यहां तक कि बच्चे और नारियां भी, इस प्रकार ऋण लेने के अभ्यासी बनगएहैं। बच्चे विद्यालय जाते समय 'बस्ता' (पुस्तकों के थैले) में धान या गेहूं छिपाकर लेजातेहैं और उसे दुकानों में डालकर अपना ऋण चुकातेहैं। नारियां जब डिग्गी पर पानी भरने जातीहैं तो अपनी कसेरी या घड़े में अन्न छिपाकर लेजातीहैं,

---

१-सेम्पल--पृ० ६२६-२७ २-मिलाइए, सेम्पल--पृ० ६२७
३-मिलाइए, डार्लिंग--पृ० २४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रौर दुकान का ऋरण चुकातीहैं। उपजाऊ भूमि ग्रौर द्वार पर दुकान की स्थिति का यह ग्रवांछनीय प्रभाव परिवार में ग्रनेक कलह उत्पन्न करताहै।

इन दुकानों के ग्रतिरिक्त, भाबरवासी साहूकार, सहकारी-समिति ग्रौर सीधे सरकार से भी ऋरण लेने के ग्रवसरों की ढूंढ में रहतेहैं। ऋरण लेने का चसका, भूमि का बढ़ताहुग्रा मूल्य ग्रौर बाजार के निकट भाबर के गांवों की स्थिति, ये तीनों मिलकर शीघ्र या देर में भाबर के ग्रनेक निवासियों को पतन के गर्त में धकेलदेतेहैं।[1]

भाबर के छुटपुट बसे गांवों में, जहां के निवासियों में रक्त संबंध नहीं है, तथा सम्पन्न ग्रौर ग्रकिंचन पास-पास बसे हैं, चोरी का भय सदा बनारहताहै। ग्रीष्मकाल में, जब रात्रि को घर के ग्रन्दर सोना ग्रसम्भव होजाताहै, चोरी की घटनाएं निरन्तर होतीरहतीहैं।

चोरी, डाका, ग्रपहरण, हत्या, ग्रनैतिकता, ग्रवैध मदिरा-निर्माण ग्रौर जुग्रा ग्रादि प्रति दिन होनेवाले ग्रपराधों को, भाबर के गांवों के बिखरेहुए घरों की स्थिति से, प्रोत्साहन मिलताहै। दो पीढ़ी पहले सुलताना भांतू भाबर की बिखरीहुई बस्तियों को सरलता से ग्रौर

१-मिलाइए, 'To the uneducated farmer, there is a grave danger in cheap credit and the power to borrow at a low rate of interest. With borrowing made easy, every want can be satisfied, and with the rise in the standard of living wants have multiplied considerably, and the higher standard of living came to be based less upon production than upon the pledging of the capital, a position that is obviously unsound.' --डार्लिंग--पृ० ४३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नियमित रूप से लूटा करता था। १९६२ में बिमला और उसके डाकुओं की टोली ने भाबर में भारी उत्पात मचाया था।

प्राचीन काल से ही भाबर में, जहां पर्वतीय और मैदानी जिलों की सीमाएं समाप्त होती हैं, अपराधियों को आश्रय लेने की सुविधा रही है[1]। उनकी करतूतों के स्मारक आज भी भाबर के अनेक स्थान-नामों में सुरक्षित हैं[2]। आज भी पहाड़ और मैदान से भागे हुए अपराधी भाबर में फल-फूल रहे हैं। वे दोनों क्षेत्रों की पुलिस के लिए नई उलझनें पैदा करते हैं[3]।

१-चन्द राजाओं के समय भाबर को 'कालापानी' समझा जाता था। यदि कोई व्यक्ति, हत्या आदि भीषण अपराध करके भागकर भाबर में जा बसता था तो उसे 'स्वयं ही कालेपानी में जा बसा' कहकर छोड़ दिया जाता था। --पांडे--पृ० ९७-९८

२-इन स्थानों का रोचक इतिहास भाबर के वयोवृद्धों से पूछिए--कतल्या बड़, करालघाटी, कलालघाटी, काल़गढ़, काल़ढुंगी, काल़खांद, काल़गड्डी, खूनीबड़, खूनीसोत, खंदलाई, गूजरगली, चोरगल्या, चोरघाटी, चोरबास, चोरु को सोत, चोरपाणी, चोरबाटा, नल़कटा, तूमड़िया, पापी डांडा, पठाणू को चौड़, पातरपाणी, मरणखेत, माल़बास, मौतपाणी, लालपाणी, स्यू-गड्डो (सी-गड्डी), सत्तीचौड़ आदि।

३-मिलाइए, 'Just beyond the political boundary, where police authority comes to an end, or where pursuit is cut short or retarded, the fleeing criminal finds his natural asylum. Hence all border districts tend to harbour undesirable refugees from the other side.' —सेम्पल--पृ० २३६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाबर की संकरी पट्टी, अवांछित तत्वों को तो आश्रय देती ही है, साथ ही वह प्रति वर्ष, पहाड़प्रदेश के शिक्षित, उन्नत तथा धनी परिवारों के अनुभवी व्यक्तियों को भी पहाड़प्रदेश से छीनकर अपने यहां बसारहीहै।

इससे उपत्यका का पहाड़प्रदेश प्रति दिन ऐसा अभागा प्रदेश बनताजारहाहै, जिसके शिक्षित नवयुवकों को, योवन में पदार्पण करते ही, उस प्रदेश से बाहर जाने के लिए वाध्य होनापड़ताहै और जिसके अनुभवी, शिक्षित तथा धनी प्रौढ़ लौटकर उसे लाभ नहीं पहुंचाते।

आरम्भ में मैदान से केवल थाड़ू, बोक्सा और चमार ही अधिक संख्या में भाबर में बसेथे। वर्तमान समय में मैदान से आकर कुछ निर्धन, निराश्रित अवांछित तत्व, समाज-निष्काषित, साहसिक तथा भाग्य-परीक्षा करनेवाले उद्योगी भाबर में बसतेजारहेहैं।

मैदान में उत्पन्न, प्रत्येक आन्दोलन की लहर जब ऊंचाई की ओर चढ़तीहुई, शिथिल होकर, संकीर्ण पर्वतीय द्वारों से उपत्यका में प्रवेश करने में अपने को असमर्थ पातीहै, तो वह भाबर में अपनी अन्तिम हलचल दिखाकर शांत होजातीहै।

भाषा, वेशभूषा, कृषि, रहन-सहन के ढंग, धार्मिक और सामाजिक विचार, सभी की दृष्टि से, भाबर की संकरी पट्टी मैदान और पहाड़ के बीच की सम्मिश्रण-भूमि है। यहां के गढ़वाली जिस प्रकार गढ़वाली बोली और बाजारू हिन्दुस्तानी की खिचड़ी का प्रयोग करतेहैं उसी प्रकार गढ़वाली और मैदानी रीतिनीतियों के मिश्रण का भी।

समशीतोष्ण जलवायु में विकसित पहाड़ी परम्पराओं तथा ऊष्ण जलवायु में उत्पन्न मैदानी रीतिनीतियों के मिश्रण से धीरे धीरे भाबर में जिस वर्णसंकर समाज और संस्कृति की सृष्टि होरहीहै, भाबरप्रदेश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की प्रारम्भिक समस्याएं हल होजाने पर उसे उन्नति करने की अधिक सुविधाएं प्राप्त होंगीं[1] ।

२-मिलाइए,--'The Tropics are a vast melting pot. The debilitating effect of heat and humidity, aided by tropical diseases, soon reduce the intruding peoples to a dead level of economic inefficiency, characteristic of the native races. These, as the fittest, survive and tend to absorb the new-comers, pointing to hybri dization as the simplest solution of the Tropical colonization.'--सेम्पल--पृ० १०

—:०:—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहाड़ - प्रदेश

भाबर की उत्तरी सीमा पर खड़ी शिवालिक-श्रेणियों से लेकर महाहिमालय की दक्षिणी ढालों तक पहाड़प्रदेश फैलाहै। भाबर की उत्तरी और पहाड़प्रदेश की दक्षिणी सीमा पर घने और अस्वास्थ्यकर वन फैलेहैं। भाबर से चलकर पहाड़प्रदेश के गांवों तक पहुंचने के लिए प्रायः पांच मील से लेकर दस मील की चौड़ाई में विस्तृत डांडों और रौलियों में फैले इन वनों को पार करनापड़ताहै[1]।

पहाड़प्रदेश का अधिकांश धरातल १५०० फीट से ७५०० फीट तक ऊंचा है। इसमें १५०० फीट से लेकर २५०० फीट तक ऊंचा क्षेत्र अति अल्प है और केवल हुइनी, भागीरथी, अलकनन्दा, हिंवल, नयार, मालन और खोह नदियों की निचली घाटियों में मिलताहै[2]। ऐसे निचले भाग 'गड्डी' नाम से प्रसिद्ध हैं। अधिकांश गड्डीप्रदेश अति संकीर्ण, पथरीले, और ऊबड़-खाबड़ हैं तथा प्रायः वनों से ढकेहैं।

पहाड़प्रदेश के निवासी गड्डियों के प्रतप्त और आर्द्र जलवायु से उतना ही घबरातेहैं, जितना भाबरप्रदेश के जलवायु से। इसलिए जहां गड्डियां कुछ अधिक चौड़ी और कृषि - योग्य हैं, वहां खेती करने वाले लोग अपने घरों को प्रायः २५०० फीट की समोच्चरेखा के निकट रखने का प्रयत्न करतेहैं। यद्यपि दूर से गड्डी में पहुंचकर खेती करने में उन्हें बहुत कष्ट होताहै, किन्तु वे गड्डी के अस्वास्थ्यकर जलवायु के प्रभाव से कुछ सीमा तक बचेरहतेहैं[3]।

नयार और भागीरथी के तटों पर, जहां गड्डियां अधिक चौड़ी और अधिक चौरस हैं, सींचाई की सुविधा होने पर भाबर के समान उत्पादन होताहै। सीला, बड़खोलू, बांघाट तथा मंदाल घाटी (पैनों)

१-टोपो० १ इंच, 53 K / ६; $\frac{1}{4}$ इंच, 53 K

२-टोपो० १ इंच, 53 K / ६; $\frac{1}{4}$ इंच, 53 K

३-इबेटसन--चौंदकोट, पृ० १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैसी गड्डियों में, जहां ४० इंच से अधिक वर्षा होतीहै, मिट्टी उपजाऊ है और सींचाई की सुविधा है, पर्याप्त अन्न उत्पन्न होजाताहै और अन्न खरीदने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

किन्तु गड्डियों में बाढ़ और ऋण का भय सदा बनारहताहै[1]। यहां वर्षा और नदी द्वारा प्रसारित आर्द्रता के कारण पशु और मनुष्य उतने स्वस्थ और परिश्रमी नहीं होते जितने सलाण के ऊंचे भागों में। भावर के समान गड्डियों में भी पशु ढ़ीले-ढ़ाले और शिथिल होजातेहैं और मनुष्य सरलता से रोग का शिकार बन बैठताहै[2]। उसमें सेना में भरती होने का साहस नहीं रहता।

भावर के समान यहां भी साहूकार उसी प्रकार जापहुंचताहै जैसे मधु पर मक्खी। इसलिए गड्डियों के निवासी ऋणग्रस्त रहतेहैं और वहां की भूमि भावर के समान स्वामी बदलतीरहतीहै[3]।

पहाड़प्रदेश के वे भाग, जो ५००० फीट से ७५०० फीट तक ऊंचे हैं, 'राठ', घाड़, चंघड़, भंगाड़, चांठ या ढांगू आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। इन नामों से ही पता लगजाताहै कि ऐसे प्रदेशों का धरातल अत्यन्त ऊबड़-खाबड़, पथरीला और सीधे खड़े भेलों वाला है।

राठप्रदेश कृषि की अपेक्षा पशुचारण के लिए अधिक उपयुक्त है। यद्यपि राठप्रदेश में भी कृषि होतीहै, किन्तु ज्यों-ज्यों धरातल ऊंचा होताजाताहै त्यों-त्यों सहायक या मुख्य व्यवसाय के रूप में पशुचारण का महत्व बढ़ताजाताहै।

राठप्रदेश में मनुष्य का कठोर जीवन उसे जन्मजात सैनिक के गुणों से भरदेताहै। सेना में भरती होकर राठवासियों ने सिद्ध करदिया कि ऐसा कोई कार्य नहीं, जिसे वे राजभक्ति के आवेश

१-मिलाइए, डार्लिंग--पृ० २४

२-मिलाइए, डार्लिंग--पृ० २४; इबेटसन--चौंदकोट, पृ० १

३-मिलाइए, डार्लिंग--पृ० २४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में आकर न करसकें, ऐसा कोई संकट नहीं, जिसे वे झेलने को प्रस्तुत न हों और ऐसा कोई कष्ट नहीं, जिसे वे प्रसन्नता से उठाने को तैयार न हों[1]।

२५०० फीट से ५००० फीट तक की ऊंचाई वाला प्रदेश 'सलाण' नाम से प्रसिद्ध है और जनसंख्या तथा कृषि की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भाबर, गड्डी और भोटप्रदेश में उपत्यका की सारी जनसंख्या के क्रमशः १, १, १ प्रतिशत व्यक्ति निवास करतेहैं। राठप्रदेश में जनसंख्या का लगभग १७ प्रतिशत बसा है। शेष ८० प्रतिशत जनसंख्या सलाण में बसी है।

सलाण का अर्थ है 'सलामी' अर्थात् अपेक्षाकृत धीरे - धीरे ढ़लुवां होने वाली पर्वतीय भूमि[2]। यद्यपि उपत्यका के केवल तीन परगने गंगासलाण, मल्लासलाण और तल्लासलाण के नामों पर सलाण शब्द जुड़ाहै, किन्तु धरातल की ऊंचाई आदि की दृष्टि से वास्तव में चौंदकोट, बारहस्यूं और देवलगढ़ परगने तथा सारी देवप्रयाग तहसील का क्षेत्र आदि, उपत्यका के वे भाग जो ५००० फीट तक ऊंचे हैं, सलाण कहेजासकतेहैं।

सलाण ऊंचे पठारों और निचली घाटियों एवं भाबरप्रदेश का मध्यवर्ती क्षेत्र है। इसमें भाबर और पठारों, ऊष्ण कटिवंध तथा समशीतोष्ण कटिबन्ध, दोनों की विशेषताएं और वनस्पति मिलतीहैं। सलाण में नदी-तटों के कम ऊंचे बगड़, जिन पर उपजाऊ गंगवार मिट्टी फैलीहै और सींचाई की सुविधा है, उपज में भाबर से प्रतिद्वन्दिता करते हैं। इस प्रदेश की पर्वत-श्रेणियों के अधिक ऊंचे, ऊबड़ - खाबड़ एवं चट्टानी भाग मध्य हिमालय के पठारों के समान हैं।

यद्यपि सलाण का जलवायु अति उत्तम है और वहां कृषि की अधिक सुविधा है, किन्तु प्रकृति अपनी उदारता के साथ 'क्षणे रुष्टा

१-पातेराम--पृ० १६८ २-इबेटसन, मल्लासलाण--पृ० १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षणे तुष्टा' बनीरहतीहै। कभी वर्षा देर से आरम्भ होतीहै, कभी शीघ्र आरम्भ होकर बीच में बन्द होजातीहै।

ऐसी परिस्थिति में, थोड़ी-सी भूमि के भरोसे, सारे परिवार को पालने के लिए जिस कौशल, श्रम और मितव्ययता की आवश्यकता होतीहै, वे विरले व्यक्तियों में मिलतेहैं। सलाण के अधिकांश निवासियों के लिए केवल खेती के भरोसे परिवार का पालन करना असंभव है। अस्तु उनमें ऋतुकालीन प्रवास में मजूरी करने के प्रति अधिक आकर्षण है।

सलाणप्रदेश में गंगानाली से पूर्व की ओर व्यासघाट से नौगड़, द्वारीखाल, लैंन्सीडौन, अधारियाखाल होकर दीपा का डांडा, धूमाकोट तक तथा पश्चिम की ओर चन्द्रवदनी, घंडियाल, सुरकंडा होकर भदराज तक, रीढ़ की हड्डी के समान, अगणित डांडे (पर्वतश्रेणियां) फूटतेहैं। इनके बीच में रौले - गधेरों ने सैकड़ों पृथक घाटियां काटडालीहैं।

इन डांडों के निचले भागों में, ३००० फीट की ऊंचाई तक यत्र - तत्र बांस, खैर, साल और कुकाठ के छुटपुट वन, या झाड़ियां फैलीहैं। मध्यवर्ती भागों में यत्र-तत्र चीड़ के वन और अधिक ऊंचे भागों में बांज-बुरांस के वन मिलतेहैं।

सारे पहाड़प्रदेश में गड्डी, सलाण तथा राठ में, मुख्य पर्वतशृंखला से इसी प्रकार डांडे फूटकर फैलेहुएहैं। मुख्य पर्वतशृंखला से निकलेहुए ये डांडे धीरे-धीरे नीचे की ओर ढलुवां होतेजातेहैं और अंत में किसी नदी की घाटी या रौली में पहुंचकर समाप्त होजातेहैं। डांडों के बीच में रौलियां ज्यों-ज्यों नीची होतीजातीहैं, त्यों-त्यों प्रायः अधिक चौड़ी और अधिक चौरस होनेलगतीहैं।

घाटियों में जहां वनस्पति नष्ट करदीगईहै, और अपेक्षाकृत चौरस भूमि है, उपजाऊ गंगवार मिट्टी पर सींचाई से अथवा बिना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सींचाई से उत्तम खेती होतीहै । किन्तु डांडों की ढालों पर खेती करने योग्य भूमि सर्वत्र नहीं मिलती ।

जो भाग अधिक ऊबड़-खाबड़ या पथरीले हैं, उन पर झाड़ियां या जंगल फैलेहैं अथवा नग्न चट्टानें खड़ीहैं । उनके बीच-बीच में यदि कहीं अपेक्षाकृत कम ऊबड़ - खाबड़, कम पथरीली और धीरे-धीरे ढलुवां होनेवाली भूमि होतीहै, तो उस पर खेत बने मिलतेहैं ।

पहाड़प्रदेश के गांवों की परिस्थिति में बहुत अधिक समानता मिलतीहै । यद्यपि स्थानीय कारण और जलवायु की विशेषताओं से उसमें यत्र - तत्र कुछ अंतर आजाताहै, फिर भी खेत, गांव, घर, चराई-क्षेत्र, जलाशय आदि की दृष्टि से पहाड़प्रदेश के अधिकांश गांव एक-जैसे लगतेहैं[1] ।

प्रत्येक रौली नीचे उतरकर किसी नदी में मिलजातीहै । इस रौली के एक ओर या दोनों ओर, जहां तक भूमि धीरे-धीरे ढलुवां होतीगईहै, गांव बसा मिलताहै । गांव की सीमा के अंतर्गत, रौली की एक ओर की या दोनों ओर की पहाड़ी ढालें होसकतीहैं । रौली की उपरली सीमा पर, जहां रौली समाप्त होतीहै, डांडा प्रायः वन या झाड़ियों से ढका होताहै ।

उसके नीचे, जहां तक खेत बनाने की सुविधा होतीहै, छोटे-छोटे भीड़े वाले खेत बने मिलतेहैं, जिनके बीच-बीच में या किनारों पर यत्र - तत्र नंगी चट्टानें अथवा झाड़ियां मिलतीहैं । प्रायः एक रौली में एक ही गांव बसा मिलताहै । किन्तु जहां रौली अधिक लम्बाई तक फैलीहोतीहै, एक रौली में दो-तीन या अधिक गांव भी बसे मिलतेहैं[2]।

प्रत्येक गांव की सीमा प्रायः किसी रौली से आरंभ होतीहै, और किसी डांडे तक पहुंचतीहै, जहां दूसरे गांव की सीमा मिलतीहै,

१-मिलाइए, स्टोवेल--पृ० ६ २-मिलाइए, स्टोवेल--पृ० ६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो डांडे की दूसरी ओर की ढाल पर बसाहोताहै। जहां एक रौली में एक से अधिक गांव होतेहैं, वहां उनके बीच, सदा, किसी न किसी प्रकार की प्राकृतिक सीमा होतीहै। प्रायः कोई दूसरी छोटी रौली या छोटा-सा डांडा अथवा झाड़ियों की झुरमुट ऐसे गांवों को पृथक करती मिलतीहैं।

गांव की सीमा के अन्तर्गत गांव के निवासियों की नाप भूमि के अतिरिक्त बहुत-सी बेनाप भूमि भी आतीहै, जिसके ऊपर भारत-सरकार का स्वामित्व मानाजाताहै। यह भूमि गांव के निवासियों के लिए चराई-क्षेत्र का काम देतीहै और प्रायः इसके कुछ भाग पर वन, जंगल या झाड़ियां रहतीहैं। इन्हीं वनों या झाड़ियों से गांव वालों को आवश्यकतानुसार घर बनाने और ईंधन के लिए लकड़ी प्राप्त होतीहै[3]।

जिस प्रकार भाबर के गांव नहरों पर केन्द्रित हैं, उसी प्रकार पहाड़प्रदेश के गांव किसी रौली, गधेरे या जलस्रोत पर। प्रत्येक गांव का आधार कृषि और उसके साथ पशुपालन है। इसलिए रोमसागरीय प्रदेशों के समान यहां भी 'जल की बूंद और घास के तिनके' निश्चय करतेहैं कि गांव कहां बससकताहै।

गांव आरम्भ में पहाड़ी धार के किसी ऐसे स्थान पर बसे, जहां से पीने के लिए पानी वाले जलाशय तक, खेतों तक तथा चराई क्षेत्रों तक पहुंचने की अधिक सुविधा थी।

ज्यों-ज्यों जनसंख्या बढ़तीगई, त्यों-त्यों रौली के दोनों ओर के डांडों की ढलुवां भूमि को खेतों में परिणित कियाजानेलगा। झाड़ियों को काट-फूंककर धरती कुटले से खोदीगई और पेड़ों की जड़ें और पत्थरों को हटाकर वहां जौ, मंडुवा या तिल के बीज छिड़ककर कटील प्रथा से खेती कीजानेलगी। अवसर मिलने पर कटील को

१-मिलाइए, स्टोवेल--पृ० १०   २-मिलाइए, स्टोवेल--पृ० १०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खोद-खोद कर तथा पत्थरों के भीड़े रखकर खेतों का निर्माण कियागया ।

इस प्रकार धीरे-धीरे रौली की तलहटी से लेकर उसकी बगलों पर, एक ओर या दोनों ओर, छोटे-छोटे टुकड़ों में, अनेक स्थानों पर बहुत से भीड़े वाले खेत बनकर, वहां तक पहुंचगए, जहां से आगे वन, चराईक्षेत्र या नग्न चट्टानें आरम्भ होतीहैं ।

यद्यपि रौली के सबसे निचले भाग में भी, बिलकुल नदी के तट तक, खेती कीजातीहै, किन्तु गांवों में मकान सदा नदी के तट से पर्याप्त ऊंचाई पर ऐसे स्थानों पर बने मिलतेहैं, जहां नदी की बाढ़ और निचली प्रतप्त घाटियों के ज्वर का भय नहीं रहता ।

उपत्यका में सर्वत्र ऊंची भूमि पर मकान बनाने की परम्परा विरहीगंगा की बाढ़ के समय बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई जब कि गढ़वाल की पुरानी राजधानी श्रीनगर को छोड़कर उपत्यका के किसी गांव को कोई हानि नहीं पहुंची[1] ।

गांवों में मकान डांडे की, बाहर निकलीहुई किसी ऐसी धार पर बने मिलतेहैं, जहां पर्वतश्रेणी से पत्थर टूटकर गिरने का भय नहीं होता, और निकास की पूरी सुविधा होतीहै[2] । ऐसे स्थानों का जलवायु न तो नीची गड्डी के समान अत्यन्त प्रतप्त और आर्द्र होताहै और न पर्वत-शिखरों के समान अति शीतल और कष्ट-प्रद ।

गांव बसाने में धूप का भी विशेष ध्यान रखाजाताहै । गांव प्रायः 'तैली' धार पर बसा होताहै, जिस पर धूप अधिक देर तक रहतीहै ।

प्रायः प्रत्येक गांव के अधिकांश निवासी एक ही धड़ा (उपजाति) के होतेहैं, जिसका नाम गांव के नाम से जुड़ा होताहै और सूचित करताहै कि उस जाति के मूल पुरुषों ने इन पर्वतीय ढालों को खोदकर वहां गांव बसायाथा[3] ।

१-पौ--पृ० १५ २-मिलाइए, पौ--पृ० १५ ३-पंत--पत्र पृ० ३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने पूर्वजों के श्रम, स्वेद और रुधिर से बनेहुए इन गांवों के प्रति वहां के निवासियों के हृदय में अनन्य श्रद्धा और प्रेम होताहै। वे अपने पूर्वजों के इस पवित्र स्मारक पर जीवन भर अपनी कमाई का धन और अपना श्रम लगातेहैं[1]। यदि उन्हें परिस्थितिवश किसी दूसरे गांव में भी जाबसना होताहै, तो वहां भी वे अपने पुराने गांव के स्मारक के रूप में अपनी उपजाति का नाम गर्व से अपनाए रहतेहैं।

इसलिए पहाड़प्रदेश में व्यक्ति की अपेक्षा समाज और जाति का महत्व और प्रभुत्व है। वहां समाज या जाति की परम्पराओं का कोई व्यक्ति स्वेच्छानुसार उल्लंघन नहीं करसकता।

भाबर के गांवों में मकान छुटपुट और बिखरे मिलतेहैं। इसके विपरीत पहाड़प्रदेश के गांवों में प्रायः सारे मकान, एक स्थान पर कई समानान्तर पंक्तियों में अथवा पास-पास बने मिलतेहैं[2]। यद्यपि थोड़ा-बहुत अन्तर मिलताहै, किन्तु भाबर के गांवों में नाना प्रकार के मकानों की जो विचित्र खिचड़ी मिलतीहै, वह यहां नहीं मिलती।

पिछले समय में जब उपत्यका में सुरक्षा और सुव्यवस्था का अभाव था, गांव के सारे मकानों को एक स्थान पर तथा इस क्रम से बनायाजाताथा जिससे संकट के समय में वे दुर्ग के समान सुरक्षित रहें। मकानों को आमने-सामने दो पंक्तियों में बनायाजाताथा जिनके बीच में पत्थरों से पटा आंगन और मार्ग होताथा। मकानों की पिछली दीवारों से इस गांव-दुर्ग की दो दीवारें बनतीथीं।

बीच में जाने वाले मार्ग के आरम्भ और अन्त में सुन्दर खुदाई वाली लकड़ी की चौखट और किवाड़ों वाली खोलियां (फाटक) बनाईजातीथीं, जिन्हें गांव वाले आवश्यकता पड़ने पर बन्द करके चोर-

---

१-दंत--षत्र ३   २-मिलाइए, पौ--पृ० १५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डाकू, आक्रान्ता अथवा थोकदार के चाकरों से अपनी रक्षा कर सकतेथे[1]।

अंगरेजी-राज्यकाल में ज्यों-ज्यों सुरक्षा और सुव्यवस्था बढ़तीगई त्यों-त्यों ऐसे दुर्ग-जैसे गांवों की संख्या घटनेलगी। अब भी अधिकांश गांवों में मकान एक ही स्थान पर और प्रायः समानान्तर पंक्तियों में मिलतेहैं किन्तु अब मध्यवर्ती मार्ग को दोनों ओर से बन्द करने के लिए बनी खोलियां नहीं मिलतीं।

पुराने ढंग के मकान अब वर्तमान आवश्यकताओं के लिए बहुत छोटे प्रतीत होनेलगेहैं। अस्तु उनके आकार, ऊंचाई तथा दरवाजे, खिड़कियों की संख्या और आकार में अन्तर आगयाहै।

सारे पहाड़प्रदेश में मकानों की दीवारें पत्थर की बनाईजातीहैं और उनके ऊपर पत्थर की पटाल या टिन की चादरों की ढलुवां छतें डालीजातीहैं।

प्रत्येक मकान से आगे पत्थरों से पटाहुआ चौक (आंगन) होताहै, जिसके तीन ओर प्रायः एक हाथ ऊंची 'दांदण' (दीवार) होतीहै, जो बैठने, धूप सेंकने, वस्तुएं रखने और चौक की रक्षा की दृष्टि से बड़ी उपयोगी होतीहैं। चौक बैठने, गोष्ठी करने, अनाज मांडने और सुखाने, बरात को टिकाने तथा देवता नचाने के काम आताहै। उसे लीप-पोत कर स्वच्छ रखाजाताहै।

एक मंजिला घास या पटाल से छाया मकान 'इखरा', 'भ्वींमुंडा' या 'भियारा' कहलाताहै। घास से छाये इखारे मकान का प्रयोग मनुष्यों के निवास के लिए अब नहीं होता और अब उसे मकान न कहकर 'झोंपड़ा' कहाजाताहै। उसका प्रयोग अब गौशाला के रूप में भी बहुत घट गयाहै। निर्धन व्यक्ति, या वेध के भय से, अब भी कहीं-

---

1-पौ--पृ० १५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहीं इखारा मकान बनातेहैं, किन्तु उनकी छतें पटाल से बनीहोतीहैं।

अब मकान नाम का वास्तविक अधिकारी 'दोपुरा' (दुमंजिला) मकान को ही समझाजाताहै जिसकी उपरली मंजिल के कमरे 'मंज्यूल' और निचली मंजिल के कमरे 'ओबरी' कहलातेहैं। 'इखंडा' मकान में मंज्यूल के आगे एक हाथ चौड़ा पत्थर का छज्जा लगा होताहै। 'दुखंडा' मकान में छज्जा से पहले मंज्यूल और उससे भी पहले भितर-मंज्यूल होतेहैं। यही क्रम ओबरियों में भी देखा जाताहै।

पहाड़प्रदेश के मकानों में सार्वजनिक उपयोग या बैठक के लिए एक विशेष प्रकार का कमरा 'डंडयाला' बनाहोताहै, जो अभ्यागतों को ठहराने, पूजा-पाठ या कथावार्ता के लिए, मनोरंजन के लिए, बिरादरी के व्यक्तियों को बिठाकर भोजन खिलाने अथवा देवता नचाने आदि सार्वजनिक कार्यों के लिए प्रयुक्त होताहै। डंडयाला पर दरवाजे और किवाड़ लगाकर उसे बन्द नहीं कियाजाता।

जब डंडयाले पर अति सुन्दर बेलबूटों की खुदाईवाले वृताकार शिखर युक्त 'खंभ' लगाकर तीन 'बारियां' (खिड़कियां या द्वार) बनाएजातेहैं तो वह 'तिबारी' कहलाताहै।

पुराने मकानों पर तिबारी के खम्भे इतनी कुशलता से चित्रित मिलतेहैं कि वर्तमान काल का कुशल से कुशल मिस्तरी भी उनको एक वर्ष में नहीं बनासकता। पौ के समय में ही तिबारी-निर्माण की प्रथा घटनेलगीथी और यह 'टोटे का काम' मानाजानेलगाथा[1]।

प्रत्येक मकान के बाहर छज्जा, और होसके तो जंगला लगाना आवश्यक समझाजाताहै। छज्जा, बाहर धूप में बैठने के अतिरिक्त मकान के विभिन्न कमरों में जाने के लिए मार्ग का काम देताहै। ओबरी से मंज्यूल पहुंचने के लिए या तो पत्थर की सीढ़ियां बनी

१-पौ-- पृ० १६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होतीहैं, अथवा ओबरी के बरामदे से डंडाल्या तक पहुंचने के लिए घर के भीतर 'खोली' बनीहोतीहै। खोली को बन्द करके मकान में बाहर से आने का मार्ग बन्द होजाताहै और रात को चोरों का भय प्रायः कम रहताहै।

मक़ान निश्चित नाप के, जैसे ६ हाथ × १५ हाथ आदि के बनाएजातेहैं। परिवार के कर्त्ता के हाथ की लम्बाई के अनुसार हाथ की नाप घटती-बढ़तीहै। मकान के कमरे 'घर' कहलातेहैं। मकान का निर्माण किसी शुभ दिन पर, विधिपूर्वक देव-पूजन के पश्चात् कियाजाताहै।

गांव छोटे-छोटे होतेहैं। अधिकांश गांवों में ४०-५० से अधिक मकान नहीं होते। सांस्कृतिक परम्पराओं का प्रभाव गांव और मकान की स्वच्छता पर भी कुछ पड़ताहै। गांव में मकान को देखकर उनके निवासियों की जातियों का पता लगसकताहै। ब्राह्मण, राजपूत और डोम-हरिजनों के मकानों तथा उसके पड़ोस में, स्पष्टतः कुछ न कुछ अन्तर मिलताहै।

गांव के जिस भाग में ब्राह्मण-राजपूतों के घर होतेहैं, वह 'बिठाणा' कहलाताहै। उससे कुछ दूरी पर, जहां डोम-हरिजनों के घर होतेहैं, वह भाग 'डोमाणा'[१] कहलाताहै। डोमाणा के मकान, कहीं तो बिठाणा के मकानों से मिलते-जुलतेहैं और कहीं इखारा या झ्वींमुंडा-मात्र होतेहैं।

हरिजनों के पीने का पानी या तो बिठ-सवर्णों के पीने के पानी से पृथक होताहै, अथवा दोनों के लिए एक पत्थर या लकड़ी का बना 'मगारा' या 'धारा' होताहै, जिसमें ऊंचाई से पानी गिरने के कारण 'भिड़ने' (छूत) का भय नहीं रहता[२]। डोमाणा से होकर पानी लाना

२-- मिलाइए, तिब्बती शब्द डोम्-वा = छोटा गांव

२- पौ--पृ० १६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निषिद्ध समझाजाताहै[१]।

हरिजन गांव के सेवक, हाली और शिल्पकार हैं, जो चमड़े, धातु, पत्थर, लकड़ी और बांस आदि की वस्तुएं बनाते, मकानों की चिनाई करते, मरेहुए पशुओं को फेंकते तथा गांव में आवश्यकतानुसार खेती के काम करते, बाजा बजाते, सिलाई करते, कोल्हू पेरते, कम्बल और भंगेला आदि वस्तुएं बनातेहैं,[२] या एक पीढ़ी पहले तक बनातेथे।

हरिजनों को गांव में पृथक स्थान देने में जो सावधानी देखी जातीहै, वही पशुओं को घरों से दूर रखने में नहीं बरतीजाती। पहले उपत्यका के सभी भागों में प्रायः पशुओं को ओबरी में रखा जाताथा। अब उनके लिए पृथक गौशाला या छानी बनाईजातीहै। राठ के अनेक गांवों में अब भी पशु ओबरी में बांधेजातेहैं।

उपत्यका के सभी भागों में छौने, मेमने, छोटी बछिया, बछड़े और कटियां ओबरी में बांधेजातेहैं। कभी-कभी व्यायी गौओं को भी ओबरी में बांधतेहैं। जन्मजात पशुचारक होने के कारण गढ़वाली अपने पशुओं को अपने परिवार के व्यक्ति के समान प्यार करतेहैं और उन्हें अपने निकट रखने के अभ्यासी हैं।

पशुओं के लिए वह अपने खेतों की मेंडों पर भीमल, ग्वीराल, असीन आदि के वृक्षों को उगातेहैं और उनकी पत्तियां उन्हें समय-समय पर खिलातेरहतेहैं।

गढ़वाली अपने घरों के पास दो-चार छाया एवं फलवाले वृक्ष लगाना शुभ समझतेहैं। प्रायः नीम, अमरूद, आम, केला, पपीता, नारंगी, अखरोट आदि के वृक्ष घरों के पास लगे मिलतेहैं। घरों के निकट 'घरबाड़ा' खेतों में मिर्चा, हल्दी, कचालू, बैंगन, राई, आदि साग-सब्जियां और बेलें बोईजातीहैं।

१-पौ--पृ० १६; ये मान्यताएं अब ढीली होनेलगीहैं।

२-स्टोवेल--पृ० १०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहाड़प्रदेश के अति ऊंचे और अत्यन्त ऊवड़-खावड़ भागों को छोड़कर सर्वत्र मुख्य व्यवसाय कृषि है। ६० प्रतिशत से अधिक निवासी इसी व्यवसाय पर निर्भर हैं। वे परम्परागत प्रथाओं के अनुसार बहुत थोड़े उपकरणों और बहुत अधिक परिश्रम से कृषि करतेहैं। कृषक और उसका परिवार वर्ष भर कृषि पर जुटे रहतेहैं।

अधिकांश भागों में वर्ष में दो फसलें होजातीहैं। किन्तु उपज मुख्यतः मिट्टी की उर्वरता, निकास, सींचाई और धूप की मात्रा पर निर्भर होतीहै[1]। धीरे-धीरे ढलुवां होनेवाली पहाड़ी ढाल पर खेत बनाकर खेती करना सरल होताहै। सीधी खड़ी पहाड़ी पर खेत बनाना और उनकी रक्षा करतेरहना कठिन कार्य है।

सींचाई की सुविधा से नदी-तट की बालू-रेत और कंकड़-पत्थरों वाली भूमि पर भी प्रायः पर्याप्त उपज होजातीहै। 'तैली' (अधिक धूपवाली) धार पर 'सिलड़ी' (कम धूपवाली) धार से प्रायः अधिक उपज होतीहै।

'कुल्यांदा', 'तलांऊ' या 'सेरा' (सींचाई वाली) भूमि उपज की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण मानीजातीहै[2]। उसका मूल्य भी 'ऊखड़' (बिना सींचाई वाली) भूमि के मूल्य से दुगना या अधिक होताहै। नदी - तटों पर बड़े परिश्रम से खेत तैयार किएजातेहैं और कूल निकालकर खेतों तक पानी पहुंचायाजाताहै। सेरा भूमि पर खरीफ की फसल में रोपाईवाले धान और रवि की फसल में गेहूं तथा आलू प्याज, तम्बाकू, आदि नकद धन देनेवाली फसलों की खेती कीजातीहै।

रोपाई से धान लगाने का कार्य बड़ा कष्ट-प्रद होताहै। इसके लिए पुरुष दिन भर कड़ी धूप में या वर्षा में हल और मावा चलाकर खेतों में कीचड़ उत्पन्न करतेहैं। नारियां और बच्चे दिन भर कमर

१-पंत--पृ० ७२   २-मिलाइए, स्टोबेल--पृ० १०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक कीचड़ में रहकर, कमर झुकाकर, धान की पौद लगातेहैं, और पीछे की ओर खिसकतेजातेहैं। इस नीरस और कष्टप्रद कार्य को अकेला करना कठिन है। इसलिए गांव के सब परिवार मिलकर बारी-बारी से एक-दूसरे के सेरा में रोपाई करतेहैं।

इस कार्य को अधिक रोचक बनाने के लिए जागरी या हुड़क्या की सहायता लीजातीहै। वह डमरू या हुड़की बजाकर देवताओं की स्तुति के गीत गाताहै। 'भड़ों' (वीरों) के पंवाड़े सुनाकर मावा लगाने और रोपाई करनेवालों को उत्साहित करताहै। और प्रेम के रसीले गीत सुनाकर उनका हृदय प्रफुल्लित करदेताहै। कभी-कभी वह ढ़ीला काम करनेवालों को चेतावनी भी देताजाताहै[१]।

रोपाई के पश्चात् समय-समय पर धान को पानी देना आवश्यक होताहै। धान काटते समय भी कई परिवार मिलकर बारी-बारी से एक-दूसरे के खेत काटतेहैं। पहाड़प्रदेश में धान की उपज अधिक नहीं होती। इसलिए उसे नारियां और कभी-कभी पुरुष भी पैरों से मांड लेतेहैं।

सेरा खेतों में धान काटते ही तुरन्त हल चलाकर गेहूं के लिए खेत तैयार करनेपड़तेहैं। खेतों में हल से मिट्टी के बड़े-बड़े ढेले निकलतेहैं, उन्हें नारियां 'सियारे' से कूटकर तोड़तीहैं। गेहूं बोलेने के पश्चात् कभी-कभी पानी देनापड़ताहै। पशुओं, मुख्यतः बन्दरों और पक्षियों से रक्षा करनीपड़तीहै। गेहूं काटलेने पर बैलों से मंडाई कीजातीहै।

सारी उपत्यका में सींचाईवाली भूमि कृषिभूमि का एक प्रतिशत भी नहीं है। बिना सींचाईवाली ऊखड़ भूमि उपज की दृष्टि से अनेक प्रकार की होतीहैं। उत्तम उपजाऊ मिट्टी वाली, चौरस ऊखड़ भूमि 'उपराऊ' कहलातीहै[२]। सेरा या तलाऊं के पश्चात उपज की दृष्टि से ऐसी भूमि

१-देखिए, भाग ५, परिच्छेद ४   २-देखिए, स्टोवेल--पृ० १२-२३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसमें अधिक उपजाऊ भूमि 'अव्वल'[1] और सामान्य उपजाऊ 'दोयम'[2] कहलातीहै।

कंकड़ - पत्थरों से भरी अनउपजाऊ, तीखी ढालवाली, 'भेल-पाखा' - जैसी भूमि पर भी बिना सीढ़ी-जैसे खेत बनाए, कभी-कभी बीज छिड़केजातेहैं। ऐसे बिना सीढ़ी के खेत 'कटील' कहलातेहैं[3]।

उपजाऊ भूमि पर फसलों के हेर-फेर से दो वर्षों में तीन फसलें उत्पन्न कीजातीहैं। 'उपराऊं' भूमि में बरसाती सारी (खरीफ) में धान, झंगोरा, मक्का, मंडुवा, ओगल और उड़द आदि दालें उत्पन्न होतीहैं और रूड़ी की सारी (रवी) में गेहूं, जौ, सरसों, चना और मसूर उत्पन्न होतेहैं। रूड़ी की सारी की अपेक्षा बरसाती सारी में प्रायः अधिक उपज होतीहै।

बरसाती सारी के लिए माघ-फाल्गुन से खेत तैयार किएजातेहैं और चैत्र में धान, झंगोरा, कौणी बोएजातेहैं। मंडुवा ज्येष्ठ में, मक्का आषाढ़ में और उड़द, गहथ श्रावण या भादों में बोएजातेहैं। धान बोने के लिए खेतों में तीन बार और अन्य अन्न बोने के लिए दो बार हल चलायाजाताहै।

झंगोरा और मंडुवा की, यदि अधिक उपज होतीहै तो बैलों से मंडाई कीजातीहै। कम उपज होने पर अन्य अन्नों के समान पैरों से कुचल कर या डण्डे से कूटकर मंडाई कीजातीहै।

धान, झंगोरा, कौणी, मक्का वाले खेतों पर आश्विन-कार्तिक में हल चलाकर मार्गशीर्ष में गेहूं, जौ बोएजातेहैं। मंडुवा और दालों वाले खेतों को ३-४ महीने तक परती छोड़कर उन्हें माघ-फाल्गुन में धान, झंगोरे के लिए तैयार कियाजाताहै।

१-देखिए, स्टोवेल--पृ० १२-१५ २-देखिए, स्टोवेल--पृ० १२-१३
३-पौ--पृ० १७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रत्येक व्यक्ति अपने खेतों को दो सारियों में बांटताहै और उन पर निम्न हेर-फेर के अनुसार खेती करताहै :--[१]

पहली सारी	दूसरी सारी
माघ से आश्विन - धान, झंगोरा	ज्येष्ठ से आश्विन - मंडुवा
कार्तिक से बैशाख - गेहूं, जौ	कार्तिक से पौष - परती
ज्येष्ठ से आश्विन - मंडुवा	माघ से आश्विन -धान, झंगोरा
कार्तिक से पौष - परती	कार्तिक से बैशाख - गेहूं, जौ
माघ से आश्विन - धान, झंगोरा	ज्येष्ठ से आश्विन - मंडुवा

अधिक उत्पादन की आशा से उपत्यका-निवासी मंडुवा के खेतों में उड़द, गहथ, तोर के खेतों में झंगोरा, कौणी और मूली तथा गेहूं के खेतों में सरसों और चना आदि भी निचली परत के रूप में बो देतेहैं।

बरसाती सारी में रूड़ी की सारी से उपज अधिक होतीहै, पर उतना ही अधिक परिश्रम भी करनापड़ताहै। बरसात में खेतों में अन्नों के साथ खड़-पातर भी भारी संख्या में उत्पन्न होकर अन्नों के पौधों को नष्ट करनेलगताहै। इसलिए नारियां दिन भर वर्षा में 'छांतड़ी' या 'मुणकी' लेकर खेतों से खड़-पातर निकालतीहैं और पौधों की जड़ों पर मिट्टी लगातीहैं।

इस कष्टपूर्ण नीरस कार्य को भा गांव के निवासी 'सहेल' (सहयोग) से सरल बनाने का प्रयत्न करतेहैं। सारे गांव के निवासी मिलकर बारी-बारी से एक-दूसरे के खेतों में निराई-गुड़ाई करतेहैं।

प्रायः जागरी या हुड़क्या को बुलायाजाताहै। वह मंडुवा की सहेल को उसी प्रकार रोचक बनादेताहै जैसे धान की रोपाई को

१-पौ--पृ० १८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनाताहै। इसके लिए उसे फसल तैयार होने पर अन्न दिया जाताहै[1]।

पहाड़प्रदेश के सारे अन्नों में सबसे अधिक महत्व मंडुवा को दिया जाताहै। इसे 'पहाड़ का राजा' कहाजाताहै। उसके आटे का 'बाड़ी', रोटी, 'पलेऊ' आदि बनासकतेहैं।

पहाड़प्रदेश के अधिकांश निवासियों का मुख्य भोजन मंडुवा है, जिसका प्रयोग वे धान और गेहूं के समान करतेहैं। यह देर से पचताहै और देर तक कठिन श्रम करने में सहायक है।

उपत्यका के विभिन्न भागों में ऊंचाई के अनुसार फसलों को बोने और काटने का कार्य थोड़ा आगे-पीछे होताहै। अति प्रतप्त गड्डियों में, जहां सींचाई की सुविधा नहीं है, बरसाती खेती चैत में ही बोदेने से बैशाख-ज्येष्ठ में सूखजातीहै। अस्तु ऐसी गड्डियों में बरसात आरंभ होने पर खेती बोईजातीहै।

गड्डियों में गेहूं चैत के अन्त तक पकजाताहै। ५००० फीट की ऊंचाई तक प्राय: बैशाख में, ६००० फीट की ऊंचाई पर ज्येष्ठ में, ७००० फीट की ऊंचाई पर आषाढ़ में, तथा इससे अधिक ऊंचाई पर श्रावण में पकताहै।

पहाड़प्रदेश की कृषि मैदानी भाग की कृषि से बहुत अधिक कठिन, श्रमसाध्य और साहस का कार्य है। इस प्रदेश में कृषक या तो स्वयं अपने लिए भीड़ेवाले खेतों का निर्माण करताहै अथवा अपने पूर्वजों द्वारा निर्मित खेतों पर कृषि करताहै। दोनों प्रकार के खेतों की उसे निरन्तर रक्षा करनीपड़तीहै। पग-पग पर उसके शत्रु उसके खेतों और खेती को नष्ट करने के लिए तत्पर रहतेहैं।

यहां सभी बड़ी नदियां, जिनमें वर्ष भर अधिक जल रहताहै, अति गहरी और कठोर चट्टानीं तटों वाली घाटियों में बहतीहैं। उनसे कूल

---

[1] देखिए, भाग ५, परिच्छेद ४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निकालकर सींचाई करना अब तक असंभव रहाहै। कहीं-कहीं छोटे छोटे गाड-गधेरों से दो-चार एकड़ भूमि पर सींचाई के लिए कूल निकल सकतीहै। किन्तु दुर्भाग्य से इनमें पानी बहुत कम होताहै, और उनसे केवल बरसात में ही सींचाई होसकतीहै।

नदी-तटों के सेरों में प्रायः बाढ़ का जल घुसआताहै, जिससे कभी तो खेतों में उपजाऊ 'पांग' मिट्टी पहुंचजातीहै, किन्तु बार-बार बाढ़ से कूल का बन्धा टूटतारहताहै और कई बार रेता और बजरी पहुंचकर खेतों को नष्ट करदेतेहैं।

खेतों से चुन-चुन कर कंकड़-पत्थर बाहर फेंकनेपड़तेहै और उन्हें खोदकर कूल के घरातल से नीचा बनानापड़ताहै। उपत्यका के अनेक सेरों, जैसे कीमूसेरा, चौकीसेरा आदि की उत्तम भूमि बाढ़ से नष्ट होगईहै।

अधिकांश नदियां अपनी घाटियों को नित्य गहरी बनातीरहतीहैं। इसलिए प्रति एक-दो वर्ष के पश्चात् कूल का बन्धा नदी की तलहटी में, और आगे, ऊपर की ओर, बनानापड़ताहै। धीरे-धीरे ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होजातीहै कि या तो कूल में नदी का पानी ही नहीं चढ़ता अथवा केवल भादों में, जब नदी में बाढ़ आतीहै, चढ़सकताहै और कूल से सींचाई नहीं होसकती।

कई नदियों की तलहटी धीरे-धीरे ऊंची होकर तट के सेरा और उपरांऊ दोनों को नष्ट करदेतीहै। सौड़ की रौ के १२ गांवों की भूमि अकेली मालन ने नष्ट करदीहै।

नदियों में जल कम होने से कूल में जल कम आताहै। और सींचाई के लिए छटपटा कर सेरों के स्वामी नित्य आपस में लड़ते-झगड़ते रहतेहैं। रोपाई के पश्चात् खेतों में कई बार सींचाई की आवश्यकता पड़तीहै और बरसात की अंधेरी रातों में भी नदी-तटों की निर्जन घाटी में अकेले पहुंचकर, रात भर, खेतों में सींचाई करनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पड़तीहै। प्रति वर्ष कई व्यक्ति सेरों में सांपों से काटेजातेहैं या कलह में घायल होते और मरतेहैं अथवा भूत-प्रेतों द्वारा पीड़ित होतेहैं।

उपरांऊ भूमि पर वर्षों तक परिश्रम करके, पहाड़ खोदकर, पत्थर ढोकर और सैकड़ों टोकरियां मिट्टी भरकर जो भीड़े-वाले खेत बनाये जातेहैं, बरसात में भारी वर्षा से, अथवा केवल गीली मिट्टी के भार से ही उनके भीड़े (दीवारें) गिरजातीहैं, जिससे उपरले और निचले दोनों खेत नष्ट होतेहैं और दोनों की खेती चौपट होजातीहै। इस नए भार से उनसे निचले खेतों के भीड़े भी गिरजातेहैं और सारी धार पर ऊपर से नीचे तक खेत टूटकर एक नई रौली बनजातीहै।

भोट में हिमानीपात से खेतों की जो दुर्दशा होतीहै वही पहाड़प्रदेश में इस प्रकार की रौली बनने से होजातीहै।

जिनके खेतों के भीड़े इस प्रकार नष्ट होजातेहैं, उनके सारे परिवार को सारे शीतकाल में भीड़ों का पुनर्निमाण करनापड़ताहै और वे निर्वाह के लिए मजदूरी करने कहीं नहीं जासकते। अथवा उन्हें अपनी कमाई का एक महत्वपूर्ण भाग इन भीड़ों के निर्माण की मजदूरी पर व्यय करनापड़ताहै।

खेतों में उत्पन्न खड़-पातर के अतिरिक्त प्रत्येक खेत के भीड़ों और सीमा पर हिसंरा, किनगोड़ा, कंडिया, बांसिगा आदि पेड़-पौधे अपना अधिकार बनाएरखतेहैं। वे निरंतर खेत पर फैलकर खेती नष्ट करतेहैं। उन्हें प्रति वर्ष प्रत्येक सारी में बीज बोने से पहले काट कर फूंकनापड़ताहै और उनके आश्रय में रहनेवाले कीटों को नष्ट करना पड़ताहै[1]।

खेतों में कई बार हल चलाकर आर्द्रता सुरक्षित करनीपड़तीहै। नारियों और बच्चों को निरंतर खेतों के डले 'सियारा', 'ढिकारा'

१-गेहूं पर लगने वाला 'कुई' नामक कीड़ा, किनगोड़ा की झाड़ी में पनपताहै।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से पीटकर तोड़नेपड़तेहैं। अकेले 'जोल' से वे नहीं चूरेजासकते। खेतों में प्रत्येक बार जब पुरुष आगे हल चलाताहै, नारी पीछे से डले तोड़तीहै और बच्चे अंकुरित खड़-पातर को चुन-चुनकर बाहर फेंकतेहैं। प्रत्येक खेत से प्रतिवर्ष बीसियों टोकरी कंकड़-पत्थर चुन-चुन कर दूर फेंकनेपड़तेहैं।

जब खेतों में 'दंदाला' लगानापड़ताहै तो प्रायः पुरुष दंदाला पकड़ताहै और नारियों को बैल के स्थान पर जुतकर स्वय दंदाला खींचनापड़ताहै ।

खेत छोटे-छोटे और निकट-दूर सर्वत्र, गांव की सारी सीमा में, फैलेहोतेहैं। अधिकांश खेत चौथाई या आधी नाली ($\frac{१}{८०}$ से लेकर $\frac{१}{४०}$ एकड़) के हैं। पौ के समय उपत्यका के केवल दस परगनों में २८ लाख खेत नापेगएथे[१]। खेतों का इतना अधिक विभाजन होचुकाहै कि आज सारी उपत्यका के खेतों की संख्या छै करोड़ से कम नहीं होसकती। इतने छोटे-छोटे और दूरस्थित खेतों में बार - बार हल - बैल लेकर जाना और शिर पर ढोकर खाद डालना बड़ा श्रमसाध्य कार्य है।

इसलिए पहाड़प्रदेश के कृषक, कम ऊंचे भागों में, ग्रीष्म और बरसात में अपने पशुओं को खेतों में बांधतेहैं। और स्वयं उनके साथ घास-पत्तों की 'पल्ली' के नीचे खेत में पड़ेरहतेहैं। इस प्रकार बैसाख से कार्तिक तक, जब तक अति शीत नहीं पड़ती, खेतों में 'गोठ' लगाकर खाद पहुंचातेहैं।

खेती की उपज प्रायः खाद की मात्रा पर निर्भर होतीहै। शीतकाल में जब पशु घर पर रहतेहैं, गोबर सावधानी से एकत्रित कियाजाताहै और निकट के खेतों में डालाजाताहै। प्रायः पशुओं के नीचे बांज आदि वृक्षों की सूखी या हरी पत्तियां बिछाकर खाद की मात्रा बढ़ाई जातीहै। ऊंचे भागों में अन्य पत्तियों के अभाव में चीड़ की पत्तियां

१-पौ–पृ० १४; स्टोवेल–पृ० १५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बिछाईजातीहैं किन्तु उनसे अधिक उपयोगी खाद नहीं बनती। गौशाला से गोबर निकालना और खाद को खेतों में डालना नारी और बच्चों का कार्य समझाजाताहै ।

उपत्यका के सभी भागों में, खेत बनानेयोग्य सारी ढालों को खोदकर खेत बनादिएगएहैं । कभी-कभी दो-चार सेर जौ या मंडुवा की आशा से कहीं-कहीं कुछ लोग सीधी पहाड़ी ढ़ालों वाले 'पाखों' पर जहां हल का प्रयोग नहीं होसकता और मनुष्य भी बड़ी कठिनाई से चढ़ पाताहै, झाड़ियां काटकर फूंकतेहैं और कुटले से खोदकर बीज छिड़कदेतेहैं[१] ।

ऐसे दुर्गम क्षेत्र में खाद डालना असम्भव और व्यर्थ है। इसलिए इन कटीलों पर एक फसल बोने के पश्चात् दूसरी बार फसल चार-पांच वर्षों के पश्चात् ही बोईजासकतीहै , जब उस पर झाड़ियां उगकर मिट्टी का कटाव रोकतीहैं और उन्हें काट-फूंककर फिर कुछ उत्पन्न होने की आशा होतीहै ।

खेतों में बीज बोते ही अनेक पक्षी दाने चुगने खेतों में फैलजातेहैं । कौए, फुलेरा और करौंला आदि मक्का और गेहूं के बीजों को मिट्टी के नीचे से निकालकर खाजातेहैं । प्रत्येक गांव के चारों ओर वन, झाड़ियां और बंजर भूमि होने और उपत्यका का तीन चौथाई से अधिक क्षेत्र इसी प्रकार वन आदि से घिराहोने के कारण पशु-पक्षी सदा खेती को हानि पहुंचातेहैं ।

ज्यों ही गेहूं, जौ बोएजातेहैं, वनों और कन्दराओं से बन्दर एवं लंगूरों की सेनाएं आकर खेतों की मिट्टी छाननेलगतीहैं और बीजों को चुन-चुन कर खाजातीहैं । अंकुर निकलने पर वे फिर खेतों में आतीहैं और अंकुर सहित बीजों को खाजातीहैं ।

---

[१] देखिए, पौ--पृ० १७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनका तीसरा आक्रमण बालें निकलने पर और चौथा आक्रमण गेहूं-जौ पकने पर होताहै। गेहूं ,जौ, झंगोरा और मंडुवा की खेती को बन्दरों से और सरसों की खेती को लंगूरों से बड़ी हानि पहुंचतीहै। बन्दर घरों तक पहुंचकर खीरा, ककड़ी, तोरी आदि तोड़ लेजातेहैं।

दिन में, पास की झाड़ियों से कल्लू, करौंला, मुसौड़ा और कौए आदि आकर फसलों को नष्ट करतेहैं। इसलिए दिन भर बच्चे, कुत्ते या कनस्तर लेकर खेतों में खड़े चिल्लातेरहतेहैं और पक्षियों तथा बन्दरों को भगातेहैं। सात-आठ वर्ष से लेकर बारह-चौदह वर्ष की आयु तक के, जिन बच्चों का बहुमूल्य समय इसी प्रकार 'जग्वाली' करने में नष्ट होजाताहै, वे पढ़-लिख नहीं सकते और अन्त में मैदानी नगरों के होटलों में या घरों पर बरतन मलते और जूठे टुकड़े खाते हुए मिलतेहैं।

रात्रि में सुअर, भालू, काकड़, जड़ाऊ, सांभर, साही और गीदड़ आदि आकर पकी खेती को नष्ट करतेहैं। उनसे खेती की रक्षा करने की शक्ति और साहस छोटे बच्चों में नहीं होसकते। इसलिए पुरुष खेतों में १०-१२ फीट ऊंचे चार खम्भे गाड़कर अथवा किसी वृक्ष के ऊपर 'टांड' या 'ओड़ा' बनातेहैं और रात भर वहां बैठकर चिल्लाते तथा कनस्तर बजातेहैं।

विधवा नारियों को या उन नारियों को, जिनके पति गोठ में पशुओं के साथ खेतों पर रहतेहैं, स्वयं रात भर ओड़ा में बैठकर खेती की रक्षा करनीपड़तीहै।

बूंगी, पैनों, सीला, तल्ला बदलपुर, ढांगू, मल्ला कालीफाठ, रवांई, जौनपुर, बूढ़ाकेदार आदि क्षेत्रों में, जहां गांव के निकट के वन ऐसे पशुओं से भरेपड़ेहैं, बरसात में प्रत्येक दूसरे-तीसरे खेत में ओड़ा या टांड बनानापड़ताहै[१]। जिस पर बैठकर 'जग्वाल्या' रात भर

१-देखिए, पौ-- पृ० २२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चिल्ला - चिल्लाकर तथा तसला या कनस्तर बजाकर पशुओं को भगाताहै ।

बरसात में मक्का के खेतों को नष्ट करनेवाली साही को मार भगाने के लिए नर-नारियों को रात्रि में, खेत में, चुपके - से कम्बल ओढ़े बैठा रहनापड़ताहै और जब साही मक्का काटकर चबानेलगतीहै तो एक व्यक्ति उसके सन्मुख 'छिल्ले' (मशाल) जलाकर उसकी दृष्टि नष्ट करताहै और दूसरा उसके शिर पर कुल्हाड़ी से प्रहार करताहै ।

जो ऐसा नहीं करसकते या भूत और सर्प से घबरातेहैं, वे खेतों में खम्भे गाड़कर या पेड़ों की शाखाओं से रस्सी बांधकर किसी खिड़की के रास्ते मंज्यूल के अन्दर लेजातेहैं या छज्जा से बांधदेतेहैं । रस्सी पर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर तीन-चार घण्टे या कनस्तर लटकादेतेहैं और रात को छज्जा पर बैठकर चिल्लाते तथा रस्सी खींचकर घण्टे और कनस्तर बजातेहैं ।

बूंगी-पैनों के चतुर निवासी खेतों में जड़ाऊ का उत्पात रोकने के लिए खेत के किनारों पर खम्भे गाड़कर खेती से कुछ ऊंचाई पर मंत्रित रस्सियां बांधदेतेहैं । कहाजाताहै कि चाहे रस्सी कितनी ही ढीली और कमजोर हो पर जड़ाऊ उसके निकट आने का साहस नहीं करताहै[१] ।

उपत्यका के अनेक भागों में, जैसे सलाण में ऐता, अलदावा, नौगड़ आदि में, जो घने वनों के निकट हैं, बरसात में शत्रु को खेतों पर आक्रमण करने का अवसर न देकर, बरसात के आरम्भ से पूर्व ही, वनों में 'अहेड़ी' (आखेट) करनीपड़तीहै[२] । साही के बिलों को ढूंढकर उनमें धुंवा देकर उन्हें मारनापड़ताहै और काकड़, जड़ाऊ

१-देखिए, पौ--पृ० २२ २-देखिए, पौ--पृ० २२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदि को जाल, 'जिबाल', खेड़ा आदि के द्वारा अथवा लाठियों और कुल्हाड़ियों से या बन्दूकों से नष्ट करनापड़ताहै ।

प्रकृति स्वयं पहाड़प्रदेश के कृषक को प्रत्येक प्रकार से हानि पहुंचाने को प्रस्तुत रहतीहै। वर्षा की तिथियां और मात्रा सदा अनिश्चित रहतीहैं। वर्षा कभी देर से और कभी शीघ्र आरम्भ होकर भोले कृषकों को भारी हानि पहुंचातीहै। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर वर्षा की मात्रा बदलतीरहतीहै और एक ही क्षेत्र में भी, वर्षा की मात्रा प्रति वर्ष बढ़ती-घटती रहतीहै।

बरसात के तीन महीनों को छोड़कर शेष महीनों में वर्षा स्थानीय या अन्य प्रकार के तूफानों से होतीहै। भयंकर औडल और चल-बसंत तूफानों से खेती ही नहीं, वृक्ष और मकान तक नष्ट होजातेहैं।

उत्तरी भागों में हिम-तूफानों और दक्षिणी भागों में ओलों के तूफानों से पकीहुई फसल नष्ट होते देर नहीं लगती। वज्रपात से वनों में चीड़ के वृक्ष नष्ट होजातेहैं और आग लगजातीहै, तथा गांवों में घर एवं पशु नष्ट होजातेहैं। तूफानों से बचने, उचित समय पर वर्षा करवाने तथा अति वर्षा को रोकने के नाम पर उपत्यका के भोले निवासी डल्या द्वारा ठगेजातेहैं[1]।

पहाड़ी कृषक और उसके परिवार के व्यक्ति प्रति दिन अंधेरे में ही उठकर दिन भर घोर परिश्रम करतेहैं। रात्रि को भी वे तब तक कार्य करतेरहतेहैं जब तक घोर अन्धकार उन्हें नहीं रोकता।

इतना श्रम करने पर भी खेतों से पेट भरने के लिए पूरा अन्न उत्पन्न नहीं होता। अधिकांश नारियों के लिए गेहूं की रोटी और और भात दुर्लभ हैं। उन्हें प्रायः जौ और मंडुवा की रोटी, झंगोरा-कौणी, एवं जौ तथा मंडुवा के बाड़ी पर निर्वाह करनापड़ताहै। अधिकांश नारियों को भरपेट भात और गेहूं की रोटी केवल त्योहार

---

[1] देखिए, भाग ५, परिच्छेद ४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के दिन या गांव में द्यो-पुजाई अथवा किसी के विवाह के दिन ही मिलतेहैं ।

जिन भागों में खेतों से पेट भरने के लिए पूरा अन्न उत्पन्न भी होजाताहै, उनमें भी अपनी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरे साधन ढूंढनेपड़तेहैं ।

पशुचारण भी इतना ही संकट और कष्टपूर्ण है। घर पर पशु पालने के लिए घास वनों से लानीपड़तीहै । ऊंचे दुर्गम पहाड़ी भेलों पर घास काटने का अथवा ऊंचे वृक्षों पर चढ़कर पशुओं के लिए उनकी छोटी टहनियां काटने का कार्य अति विकट है । प्रत्येक गांव में प्रति वर्ष दो-चार नारियां घास काटते समय भेल या वृक्षों से गिरकर आहत होतीहैं और उनमें से कुछ के प्राण तो इसी प्रकार जातेहैं ।

वन से घास और लकड़ियां लाने में व्याघ्र, भालू, सुअर और सर्प के आक्रमण का भय सदा बनारहताहै । व्याघ्र या चीता, जब नरभक्षी बनजाताहै तो सैकड़ों मनुष्यों के प्राण लेलेताहै[1] । उपत्यका के तीर्थयात्रा-मार्गों पर मरेहुए मनुष्यों को खातेरहने से व्याघ्र और चीते नरभक्षी बनजातेहैं और दूर-दूर तक छापा मारकर आतंक फैलादेतेहैं[2] ।

भालू, विशेषकर पुरुषों के मुख और नाक को विकृत करदेताहै । सुअर अपने विशाल और पैने दांतों से नर-नारियों को फाड़डालताहै । उपत्यका के निर्जन और दुर्गम क्षेत्रों में रहनेवाले नर-नारी पत्थर, डण्डे, दाथी या कुल्हाड़ी लेकर इन पशुओं से भिड़ पड़तेहैं, किन्तु निचले भागों के कायर व्यक्ति इनसे भागकर अपनी रक्षा करना ही उचित समझतेहैं[3] ।

१-कौरबेट--पृ० ७

२-कौरबेट--पृ० ५

३-पंत--पृ० १२५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सर्प सबसे भयंकर शत्रु है। वह खेतों के भीड़ों में, वन में और घर के अन्दर भी पहुंचकर सदा डसने को प्रस्तुत रहताहै। अंधेरे में गांव से खेतों में जाने, गोठ में अंधेरे में पड़ेरहने अथवा सेरा में रात को सींचाई करने में पग-पग पर सर्प का भय बनारहताहै। प्रति वर्ष सैकड़ों व्यक्तियों को सर्प काटतेहैं और कई इसी से मरजातेहैं। उपत्यका के भोले निवासी इसलिए व्याघ्र और सर्पों से अपनी रक्षा के लिए उनकी नरसिंह और नाग के रूप में पूजा करतेहैं[1]।

लगभग सारी कृषियोग्य भूमि पर कई पीढ़ी पहले से खेती होती आरहीहै। अस्तु जिस वेग से जनसंख्या की वृद्धि होरहीहै उसी वेग से इस पर्वतीय क्षेत्र में कृषिभूमि के क्षेत्रफल या उपज में वृद्धि होना असंभव है। विभिन्न भूव्यवस्थाओं में सरकार केवल कटील को जोड़कर[2] जिस पर तीन - चार वर्ष में केवल एक बार बीज छिड़केजातेहैं[3], लगान बढ़ायाकरतीहै[4]। ज्यों-ज्यों जनसंख्या बढ़रहीहै, प्रत्येक परिवार के पास औसत से भूमि घटरहीहै।

जिन स्वस्थ्य भागों में धरती अधिक उपजाऊ है, वहां मनुष्य वेग से बढ़कर प्रकृति की उदारता को प्रभावरहित बनादेताहै[5]। भारत के अन्य भागों के समान[6] उपत्यका में भी धरती की उर्वरता को नारी की उर्वरता से नापाजासकताहै। उपत्यका के उन भागों में भी, जहां भूमि अधिक उर्वर नहीं है, उत्तम जलवायु के कारण नारी अधिक उर्वर है और शीघ्र ही जनसंख्या में वृद्धि करके कृषि से जीवन-निर्वाह की समस्या को अधिक जटिल बनादेतीहै।

प्रत्येक पुत्र को, विभिन्न प्रकार की, तलाऊं, ऊखड़, गध्वाड़ा आदि भूमि का समान भाग मिलताहै। उपत्यका के प्रत्येक खेत की, और खेत

१-देखिए, भाग ५, परिच्छेद ४
२-इवेटसन--पृ० १२
३-स्टोवेल--भू० पृ० ८; पौ०--पृ० १७
४-पौ--रिव्यू--पृ० ४
५-डार्लिंग--पृ० २६
६-डार्लिंग--पृ० २६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के विभिन्न भागों की उर्वरता में अन्तर होताहै, इसलिए प्रत्येक खेत का विभाजन आवश्यक होताहै। प्रायः भूमि जितनी अधिक उपजाऊ होतीहै, उतना ही अधिक उसका बंटवारा होताहै। उपजाऊ उपरांऊ भूमि और उत्तम जलवायु वाली तलाऊं भूमि जनसंख्या की वृद्धि को, और जनसंख्या की वृद्धि, ऐसी भूमि के बंटवारे को प्रोत्साहन देतीहैं।

कृषिभूमि की अल्पता और उसका क्षुद्रातिक्षुद्र टुकड़ों में विभाजन सारी विपत्तियों का मूल कारण है। इस प्रकार से भूमि का बंटवारा जहां-कहीं मिलताहै, वहां सर्वत्र उसके साथ उसकी बुराइयां भी मिलतीहैं[1]।

किन्तु उपत्यका में सर्वत्र खेत छोटे-छोटे और दूर-दूर तक फैलेहैं। उन तक पहुंचने में बहुत चढ़ाई और उतार पर चलनापड़ताहै। निरन्तर विभाजन से इनमें से अनेक खेत इतने छोटे होजातेहैं कि उन पर बैलों से हल नहीं चलसकता और वे इतने अधिक दूर पड़ जातेहैं कि उन तक हल-बैल और खाद लेजाना, प्रत्येक सारी के लिए तीन बार हल चलाना, और अन्नों को काटकर उनके गट्ठर शिर पर उठालाना, अत्यधिक कष्टप्रद होजाताहै।

इन दूरस्थित छोटे-छोटे खेतों के भीड़ों की रक्षा करतेरहना असम्भव होजाताहै। बार-बार उन तक पहुंचने और उनसे लौटने में अत्यधिक समय और श्रम नष्ट होताहै। इच्छानुसार फसलों का हेर-फेर नहीं होसकता। मूल्यवान् फसलों की उचित देखरेख नहीं होपाती।

नवीनता लाने का साहस करना असम्भव होजाताहै। पढ़े-लिखे व्यक्ति भी नए एवं वैज्ञानिक ढंग से कृषि और पशुपालन में सुधार करने में असमर्थ रहतेहैं। बार-बार कलह और मारपीट के अवसर

---

१ डार्लिंग--पृ० २६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आतेहैं, और शांतिप्रिय व्यक्ति को भी न्यायालय की शरण लेनीपड़तीहै[१]। इससे धन, समय, सद्भावनाएं तो नष्ट होजातीहैं, किन्तु रोग ज्यों का त्यों बनारहताहै।

खेतों के निरन्तर बंटवारे से अल्प कृषिभूमि के सारे दोष कई गुना बढ़जातेहैं। कृषि में उन्नति की आशा स्वप्न बनजातीहै। उपज निरन्तर घटतीरहतीहै।

धरती अपनी उर्वरता खोचुकीहै। पर्वतीय ढलुवां भूमि से उपजाऊ मिट्टी की परत नित्य बहतीरहतीहै इसलिए कृषि का उत्पादन मुख्यतया खाद पर निर्भर है। वनों के विनाश से पशुओं की संख्या बहुत घटगईहै। भाबर, गङ्गी तथा सलाण के अधिकांश भागों में जहां गांवों के निकट के वन नष्ट करदिएगएहैं, सर्वथा नग्न डांडे खड़ेहैं।

इन क्षेत्रों के वहुत-से कृषक केवल एक जोड़ी बैल और एक गाय या भैंस पालतेहैं। सुरक्षित सरकारी वनों के निकट अधिक पशु पालने पर प्रतिवंध है[२]।

सलाणप्रदेश में पौ के समय (१८९४) जितनी भेड़ - बकरियां पालीजातीथीं आज उनकी आधी भी नहीं पालीजातीं[३]। मोटर और खच्चर यातायात ने खड़्वालप्रदेश में भी भेड़ - बकरियों की संख्या बहुत घटादीहै[४]।

जनसंख्या की वृद्धि के कारण परती भूमि छोड़ने की प्रथा प्रायः समाप्त होगईहै[५]। पहले परती भूमिपर चरनेवाले पशुओं से भी धरती को पर्याप्त खाद मिलजातीथी। अब इस प्रकार खाद मिलना प्रायः बन्द होगयाहै।

१-डालिंग--पृ० २६
२-फेहरिस्त हकूक, ३ भाग
३- पौ --पृ० ७३
४-भाग ३, परिच्छेद १
५-प्रसाद--टिहरी पृ० १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर्वतीय खेतों में कृषि की अपेक्षा खड़-पातर कई गुना अधिक उत्पन्न होतेहैं। उन्हें उखाड़ने में अत्यधिक समय नष्ट होताहै। ये खेती की अधिकांश खाद का लाभ स्वयं उठातेहैं। इनसे हरी खाद बनाने की प्रथा उपत्यका में प्रचलित नहीं है।

उत्पादन प्रति वर्ष घटताजारहाहै। अन्यत्र के समान[1] यहां भी प्रायः पांच वर्षों में से एक वर्ष में अच्छी उपज होतीहै, एक वर्ष में उपज अति अल्प होतीहै और तीन वर्षों में उपज सामान्य होतीहै। नयार गड्डी के कतिपय भागों तथा रवांई, भिलंगना, पिंडार और मन्दाकिनी की घाटियों के कुछ भागों को छोड़कर अन्यत्र अन्न खरीदकर निर्वाह कियाजाताहै।

ज्यों-ज्यों अन्नों का मूल्य बढ़रहाहै त्यों-त्यों प्रवास पर जाकर मजदूरी करने की प्रथा बढ़रहीहै और ज्यों-ज्यों प्रवास पर जाने की प्रथा बढ़रहीहै, त्यों-त्यों कृषि की अधिकाधिक अवहेलना के कारण उत्पादन अधिकाधिक घटरहाहै।

जलवायु स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम होने पर भी मानसून के आगमन और प्रत्यागमन की अनिश्चितता, वर्षा की अनिश्चित मात्रा[2], सहसा आनेवाले ओलों और हिमतूफानों के उत्पात कृषक के भाग्य को सदा अनिश्चित बनाएरखतेहैं।

कृषि के लिए बैल, खाद के लिए दो-चार पशु तथा परिवार के निर्वाह के लिए एक-दो गाएं या एक भैंस पालना आवश्यक है। अन्य वस्तुओं के साथ इनका मूल्य भी कई गुना अधिक होगयाहै।

उपत्यका के विभिन्न भागों में प्रति वर्ष पशुरोगों का आक्रमण होताहै। 'खुरिया' (मानरोग) गाय-भैंस के लिए और 'पोटक्या' (दस्तरोग) भेड़-बकरियों के लिए महामारी के रूप में फैलतेहैं। प्रति वर्ष सैकड़ों पशु इन रोगों से मरतेहैं। पर्वतों से गिरकर तथा

१-डार्लिंग--पृ० २७ २-ह्वेटसन -पृ० ३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्याघ्रादि के द्वारा सैकड़ों पशु मारेजातेहैं। जब पशुओं की महामारियां फैलतीहैं तो गांव के गांव पशुशून्य होजातेहैं[1]।

गाय या भैंस के मरते ही, परिवार के ऊपर भारी विपत्ति आजातीहै और बैलों के मरने से खेती चौपट होजातीहै। हल चलाने के महीनों में, बैलों की मृत्यु से उपत्यका के कृषक को या तो साहूकार की शरण लेनीपड़तीहै, अथवा अपनी पिछली कमाई की पूंजी खोनी पड़तीहै।

उपत्यका में कृषि और पशुचारण मुख्य व्यवसाय होने के कारण पशुओं को परिवार के प्राणी के समान समझाजाताहै। उपत्यका का कृषक अपनी गाय-भैंस और अपनी माता, पुत्री तथा पुत्रवधू, सबको सदा एक ही शब्द 'बोई' (माता) कहकर पुकारताहै और बैल, पिता तथा पुत्र, तीनों को एक ही शब्द 'बाबा' (पिता) से सम्बोधित करताहै। इनकी मृत्यु पर वह उतना ही शोक मनाताहै जितना परिवार के किसी प्रिय व्यक्ति की मृत्यु पर।

जो लोग, अलकनन्दा-उपत्यका--जैसे प्रदेश से परिचित नहीं हैं, उनके लिए यह कल्पना करना कठिन है कि उपत्यका के जीवन में पशुओं का कितना महत्वपूर्ण स्थान है। बैलों के बिना कृषि असंभव है। उपत्यका में अन्नों से भी अधिक महत्वपूर्ण दूध या छांछ है। सहस्रों परिवार छांछ में झंगोरा की कणकी, मंडुवा और जौ का आटा अथवा केवल पौधों के पत्तों को उबाल कर अपना निर्वाह करतेहैं।

सहस्रों परिवारों के लिए, विशेषकर दरिद्र, विधवा और अनाथों के लिए, गाय या भैंस कामधेनु है। परिवार का पालन छांछ से होताहै। घी (और बाजारों के निकट दूध) बेचकर गुड़, नमक और वस्त्र

१-इवेटसन--पृ० ५; १९२६ से २८ तक कटूलस्यूं, सितोनस्यूं, कालीपाठ, बूंगी, बिजलौट तथा अन्य कई पट्टियों में ९० प्रतिशत पशु मानरोग से मरगएथे। --इवेटसन-पृ० ५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खरीदे जातेहैं। बच्चों की शिक्षा, भूमि-कर और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति का एक मात्र साधन पशुओं के घी या दूध का विक्रय है।

विदेशों में कृषि और पशुओं के बीमे की सुविधाएं प्राप्त होने से विपत्ति में कृषक का परित्राण होजाताहै[1]। उपत्यका में जहां ९९ प्रतिशत मनुष्यों के जीवन का बीमा नहीं होता वहां कृषि और पशुओं के बीमे की कौन सोचसकताहै ? पशुओं की महामारी फैलने पर या तो उपत्यकानिवासी भगवान अथवा भाग्य के भरोसे बैठेरहतेहैं, या डल्या[2], जागरी, गारुड़ी और मन्त्रतन्त्र जाननेवालों की शरण लेतेहैं।

उपत्यका में प्रत्येक परिवार की भूमि है और प्रत्येक परिवार का आधार कृषि है। यहां कृषि और पशुचारण के लिए पत्नी उतनी ही आवश्यक है जितना कृषि के लिए हल और बैल। भोटांतिक प्रदेश में तो कृषि के लिए हल और बैल भी उतने आवश्यक नहीं है, जितनी पत्नी[3]।

उपत्यका में कृषक पुरुष के आवश्यक कार्य केवल दो हैं :--हल चलाना और बीज बोना। खेतों में डले तोड़ना, कंकड़-पत्थर उठाना और निराई-गुड़ाई करना, फसल काटना और मांडना, पशुचराना, गोबर निकालना, खेतों में गोबर बखेरना, वन से घास-लकड़ी लाना, कूटना, पीसना और भोजन बनाना, सब वही करतीहै, और इन सब कार्यों को अति सुन्दर ढंग से निभातीहै।

खश-नारी आर्थिक दृष्टि से जाटनी के समान बहुमूल्य सम्पति है। वह केवल हल नहीं चलाती और भीड़े नहीं बनाती, शेष कृषि कार्य का कोई ऐसा कार्य नहीं जिसे वह नहीं करती और कुशलता से

१-डार्लिंग--पृ० ३१ २-देखिए, भाग ५, परिच्छेद ४
३-भाग २, परिच्छेद १

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं निभाती। वह प्रत्येक कठिन कार्य को हंसते-हंसते पूरा करती है और घोर से घोर विपत्ति में भी नहीं घबराती। वह पुरुषों के समान पुरुषार्थी और साहसी होतीहै।

उसे सदा दूसरों से बढ़चढ़कर कार्य करने की चिंता रहतीहै। वह अंधेरे में ही उठजातीहै और रात्रि को अंधेरा होने से पहले खेतों से कभी नहीं लौटती। आराम किसे कहतेहैं, यह वह नहीं जानती। वह पचास वर्ष को आयु में भी युवती बनीरहतीहै और साठ वर्ष की आयु तक प्रति दिन १८ घंटे कार्य करतीहै। अत्यन्त सुदृढ़ शरीर, कष्ट-सहिष्णुता अथक श्रम तथा मितव्ययता की दृष्टि से, किसी भी देश या जाति की की नारी खश-नारी से आगे नहीं बढ़सकती।

उपत्यका में नारी आवश्यक सम्पत्ति और उपयोगी सेवक है। उसके लिऐ ६०० रु० से लेकर १००० रु० तक शुल्क देनापड़ताहै। प्रत्येक व्यवित की भूमि है और उसके लिए पत्नी नितांत आवश्यक है। पत्नीरहित का जीवन दुखमय होताहै। उसके घर की देखरेख करने वाला, रोटियां बनाकर खेत में और गोठ में पहुंचानेवाला, खेत में निराई-गोड़ाई करनेवाला, कोई नहीं होता। उसे स्वयं कूटना-पीसना और स्वयं भोजन बनानापड़ताहै। और उसे ही बरतन मलनेपड़ते हैं। उसके घर और वस्त्र गंदे रहतेहैं ।

कृषि और पशुचारण दोनों के लिए नारी अति आवश्यक है। उपत्यका की भूमि प्रत्येक व्यवित को विवाह के लिए वाध्य करतीहै और प्रत्येक व्यक्ति विवाह करताहै। अधिकांश व्यक्ति अपनी दो, चार या अधिक वर्षों की कमाई, प्रायः अपनी सारी पूंजी लगाकर और कई तो सैकड़ों रुपया ऋण लेकर विवाह करतेहैं।

धनी-निर्धन सभी विवाह करतेहैं। धनियों को प्रायः कन्या निःशुल्क मिलजातीहैं, किन्तु निर्धन को कोई कन्यादान नहीं देता। इसलिए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपत्यका - निवासियों के ऋण के कफन में विवाह--ऋण की कील सबसे गहरी होतीहै [१] ।

नारी-शुल्क के अतिरिक्त विवाह में उससे भी अधिक व्यय आभूषणों को खरीदने और बिरादरी को खिलाने - पिलाने आदि में होताहै । बिवाह के लिए आभूषण आवश्यक हैं । उन्हें सुहाग - सौभाग्य का आवश्यक चिह्न समझाजाताहै । परिश्रम की कमाई तथा सवाया दर (२५ प्रति सैकड़ा) पर लिएगए ऋण का धन 'ब्यौली' (बघू) के अंग-प्रत्यंग में आभूषण पहनाने में नष्ट होताहै ।

नारी का समाज में सम्मान उसके आभूषणों से होताहै । इसलिए नारी सोने के आभूषणों के लिए आग्रह करतीहै। जो व्यक्ति सोने के आभूषण नहीं बनवासकते, उन्हें ताने सहनेपड़तेहैं और समाज में लज्जित होनापड़ताहै ।

इसका सारा दोष नारी के शिर मढ़ना अनुचित है। जिस प्रदेश में नारियां खरीदी और बेचीजातीहैं, जहां कलह होने पर पति पत्नी को त्यागसकताहै, अथवा पति की मृत्यु पर उसके निर्वाह के साधन लुप्त होसकतेहैं और उसे सरलता से पति की भूमि से हटाया जासकताहै, वहां नारी को आकस्मिक विपत्ति और भविष्य के हित के लिए आभूषण आवश्यक हैं । ज्यों-ज्यों जीवन जटिल होरहाहै, नारी चांदी के आभूषणों से सन्तोष न करके सोने के आभूषण मांगतीहै [२]।

उपत्यका के जीवन के लिए पुत्र का होना आवश्यक है । वृद्ध या रुग्ण होने पर, यदि कोई कृषि और पशुओं की देखरेख करनेवाला न हो, तो वृद्ध या रुग्ण नर-नारी के निर्वाह का कोई प्रबन्ध नहीं होसकता ।

उपत्यका में कृषि और पशुचारण से उत्पादन इतना कम है कि जिस परिवार का कोई व्यक्ति गांव से बाहर प्रवास में मजदूरी नहीं

१-डार्लिंग--पृ० ५३ २-मिलाइए, डार्लिंग--पृ० ५६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करता उसका निर्वाह नहीं होता। भूगोलिक परिस्थिति प्रवास में मजदूरी करने की प्रथा को तथा अधिक संतान के उत्पादन को प्रोत्साहन देतीहै। जिनका पुत्र नहीं होता वे साठ वर्ष की आयु में भी बिवाह करतेहैं। यदि ऐसा नहीं करते तो धर्मपुत्र या घरजवांई रखतेहैं।

वर्तमान समय की संकटरहित परिस्थिति में, उपत्यका में वेग से जनसंख्या की वृद्धि होरहीहै और पिछले १५० वर्ष में उपत्यका की जनसंख्या साढ़े सात गुना बढ़गईहै। अधिक जनसंख्या का अर्थ है खेतों का अधिक विभाजन, उत्पादन में अधिक कमी, जीवनस्तर में अधिक गिरावट, अधिक ऋण और अधिक प्रवास।

उपत्यका - जैसे प्रदेश में, जहां मनुष्य अपने साधनों के अनुसार व्यय न करके, अपनी परम्पराओं और पड़ोसियों के उदाहरण से प्रभावित होकर व्यय करताहै, उसकी थोड़ी-सी भूमि की आय उसका साथ नहीं देती और उसे प्रत्येक सामाजिक और धार्मिक परम्परा के निर्वाह के लिए ऋण लेनापड़ताहै।

ज्यों-ज्यों भूमि अधिक महंगी होरहीहै त्यों-त्यों ऋण अधिक सरलता से मिलनेलगाहै। दो पीढ़ी पहले ऊखड़-भूमि २५ रु० नाली और तलाऊं भूमि ५० रु० नाली बिकतीथी। आज उनका मूल्य चौगुना बढ़गयाहै। इसी प्रकार ऋण में भी वृद्धि होरहीहै।

ज्यों-ज्यों भूमि का मूल्य बढ़रहाहै, त्यों-त्यों भूमि की भूख बढ़ती जारहीहै। और उसी के साथ भूमि के झगड़े बढ़रहेहैं जिनके लिए न्यायालय की शरण लेनीपड़तीहै।

उपत्यका के निवासी केवल कृषि करने के उद्येश्य से ही भूमि के लिए ही नहीं झगड़ते, वे जन्मजात भू-पुत्र हैं। अपनी भूमि, अपने परिवार की भूमि और अपने गांव की भूमि को वे पूर्वजों की पवित्र धरोहर समझतेहैं[1]। वे चाहे उस पर कृषि करें या न करें उसे दूसरों

१-एंत--पत्र, पृ० ३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के पास नहीं जानेदेना चाहते । अपनी शक्ति से बाहर ऋण लेकर भी उसे खरीद लेतेहैं । यदि उसे कोई दूसरा खरीदना चाहताहै तो वे न्यायालय की शरण लेतेहैं और भूमि के मूल्य से भी अधिक धन न्यायालय में नष्ट करदेतेहैं[१] ।

उपत्यका के भू-पुत्रों की दृष्टि में सबसे अधिक सम्मान उसका है, जिसकी अधिक भूमि होतीहै । रुग्ण, वृद्ध, अशिक्षित, कुरूप को भी, यदि उसके पर्याप्त 'टुकड़े' (खेत या भूमि) हैं, सरलता से लोग पुत्री देदेतेहैं । भूमिहीन को समाज में अधिक सम्मान नहीं देते । प्रत्येक व्यक्ति बचत की पूंजी से प्रायः नई भूमि खरीदता है और नया मकान बनाताहै ।

उपत्यका में, जहां खेतों को इतना अधिक महत्व दियाजाताहै, वहां दुर्भाग्य से सरकारी कागजात (भूमि का रिकार्ड) बनाने में सावधानी नहीं बरती जाती[२]। इस रिकार्ड के आधार पर खेतों की सही नाप करना कठिन है[3] । इसमें प्रायः अनेक त्रुटियां होतीहैं[४] । इस पर सहसा

१-स्टोवेल--पृ० १८ २-स्टोवेल-- पृ० १७

३-- 'Apart from the question of difficulties in interpreting the settlement records, there is the question of the reliability and accuracy of the entries.' -- स्टोवेल, पृ० १८

४--'Reliance on them (settlement records) must be tempered with reasonable caution, once a fair case against them is shown to exist. As Mr. D.T. Roberts, Commissioner, remarked in a Kumaun appeal, settlement entries are only presumptive evidence, and may be, and often are, incorrect' --स्टोवेल, पृ० १६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्वास करना अनुचित है[१]। खेतों के मानचित्र दोषपूर्ण और भ्रम में डालनेवाले हैं[२]। इसलिए उपत्यका के न्यायालयों का प्रमुख कार्य प्राय: भूमि सम्बन्धी झगड़ों का निपटारा करना होताहै[३]।

अमीन और दूसरे कर्मचारी अनजाने या जानबूझकर[४] इन कागजातों को तैयार करने में भारी भूल या अशुद्धियां करदेतेहैं।

१- 'It is, therefore, necessary to enter caution against giving settlement records in hills any such weight of presumption as attaches to the regularly-revised and checked village papers in the planes.'--स्टोवेल-पृ० १९

२- १९३० में इवेटसन द्वारा लिखीगईं निम्न पंक्तियां आज भी विचारणीय हैं। 'Naturally the maps now bear little connection with the actual land,......All records are rudimentary to a degree and all the areas depend on a very primitive form of measurement, made nearly 70 years ago, followed by two estimated additions, which do not pretend accuracy. It is surprising that these rudimentary records do not cause any serious inconvenience to government in collecting the revenue in full and equally true that they cause the very greatest inconvenience to the people who regard records as title deeds to their land.'--इवेटसन--पृ० ६

३- स्टोवेल--पृ० १८

४- 'Owing, however, to venality, carelessness

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसी अशुद्धियां करवाने या अशुद्धियां हटाने के लिए बहुत धन व्यय करनापड़ताहै ।

अशिक्षित, असावधान तथा कृषि और पशुचारण - जैसे व्यवसायों में व्यस्त रहने के कारण उपत्यकावासी इन अशुद्धियों को उचित समय पर शुद्ध नहीं करवापाते और आजीवन, कभी-कभी, दो-तीन पीढ़ियों तक इनके कारण निरन्तर न्यायालय की शरण लेतेहैं[1] ।

न्यायालय के झगड़ों और बढ़तीहुई आवश्यकताओं के लिए प्रायः ऋण लेनापड़ताहै । ऋण चुकाने के लिए अनेक व्यक्ति पुत्रियों का शुल्क लेतेहैं ।

सम्मानित व्यक्तियों को अपनी पुत्रियों के लिए वर ढूंढने में बहुत धन व्यय करनापड़ताहै ।

'द्यौ-पुजाई' (देवताओं का पूजन) विवाह, श्राद्ध आदि अवसरों पर अपनी 'नाक' रखने के लिए अधिकांश व्यक्ति अपनी शक्ति से अधिक व्यय करतेहैं । इन सबके लिए धन जुटाना आवश्यक है ।

प्रत्येक क्षेत्र की सुख-समृद्धि की मात्रा उस क्षेत्र में उत्पन्न भोजन

---

or ignorance on the part of the Amins who made the original entries and the lack of intelligence and of caution on the part of the villagers, a-great many wrong entries remained uncorrected. In many cases the villagers concerned never discovered that the entries were wrong for years after wards.' --स्टोवेल--पृ० १८

१--देखिए, स्टोवेल--पृ० १६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामग्री के अनुपात पर निर्भर होतीहै[१]। उपत्यका में, जहां केवल दस प्रतिशत जनता ही अकेले कृषि से अपना समुचित निर्वाह करपातीहै, ९० प्रतिशत जनता को अपने परिवार के निर्वाह और सुख-समृद्धि के लिए अतिरिक्त साधनों की ढूंढ करनीपड़तीहै।

उपत्यका में मुख्य व्यवसाय के रूप में कृषि पर चिपके व्यक्तियों की संख्या वेग से बढ़रहीहै। १९२१ में जिन खेतों पर १०० व्यक्ति निर्भर थे, १९५१ में उन खेतों पर निर्भर व्यक्तियों की सख्या १२५ और १९६१ में १३४ होगई। इससे भूमि का और भी बंटवारा एवं छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजन तो हुआ ही है, साथ ही अनुर्वर भूमि पर जनसंख्या का भार और भी अधिक बढ़गयाहै[२]।

प्रति वर्ष लगभग बीस सहस्र नए बच्चे उत्पन्न होकर जनसंख्या में जिस वेग से वृद्धि कररहेहैं, उसी वेग से उपत्यकावासियों की आर्थिक समस्याएं अधिकाधिक जटिल बनतीजारहीहैं[३]।

स्वयं कुछ न कमाने वाले तथा अपने निर्वाह के लिए परिवार के दूसरे व्यक्तियों पर निर्भर रहनेवाले आश्रितों (non earning dependents) की संख्या वेग से बढ़रहीहै। १९२१ में ऐसे व्यक्तियों की संख्या कुल जनसंख्या का ३२.७ प्रति शत थी। १९५१

१- The happiness of countries depends 'on proportion which the population and the food bear to each other.' --Malthus - Book II, Chap. XIII

२- 'This has resulted in progressive fragmentation and sub-division of holdings and pressure on impoverished soil.' --प्रसाद - टिहरी, भू० पृ० ४

३- प्रसाद - टिहरी--भू०पृ० ३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में उनकी संख्या ३६.८ प्रति शत होगई[1] । तथा इस समय लगभग ४२ प्रति शत तक बढ़गईहै ।

निश्चय ही यह बढ़तीहुई बेकारी का द्योतक है । इससे यह भी स्पष्ट है कि जनसंख्या के एक बड़े भाग को वर्ष में कई दिनों तक बेकार रहनापड़ताहै[2] ।

उपत्यकावासियों की निर्वाह-समस्या का अध्ययन करने पर १९५१ में राजेश्वरीप्रसाद ने चेतावनी दीथी कि इस क्षेत्र के आर्थिक संतुलन को ठीक रखने के लिए यह परम आवश्यक है कि जनसंख्या के एक बड़े भाग को कृषि से हटाकर कुटीरउद्योगों तथा अन्य व्यवसायों में लगायाजाए और कृषकों को अपने खाली समय में कुछ सहायक व्यवसाय अपनाने को प्रेरित कियाजाए[3] ।

अन्य पर्वतीय क्षेत्रों में, फल-उत्पादन, कुटीरउद्योग, सहकारी योजना, व्यापार और सरकारी नौकरियों से अधिकांश व्यक्तियों को आजीविका कमाने के अवसर मिलतेहैं ।

खेतों का छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजन, दूर-दूर तक यत्र-तत्र बिखरे खेत, ऊबड़-खाबड़ पथरीली भूमि, सींचाई और वृक्षों की सुरक्षा के साधनों का अभाव, सहसा आनेवाले प्राकृतिक प्रकोप, साहस, पूंजी, रुचि और शिक्षा की कमी, तथा सहयोग का अभाव आदि उपत्यका में फलों के उत्पादन में भारी रुकावट डालतेहैं ।

१- प्रसाद - टिहरी--भू० पृ० ४ २- प्रसाद - टिहरी--भू० पृ० ४

३-'It is only by a diversion of the population to cottage and other industries and by supplying subsidiary occupations to agriculturists that the present disequilibrium in economy of the district can be redressed.'--प्रसाद-टिहरी --भू० पृ० ४ तथा देखिए, प्रसाद - गढ़वाल--भू० पृ० ५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मैदान से कलमें मंगाकर उपत्यका में जहां वृक्षारोपण कियागया है, वहां उत्साहवर्द्धक सफलता न मिलना स्वाभाविक है।

उपत्यकावासियों की प्रमुख समस्या अपने लिए दैनिक भोजन का उत्पादन है। प्रत्येक फसल की उपज दूसरी फसल पकने से एक-दो मास पूर्व ही समाप्त होजातीहै। ऐसी अवस्था में, अपने खेतों में फलदार वृक्ष लगाकर, उनसे प्राप्त होनेवाले लाभ की आशा में, कई वर्षों तक वृक्षों की सेवा और फलों की प्रतीक्षा बहुत थोड़े व्यक्ति करसकतेहैं।

उपत्यका में कुटीरउद्योगों का सर्वथा अभाव है। लोहे के उपकरण, बांस आदि की टोकरियां, ऊन, भांग और सूत के वस्त्र, लकड़ी, मिट्टी और धातु के बरतन, लकड़ी, मिट्टी और पत्थर की देवमूर्तियां, पहाड़ी कागज और अन्य वस्तुओं का कुटीरउद्योग के रूप में पहले सर्वत्र निर्माण होताथा। उपत्यका के शिल्पकार अत्यन्त कुशल कलाकार थे। उनकी पिछली अति सुन्दर रचनाएं देखकर आज आश्चर्य होताहै।

इन लाभकारी कुटीरउद्योगों को आर्यसमाजी बनने की धुन में शिल्पकारों ने त्यागदियाहै। जिससे उन्हें और उपत्यका के सभी निवासियों को बहुत हानि पहुंचीहै।

एक दूसरे से असंबद्ध रौलियों और पहाड़ी ढ़ालों की गोद में पले हुए पर्वतीय द्वीप के इन निवासियों में सहकारिता की भावना का अभाव उनकी सबसे बड़ी दुर्वलता है[१]। फलतः, सरकार गांव में सहकारी योजनाओं द्वारा जनता को लाभ उठाने के जो अनेक स्वर्ण - अवसर देतीहै, उनसे उपत्यकावासी समुचित लाभ नहीं उठापाते।

१-मिलाइए-'Lack of cohesion due to presence of physical barriers impending intercourse, is the

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गांव के सभी परिवार या परिवार के सभी व्यक्ति प्रायः एक साथ मिलकर किसी योजना को सफल बनाने में असमर्थ रहतेहैं[१]। उनमें प्रत्येक का पृथक् और स्वतन्त्र दृष्टिकोण होताहै[२] और वह दूसरों के दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न नहीं करता[३]।

भूगोलिक परिस्थिति, जो उन्हें शताब्दियों से एक-दूसरे से पृथक् करतीरहीहै, आज भी उनके हृदयों को एक-दूसरे से मिलने नहीं देती[४]। एक-दूसरे के प्रति अविश्वास की भावना और 'छोटे गांवों के छोटे लोगों' की स्वार्थपूर्ण करतूतों से[५] उस अविश्वास की पुष्टि[६] उपत्यकावासियों को प्रायः सहकारिता में सक्रिय भाग लेने से रोकतीहैं।

वे अपनी[७] और दूसरों की क्षमता[८] तथा योजनाओं की सफलता पर बहुत कम विश्वास करतेहैं। यदि अधिकारियों या व्यक्ति विशेष की प्रेरणा से उन्हें किसी सहकारी योजना में सम्मलित होनापड़ताहै तो

---

inherent weakness of mountain peoples.'

--सेम्पल--पृ० ५६०

१- ' बाबु की सहेल। पूत की मछौल '। --लोकोक्ति

२- ' मी लगांदू आंगड़ा की। रांड लगांद घाघरा की '। -लोकोक्ति

३- मिलाइए -'Mountain tribes are always like a pack of hounds on the leash, each straining in a different direction.' --सेम्पल--पृ० ५६१

४- मिलाइए-'Wall-like barriers, holding them apart for centuries, make them almost incapable of concentrated action.' -सेम्पल--पृ० ५६१

५- घुघती मारि मी जुगती। तितरी मारि, आपरि भितरी।'

६- 'कुछ खायो गाड क मोरू न। कुछ खायो डांड क चोरू न।'

७- 'आप घोड़ा न बाप घोड़ा। लात्यूं-लात्यूं न थुंथरो फोड़ा।'

८- 'ऊ भैंसी हौरि दुंदन जू पकोड़ी दगदन।' -लोकोक्तियां

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार, लादागया संगठन स्वेच्छा पर निर्भर न होने के कारण ढीला-ढाला रहताहै, तथा थोड़े ही समय में सरलता से छिन्न-भिन्न होजाताहै[१]।

बड़े पैमाने पर व्यापार की सुविधा मुख्यतः उपत्यका के नगरों, कोटद्वार, ऋषिकेश, दोगडा, लैंसडौन, सतपुली, पौड़ी, श्रीनगर टिहरी, उत्तरकाशी, पीपलकोटी और जोशीमठ में ही संभव है।

इन नगरों में भी उपत्यका के अनेक कृषक-पशुचारक जब अपनी छोटी पूंजी के सहारे 'लाला' बनतेहैं तो शताब्दियों से व्यापार की परम्परा में पलेहुए बनियों की चतुर प्रतिद्वंदिता में वे टिक नहीं सकते। तथा परिचित-अपरिचितों को मुंहमांगा उधार देकर वे अपनी पूंजी और ब्याज दोनों को खोबैठतेहैं।

उपत्यका में व्यापार के द्वारा मुख्यतः वे थोड़े-से व्यक्ति ही कुछ कमासकेहैं जो जन्मजात व्यापारियों की प्रतिद्वन्दिता से दूर, किसी चोरघाटे में व्यापार के नाम पर स्वेच्छाचार करतेहैं, जो अपनी दुकान को सदावर्त नहीं बनाते और उधार की पूंजी को चक्रवृद्धि ब्याज सहित वसूल करने में प्रवीण हैं।

उपत्यका में सरकारी नौकरियों से अनेक परिवारों का निर्वाह होसकताथा, किन्तु उपत्यका के अन्दर प्रायः अधिक वेतन वाले महत्वपूर्णं पद प्राप्त करने के अवसर उन्हें बहुत कम मिलतेहैं।

उपत्यका के निवासी अपने खेतों में पेट भरने योग्य अन्न नहीं उगासकते। बढ़तीहुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने

१- मिलाइए-'Conslidation is never voluntary. It is always forced upon them from without. The combination thus made is reluctant, loose, easily broken, and genarally short living.' --सेम्पल-पृ० ५६०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही क्षेत्र में सहकारिता से अपना निर्वाह करने में उनकी जन्मजात दुर्बलताएं बाधक हैं[१]। व्यापारिक प्रतिद्वन्दिता में वे टिक नहीं सकते । उधार उनके व्यापार को पनपने नहीं देता । अपने ही क्षेत्र में अधिक वेतन वाले उच्च पद प्राप्त करने की आशा उनमें से केवल थोड़े ही व्यक्ति कर सकतेहैं ।

व्यापार-व्यवसाय में लगे व्यक्तियों की संतान, जब अपनी आजीविका कमाने की सोचतीहै, तो उसे प्राय: अपने पिता या परिवार की जो दुकान पहले से प्रस्तुत मिलतीहै, उसी के सहारे वह अपने निर्वाह का प्रयत्न करसकतीहै ।

कृषि और पशुचारण में लीन उपत्यका के ६८ प्रतिशत निवासियों की संतान जब अपनी आजीविका कमाने के लिए संसार में प्रवेश करतीहै, तो अपने खेतों और चराई क्षेत्रों से ही चिपके रहने पर उसका निर्वाह नहीं होसकता ।

अस्तु वह एक ही मार्ग अपनातीहै--प्रवास में जाकर कमाना और प्रवास की कमाई से अपने परिवार को पालना ।

उपत्यका के निवासी अवसर मिलते ही आजीविका की ढूंढ में प्रवास पर जाने के लिए प्रस्तुत रहतेहैं । वर्ष के अधिकांश में गांवों में केवल बच्चे, नारियां और वृद्ध ही दिखाईदेतेहैं । बीस वर्ष से अधिक आयु के स्वस्थ, शिक्षित या अशिक्षित पुरुषों को अस्थायी या स्थायी आजीविका कमाने के लिए अनिवार्य रूप से प्रवास पर जानापड़ताहै[२] ।

१- मिलाइए, -Every aspect of mountain environ ment makes against social integration.' --सेम्पल, पृ० ५९१

२-देखिए--प्रसाद--सेंसस हैंड बुक टिहरी, १९५१ तथा सें० हैं० बुक गढ़वाल, १९५१ में आयु के अनुसार जनसंख्या के आंकड़े

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिक्षा के प्रचार और आवागमन की सुविधाओं में वृद्धि से प्रवास को अधिकाधिक प्रोत्साहन मिलरहाहै। जिससे कृषि और पशुचारण दोनों की अधिकाधिक अवहेलना होरहीहै[१]।

पहाड़प्रदेश के अधिक ऊंचे भाग राठ में, जो युवक मजदूरी के लिए प्रवास पर नहीं जाते वे खरकों में गाय-भैंसें और बुग्यालों में भेड़-बकरियां चराकर अपनी आजीविका जुटातेहैं[२]।

भोट के निवासी तिब्बत और भाबर से व्यापार करके अथवा निर्माण कार्यों में मजदूरी करके तथा वर्तमान युद्ध की परिस्थिति में सैन्य-सामग्री ढ़ोकर अपनी आजीविका जुटातेहैं। उनके ग्रीष्मकालीन और शीतकालीन आवासों में केवल नारियां और बच्चे ही मिलतेहैं। पुरुषों को वर्ष भर में तीस दिन भी घर पर टिकने का अवसर नहीं मिलता[३]।

उपत्यका के विभिन्न भागों में, वहां का ऊबड़-खाबड़ और अनउपजाऊ धरातल अपने युवा पुत्रों को बार-बार घर से बाहर निकालकर प्रवास में आजीविका कमाने के लिए विवश करताहै।

जिस प्रकार पक्षी रात खुलते ही अपने घोंसलों से उड़कर दाना चुगने चलेजातेहैं, और समय-समय पर अपने बच्चों के लिए, अपनी चोंच पर थोड़ा-सा भोजन लेकर अपने घोंसलों में आतेरहतेहैं, उसी प्रकार उपत्यका के विभिन्न भागों के युवक योवन में पदार्पण करते ही अपने गांवों से, प्रव्राजी घोषयात्रा, घोषयात्रा या ऋतुकालीन प्रवास द्वारा आजीविका जुटाने चलपड़तेहैं और समय-समय पर अपने गांवों में लौटकर अपने परिवार को प्रवास की कमाई से पालतेरहतेहैं।

१- देखिए- भाग ५, 'अलकनन्दा-उपत्यका में ऋतुकालीन प्रवास'
२- ,, ,, ३, 'राठप्रदेश के पशुचारक'
३- ,, ,, २, 'उत्तराखण्ड के भोटांतिक'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुक्रमणिका

गिरिद्वार—

कुंगरी-बिगरी - ६४

जैलूखगा - ६४, ९४

दमजन - ६४, ६४

माणा - ६४, ९४

चोरहोती - ९४

दर्मा - ६४

नीती - ६४, ९४

शलशल - ६४

गिरिशिखर—

आल्पस - ४५

कुर्नलिग - ६५, ६८

कैन्टाब्रियन - ४५

गन्धमादन - ६५

गंगोत्तरी - ६५

चौखंभा - ६५

जूरा - ४५

देवघाट - ६५

नन्दाकिनी - ६५

नीलकंठ - ६५

नर-नारायण पर्वत - ६५

नीती शिखर - ६९

बन्दरपूंछ - ६५, ७२

महापंथ - ९६, १०२, ११२

शंकराचार्य - ६५

कामेत - ६४

केदारहिमाल - ६५, ७०

खरचाखंड - ६५

गौरीपर्वत - ६५

चिणियाकोट - ७२

जंस्कर - ५०, १२६,

द्रोणागिरी - ६५

नन्दाकोट - ६४, ६५

नन्दाघुंघटी - ६५, ६९, ७०

नन्दादेवी - ६४

बदरीनाथ - ७२

भारतखंड - ६५

यमुनोत्तरी कांठा - ६५

श्रीकंठ - ६५

स्वर्गारोहिणी- ६५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सतोपंथ - ६५
त्रिशूल - ६५
हाथी पर्वत - ६५

जातियाँ—

आर्य - ९१
ओल्या - ९९
कनैत - ५१, ५६
कुमाउनी - ४३, ४७, ४८, ५१, १३४
खश - ४३, ४६, से ४८, ५३, ९१ से ९३, ९५, ११०, १७५
गद्दी - ४२, ४६, ४७, ५५, ५६
गूजर - ८८
ग्यगर-खम्-पा - देखिए डोलबा
गोरखा - ७६, ११२, १७२
चकरा - ५१, ५६, ५७
चाई - ५१, ५६
जाड - ४६, ५६
जोहारी - ४६, ५६
झोझा - ५१
डोम-१६, ९१ से ९३, १०८, ११२
डोम-शिल्पकार - ४८, ९२, ९३
डोक्-पा - ५६
तंगण - ११२
थाड़ू - १२९, १३४, १४०, १४३
द्विज - १०८, ११२
औजी-बाजगी - ९३, ११३
अंगरेज - १३९
किरात-भिल्ल - ९०, ९१, ९३ से ९५, १०२, १०३, १२६,
खडवाल - ४२, ४६ से ४८, ५३, ५६, ९३, ११०
गढ़वाली - १४, ३४, ३७, ३८, ४८, ६१, ८८, १०१, १०५ ११६, ११९, १२१, १२९, १३०, १३४, १३८, १४० १४३, १५२, १५६
चमार - १२९, १३४, १४०, १४३
जरमन - १३८
जागरी - १५८, १६०, १७५
जोगी - ११२
डल्या - ४८, ९९, १७५
डोम-नर्तक - ४९, ९२, ११२
डोटियाल-४८, ५१, ५६, ९२, ११७
डोलबा - ४५ से ४८, ५१, ६४
तोलछा - ४६, ५६
दरद-खश - ९१, ९३, ९५, १०२, १०३, १०८, ११०, १११, १२६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धौगरी - ५१, ५६
पजांई - ४५
पातर - ४५
पितृसमाधि-निर्माता - ८६
फिक्वाल - ४४, ५६, १०२, ११२
बघानी - ५१, ५७
बंसकट्टा - ५६
बणगूजर - ४५ से ४८, ५६
बाक्की (पुछेर) - ६८
भाट - ४५, ९३
मारवाड़ी - १३४
मारछा - ४६, ५६
शरणार्थी - १३४
शिल्पकार - ४८, ९२, ९३, ११७, १८४
हुणिया - ४६, ५१, ५३, ५६
हुड़क्या - ९३
नायक - ४६, ९८, ११३
परतंगण - ११२
पुर्तगाली १३८
पंडे - ४८, ५१
बनिया - १३४
बिठ - १६, १५५
ब्राह्मण -११२
बादी - ४५, ४८, ९३, १०२
बोकसा - १२९, १३४, १४०, १४३
भोटांतिक - ४०, ४२, ४६, ४८, ५५, ११३
मिरासी - ४५. ९३,
यूरोपियन - १३८
शक - ९१
हरिजन - १०८, ११०, ११८, १५५, १५६

तप्तकुंड—७२
गंगनाणी - ७२
तपोवन - ७२
तप्तकुंड (केदारनाथ) - ७२
बदरीनाथ - ७२

देवता—
कुलदेवता - ९७
घंटाकर्ण - ९७
नृसिंह - ९९, १०२
भैरव - ९७
सिद्ध बाबा - ९७, ९९
क्षेत्रपाल - ९९
गणेश - ९७, ९९
नाग - १०२
भूमिया - ९७, ९९
भैंरों - ९९
सिद्वा-बिध्वा - ९७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नदियां—

अलकनन्दा - १४, ६१, ६६, ६८, ६६, ७०, ७४, ७५, ७७, ८६, ८६, १०२, १४५
गंगाजी - ३४, ६१, ६४ से ६६ १०२, ११२, १२४
टोंस - ७२, ६१
नयार - ४७, ६१, ६६, ७१, ७४, ७५, ७७, ८२, १४५
पबार - ७२, ६१
बिरहीगंगा - ६६, ७०, ७२, १५१
भिलंगना - ७१
मन्दाल - ७८, १४५
मन्दाकिनी - ६६ से ७१, ७५, ६७
यमुना - ३१, ६५, ७२, ८६ से ६१ ६४, ६७
रूपीं - ७२
विष्णुगंगा - ६४, ६८, ६७
श्योक - ७०
सरस्वती - ६८
सूपीं - ७२
हुइनी - ६६, १४५
ऋषिगंगा - ६६
खोह - ३६, ८२, १२७, १२६
गणेशगंगा - ६६
घिरतीगंगा - ६६
जाड़गंगा (जाह्नवी) - ६४, ७१
धौलीगंगा - ६४, ६८
नन्दाकिनी - ६६, ६७
पलांई सोत - ७८
पिंडार - ६६, ७०, ७५, ७७, ७८
भागीरथी - ६१, ६५ ६६, ६६ से ७२, ७४, ७५, ४७, ८६, ८६, ६०, ६७, १४५
मालन (मालिनी)-३६, ८२, १२७, १२६, १४५
रवासन - ८२
रामगंगा - ४७, ६१, ७१, ७५, ७७, ८२
सतलुज - ६२
सोना नदी - ७७
हिंवल - ६६ १४५

पर्वत-श्रेणियाँ या डाँडे—

अधारियाखाल - १४८
अमोला - ६६
ककूधार - ६६
अमेली - ६६
उतांई - ६६
खतली - ६६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्वालदम - ६६
चन्द्रबदनी - ६६, १४८
चांगसिल - ६२
तुंगनाथ - ८५, १०१
दिउली - ६६
दूधातोली - ४७, ६६
धनपुर - ६६
नागटिब्बा - ६६
बिनसर - ६६
महाबगढ़ - ६७
मसूरी का डांडा - ७२
राणीगढ़ - ६६
लघुहिमालय - ४३, ४७, ४९, ६३, ६६ से ६८, ८०, ८१, ८३, ८६, ९०, ९३, १०३, १२४
सिलोगी - ८२
हिमालय - ३४, ६३, ८५
हटकुणी - ६६
घंडियाल - ६६, १४८
चंडाखाल - ६७
जंस्कर - ५०, ८५
थडोलडांडा - ७२
दीपा का डांडा - ६६, १४८
द्वारीखाल - ८२, १४८
घूमाकोट - १४८
नौगड़ - १४८
मदराज - ६६, १४८
महाहिमालय - ४३, ४६, ४९, ६१, ६४, ६६, ७८, ७९, ८१, ८३, से ८६, ९०, ९१, ९३, ९६, ९७, १०३, १२३, १२४, १२६, १४५
सुरकंडा - ६६, ७२, १४८
शिवालिक - ३४, ४९, ६३, ६७, ६८, ८१, ८२, ८९, १२४, १४५

बुग्याल—

केदारनाथ - ८४
बदरीनाथ - ८४
बेदिनी - ८४
लोकपाल - ८४
छायापथ - ८४
बिसतोला - ८४
पंवाली - ८४

व्यक्ति—

ह्वटसन - ३७, ३८
एटकिनसन - ५८
उमरावसिंह रावत - ५८
ओ' मैस्टन - ५८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ओडेन - ५८
कौरवेट - ५८
गार्डनर - ५८
ग्रिशवाश - ५८
गुणानन्द जुयाल, डा० - ५८
जगमोहनसिंह नेगी - ५८
जीन ब्रूंश - ३३, ४६
तारादत्त गैरोला, रा०ब० - ५८
पंत, डा० ५८
परिपूर्णानन्द पैन्यूली - ५८
पौ - ५८, १६४, १७२
बेटन - ५८, १५४
भक्तदर्शन - ५८
महीधर बड़थ्वाल - ५८
मौन्टेनियर - ५८
रामजे - ११६, १२६
सप्रू - ५८
शिप्टन ५८
हरिशरण रतूड़ी - ५८
क्ले - ५८
गर्सिन -१२६
ग्रियर्सन - ५८
गोविन्द चातक, डा० ५८
गोविन्ददास, सेठ - ५८
चन्द राजा - १४२ टि०
जोशी, डा० - ५८
ट्रेल - ५८, ८१
पन्नालाल -५८
पातेराम - ५८
प्रणवानन्द - ५८, ७३
फूरर - ५८
बेकेट - ५८
मिडिलमिस - ५८
राहुल सांकृत्यायन - ५८
राजेश्वरीप्रसाद - १८३
वेब्र - ५८
स्टोवेल - ५८
श्यामसिंह नेगी - ५८

युग—

अंगरेजी राज्य - ८०, ११३, ११४, १५३
ग्राम तथा कृषि-विस्तार युग -११४
चराचरी का युग - ११६
निराशा का युग - ११८
पंवार युग - ११२
मुगल काल - ७६
ईष्ट इंडिया कम्पनी - ७६
कत्यूरी युग - ११३
गोरखा युग - ७६
चन्द राजा - १४२ टि०
वन-विनाश से कृषि - विस्तार युग ११४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सरोवर—

गोनाताल - ७०, ७२
देवताल - ६८, ७२
मसरताल - ७२
लोकपाल ताल - ७२
सहस्रताल - ७२
डोडीताल - ७२
नैनीताल - ७२
रूपकुंड - ७२
सतोपंथ - ७२

स्थान—

अगस्तमुनि - ७०
अलकनन्दा-उपत्यका - १४ से १६, ३४, ५७, ६१, ६४, ७५, ८६, १२६, १३४, १५४, १७४
आन्ध्र - १०५
उत्तरकाशी - १४, ३७, ६०, ६१, ६२, ८६, ८८, १८६
उत्तराखंड - ७८
ऊखीमठ - ७२
ऋषिकेश - १४, ५३, ८६, १८६
ऐता - १६७
ओसियान - ४५
कतल्या बड़ - १४२
करालघाटी - १४२
कलालघाटी - १४२
कनोर - ६०
कलकत्ता - ३८
कर्णप्रयाग - ६६, ७०, ८७
कालीमठ - १११,
अघारियाखाल - १४८
अलदाबा - १६३
असम - ६०, १०६
अलमोड़ा - ५६, ५८, ६२, १२५
आर्यावर्त - १०२
उत्तरप्रदेश - ५५, १०५
उपत्यका, तथा देखिए अलकनन्दा-उपत्यका - १४ से १६, ३४ से ४१, ४५ से ५५, ५७ से ६८, ७२ से ७४, ७७, ८०, ८१, ८४ से ९१, ९३ से ९६, ९८ से १०३, १०६, १०७, १०९ से १११, ११३, से १२३, १२५, १२७, १२९, १३३, १३४, १३७, १४३, १४७, १५१, १५६, १५८, १६०, १६१, १६५, १६७ से १७१, १७३ से १८०, १८२ से १८८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालगढ़ - १४२
कालखांद - १४२
कालापानी - १४२
कांगड़ा - ४१, ५१, ५१
कुरगती - ८३
केदारनाथ - ६५, ७२, ७४, ८०, ९७
कोसा - ८३
कोलोराडो गर्त - ६७
कोठगी - ७४,
क्वीन्सलैंड - १३८
खूंनीस्रोत - १४२
खड्वाल प्रदेश - १०९, ११५
गढ़वाल - १३, १४, ३४, ३७, ५४, ६० से ६२, ७१, ७२, ७६, ८८, ११५, १२१,
गनसाली - ७४
गोमुख - ७१
ग्वालदम ७१, ७५
गंगानाली - १४८
गंगानाणी - ७३, ८७
गूजरगली - १४२
घाड़ - १४६
चरेख - ८०
चन्द्रबदनी - १४८
चंबा - ४७
कालढुंगी - १४२,
कालीफाट - १६६
कालगड्डी - १४२
कालागढ़ - १२३
कुमांऊ - ५४, १३५
केदारखंड - ६१
कोटद्वार - १४, ५३, ८६, १२३, १२८, १२९, १३१, १८६
कौसानी - ५६
खरक प्रदेश - १०९, ११५
खूंनीबड़ - १४२
खंदलाई - १४२
गढ़देश - ३४, ११९
गरुड़ ५६
गड्डी - ३१, १२४, १४५, १४६, १४८, १६१, १७२
गोवा - १३८
गौचर - ६३
गंगासलाण - १४७
गंगोत्तरी ६५, ७१, ८०, ८३, ८६
गूमखाल - ८०, १४२
घंडियाल - १४८
चमोली - १४, ३४, ६० से ६२, ६४, ७२, ८८, ११५, १८६
चकरौता ११६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चंवड - १४६
चांठ - १४६
चोरगल्या - १४२
चोरघाटी - १४२
चोरवास - १४२
चोरु को सोत - १४२
चोरपाणी - १४२
चोरबाट - १४२
चौन्दकोट - १००, १३४, १४७
चौफीघाटा - १२६
चौकोट - ५१
जोशीमठ - ८६
जौनपुर - १६६
टिहरी - १३, १४, ६० से ६२, ७१, ८८, ११८, १२१, १८६
टिमरसैंण - ७४
डडुवा - ६६ टि०
डंडेलगांव - ८६
डाडामण्डी - ७५
डूण्डा - ७४
डोबरी - ७६
डोमाणा - १६
ढांगू - १४६ - १६६
तराई - ५१, ८७
तड़ासर - ८३
तपोवन - ७२
तल्लासलाण - १४७
तिब्बत - ४२, ४५, ४६, ६४, ८४, १२४, १२६, देखिए हूणदेश
तुंगनाथ - १११
तूमड़िया - १४२
दसौली - ७६
दीपा का डांडा - ८०, १४८
द्वारीखाल - १४८
दुसौन्धू - ७४
दूधातोली - ४३, ४७, ५६, ७०, ७१, ७५
दून - ७४
देवलगढ़ - ७६, १४७
देवप्रयाग - ६०, ७१, १४७
देववन - ७२
देहरादून - ५८, ६२, ७२, ११६, १२५
दोगडा - ५६, १८६
धरासू - ७१
धनपुर - ७६
ध्रुवप्रदेश- ६६
घूमाकोट - १४८
नन्दप्रयाग - ६६
नन्दादेवी तीर्थ - ६७
नगरासू - ७४
नलकटा - १४२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नागपुर - ७६, ७७
नीतीगांव - ८०, ८३
नेलंग - ८०
नौगड़ - १४८, १६७
पणाई - ६९, ७४, देखिए गौचर
पर्वतीय द्वीप - १६, ३३ से ३५
३७, ८९, १०९, ११९, १२१, १८४
पंजाब - ६३
पठाणू को चौड़ - १४२
पापीडांडा - १४२
पिथौरागढ़ - ६२, ६४
पैनखंडा - ७६
पौड़ी - ५८, ८०, ८६, १८६
बछणस्यूं - ७६, ७७
बंगाल - १०६
बल्लगांव - १११
बड़कोट - २६
बड़खोलू - ७४, १४५
बम्पा - ७४
बांघाट - ७०, ७४, १४५
बिठाणा - १५५
बारहस्यूं - १४७
बिजनौर - ६२, १२९
बूंगी - ७५, १६६, १७७
ब्राजील - १३८
नीलधारा - १२३
नेपाल - ५१, ६३
नैनीताल - ५८, ६२, ११३, १२५
पहाड़प्रदेश - १२३ से १२६, १३०,
१३१, १३४, १३५, १३७,
१३८, १४२, १४३, १४५,
१४६, १४८ से १५०, १५२
से १५४, १५७, १५८, १६१,
१६३, १६४, १६८, १८८
पाखी - ६८
पातरपाणी - १४२
पीपलकोटी - ६८, १८९
पैनों - ७५, १३५, १४५, १६७
फुलवाड़ी - ६९
बर्मा - १०६
बदलपुर - १६६
बदरीनाथ - ६५, ७४, ८०, ८३,
९७, १११
बम्बई - ३८
ब्यासघाट - ६९
बिलायत - ७७
बिगियानो - ४५
बुवाखाल - ८०
बूढ़ाकेदार - १६६
ब्रिटेन - ३७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भटवाड़ी - ७१
भाबर - ३४, ३६, ४५, ४६, ६३, ७४, ७८, ७६, ८४, ८५, ८६, ११५, १२३ से १३१, १४३, १४५ से १४७, १५०, १५२, १७२
भिलंग-भरदार - ४३
भैरोंझांप - ३५
मलाया - १०५
मलारी - ७४, ८३
मध्यप्रदेश - १०५
मरोड़ा - ७०, ११८
मल्लासलाण - १४७
माल - १२३, देखिए भाबर
माणागांव - ८०
मूसागली - ७०
मौतपाणी - १४२
यमुनोत्तरी - ६५, ७३, ८० ८६, ६७
राठप्रदेश - ४२ से ४४, ४६ ४६ से ५१, ५३, ६०, १२५, १४६, १४८, १५१
राणीहाट - १११
रानीखेत - ५६
रोमसागरीयप्रदेश - ४३, १२०
लालढ़ांग - १२३
भंगाड़ - १४६
भारत - ३०, ४२, ५५, ६४, ६१, १०१, १०२, १०५, १२६
भारत-तिब्बत-सीमांत - ५५, ६२, ६३, १२६
भारत-तिब्बत-जलविभाजक - ६१
भैरोंघाटी - ७१
भोटप्रदेश - ४१, ४६, ४६ से ५१, ५३, १०६, १२३, १२४ से १२६, १४७, १६३, १७५, १८८
मरणखेत - १८१
महापंथ - १११
मालबास - १४२
मुखीम - ४४, १०२
मोरघाटी - १२३
मंसूरी - ११६
रवांई - ७५, १६६, १७३
राजस्थान - १०५
राड़ी-बड़कोट - ४२
रामनगर - १४, १२३
रामपुर-बुशहर - १२४
रामगंगा-उपत्यका - ४७
रुद्रप्रयाग - ६६, ७०
लालपाणी - १४२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लैंसीडौन - ८०, ८६, १४८, १८६
श्रीनगर - ६६, ७२, ७४, ८६, १०६, १५१, १८६
सलाण - ४४, ५०, ५१, ८५, ९५, १०२, १०६, ११५, १२५, १३६, १४६ से १४८, १६७, १७२
सीला - ७४, १४५, १६६
सौड़ी - ७०
हरसिल - ७४, ८३
हरिद्वार - ६१, १२३
हिमाचलप्रदेश - ५१, ५६, ५७
होशियारपुर - ५६
लोहारचौड़ - ७१
विष्णुप्रयाग - ६८
सतपुली - ७०, १८६
संसार - १०५
सत्तीचौड़ - १४२
सिलोगी - ८०
सीम-मुखीम - ४४, १०२
सीगड्डी - १४२
सुखरौ - १३०
स्यूगड्डी - १४२
हवाई - १३८
हल्दूखाता - १३०
हूणदेश - ४२, ५०, ६६, ६४, ११२

हिमानियाँ—

अलकापुरी - ६८
कोसा हिमानी - ६५
नन्दादेवी - ६५
बामिनी - ६५
रैकाना - ६५
केदारनाथ हि० - ६५
खर्टलिंग - ७१
गंगोत्तरी हिमानी - ६५
पिंडारी - ७०
माणा - ६५

क्र. 3651
प्रा तिथि 30-5-68
State Museum, Library

वीर-गाथा प्रेस, दोगड्डा, गढ़वाल।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

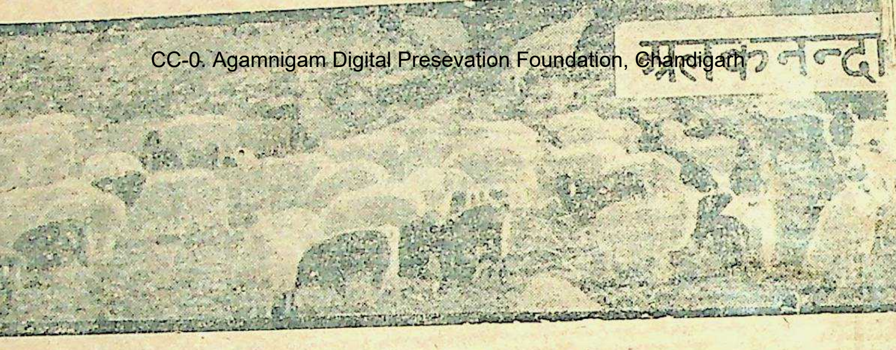

उत्तराखंड-यात्रा-दर्शन

ले०— शिवप्रसाद डबराल एम० ए०, पी-एच० डी०

उत्तराखंड के तीर्थों, यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ, बदरीनाथ, रूपकुण्ड, महापंथ तथा कैलास-मानसरोवर की तीर्थ यात्रा का तथा मन्दिरों, मूर्तियों, पण्डों और रावलों का इतिहास, एवं मन्दिरों में इतिहास और पुरातत्व की सामग्री का प्रामाणिक वर्णन ।

भारतीय संस्कृति के अनन्य पारखी श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल काशी विश्वविद्यालय, डा० मोतीचन्द्र अध्यक्ष प्रिंस आव वेल्स म्यूजियम बम्बई, डा० हजारीप्रसाद अध्यक्ष हिन्दी विभाग पंजाब विश्वविद्यालय, डा० गुलाबराय आगरा, डा० गुणानन्द जुयाल अध्यक्ष हिन्दी विभाग बरेली कालेज, श्री कृष्णानन्द पन्त अध्यक्ष हिन्दी विभाग मेरठ कालेज, डा० गोविन्दराम शर्मा अध्यक्ष हिन्दी विभाग करोड़ीमल कालेज दिल्ली, श्री दा० सातवलेकर अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल पारडी, सूरत, श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी प्रयाग, श्री स्वामी प्रणवानन्द, श्री जयदयाल गोयनका, आदि विद्वानों द्वारा भूरि-भूरि प्रशंसित । मूल्य १०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तराखंड का इतिहास

ले०— शिवप्रसाद डबराल एम० ए०, पी-एच० डी०

सर्वश्री एटनकिनसन, पातेराम, रतूड़ी और राहुल आदि विद्वानों ने यद्यपि उत्तराखंड के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश डालाहै, फिर भी इस विषय पर विस्तृत खोजपूर्ण प्रामाणिक ग्रन्थ की आवश्यकता अभी तक बनीहै। डाक्टर डबराल का 'उत्तराखण्ड का इतिहास' इस आवश्यकता की पूर्ति की ओर एक महत्वपूर्ण प्रयत्न है।

डा० डबराल ने १९५६ में मलारी में ११००० फीट की ऊंचाई पर शक-समाधियों का पता लगायाथा। शक-समाधियों पर तथा उत्तराखंड के मन्दिरों और मूर्तियों पर उन्होंने कई महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित किएहैं। उनके ग्रन्थ 'उत्तराखंड-यात्रा-दर्शन' में उत्तराखंड के इतिहास और पुरातत्व की महत्वपूर्ण सामग्री संग्रहीत है।

उत्तराखंड के इतिहास पर अब तक उपलब्ध समस्त सामग्री का गम्भीर अध्ययन करके लेखक ने इस ग्रन्थ की रचना कीहै।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अलकनन्दा—उपत्यका में प्रवास

भाग २

उत्तराखंड के भोटांतिक

ले०-शिवप्रसाद डबराल एम० ए०, पी-एच०डी०

हिमालय के अति संकीर्ण, दुर्गम, हिमाच्छादित मार्गों पर रेंकतेहुए अग्रसर होकर, पर्वतशिखरों की सीधी खड़ी नग्न चट्टानों पर हीरे के बर्मे से छिद्र करके रस्सी के सहारे चढ़ने वाले, चमड़े के पैराशूट से महोच्च शिखरों से उतरने वाले तथा अपने प्राणों की चिन्ता न करके १७००० फीट से अधिक ऊंचे दुर्लंघ्य पर्वतीय घाटों को पार करके तिब्बत से पिपीलिका सुवर्ण, सुहागा, चमर, बहुमूल्य रत्न आदि दुर्लभ वस्तुएं लाकर सभ्य संसार तक पहुंचाने की परम्परा को पिछले २५०० वर्षों से निरन्तर निभाने वाले साहसी पर्वतपुत्रों की रोमांचकारी गाथा का सप्रमाण वर्णन।

तोलछा, मारछा, जाड और जोहारी भोटांतिकों के जीवन और समस्याओं का विस्तृत एवं खोजपूर्ण अध्ययन।

मूल्य ४ रुपए

वीर-गाथा प्रकाशन, दोगडा, गढ़वाल

वीर-गाथा प्रेस, दोगडा, गढ़वाल